मन के हारे हार............

यह एक यथार्थवादी उपन्यास है। प्रोफेसर वेदन एवं प्रोफेसर मालवीय अभिन्नतम मित्र होने के साथ ही एक ही कालेज में प्रोफेसर हैं । मान्यताओं के आधार पर दोनों ही आधुनिक विचारधाराओं के पोषक हैं । प्रोफेसर वेदन तो अपनी पत्नी प्रमदा को आधुनिकतम देखना चाहता है साथ ही उसकी लगाम कसी रखना चाहता है । स्वयं शिक्षित वर्ग एवं बुद्धिजीवियों की श्रेणी में रहकर भी हेयतम व्यवहारों में जकड़कर समाज के छिपे कोढ़ की भांति क्रियाशील है। अभाव एवं निराशा से त्रस्त प्रमदा स्नेहानुराग को अन्यत्र आरोपित कर देने को बावली हो उठी है। अतृप्ति तृप्ति का आह्वान करती है। मालवीय प्रयत्न भर बचकर बचाता रहता है किन्तु उसके सूने जीवन में बहारों के फूल नहीं बीज हैं जो किल्ले बनकर अन्ततः प्रकट होते हैं । भावोद्रेक में प्रेम का सम्मोहन जहां एक ओर प्रमदा को जीवन के यथार्थ की ओर उन्मुख करता है वहां वह जगत से दूर संयम के आदर्श को अपना कर स्वतः निर्वासिता होती है ।

ऐसी ही कुछ सुलझी सी इस उपन्यास की कहानी है जो पाठक को प्रारम्भ से अंत तक उलझाये रहेगी।

लेखक—यादवचन्द्र जैन

मन के हारे हार . . .

मन के हारे हार ...
है, मन के जीते जीत ।

मन के हारे हार . . .

(मौलिक सामाजिक उपन्यास)

लेखक

यादव चन्द्र जैन एम. ए.

नवयुग प्रकाशन, दिल्ली

मूल्य : चार रुपये पचास नये पैसे
प्रकाशक : नवयुग प्रकाशन
२८१, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली।
प्रथम संस्करण : अगस्त, १९५७
मुद्रक : मनमोहन प्रेस, १४५४ नई सड़क
दिल्ली।

१

"किसी ने रास्ते चलते तुम्हारी उनसे कुछ ऊट-पटांग कह दिया तो इसका अर्थ यह तो नहीं कि उन्हें कमरे से बाहर निकालोगे ही नहीं। अब ऐसे खतरे तो जीवन में पग-पग पर हैं; कहाँ तक डरोगे, मेरे भाई?"

"डरने की बात ही क्या हो सकती है किन्तु मैं तो वह सब सुन-सोच कर हैरान हूँ। आज दुनिया की कैसी रीति-नीति व कैसे व्यवहार हो गये हैं? रास्ते चलते इस प्रकार की बेहूदगी? आज लोगों के आचार-व्यवहार इतने बिगड़ गये हैं कि·········"

"लीजिये, आप यह कहते हैं। उसी दिन मैं और मधुर साथ-साथ पार्क में टहल रहे थे, तभी बगल से कोई निकला और उसने मधुर की बाँह में चुटकी काट ली·······"

"क्या कहा? चुटकी काट ली, मधुर के? तब मधुर कुछ बोली नहीं! तब आप साथ किसलिये थे? जो ज्यादा बातें बनाता है. वह कर कुछ नहीं सकता।" तभी प्रमदा को सम्बोधित कर वेदन बोला—"सुना तुमने! श्रीमान प्रोफेसर साहब साथ चलते ही रहे और इनकी श्रीमती जी के हाथ में किसी अजनबी ने चुटकी काट ली।"

"क्या? मधुर के किसी ने चुटकी काटी। सच·········" प्रमदा ने विस्मय से प्रश्न किया।

"बोलो मैं करता क्या ? मैं दो कदम आगे था और फिर मधुर······ वह क्या करती ! जब तक उसने अपना हाथ सहलाते हुये घूम कर देखा वह कोई साला-सूअर सरपट भाग गया।"

"लेकिन मालवीय तुम करते भी क्या ?"

"साले का खून पी जाता। साले को कच्चा चबा जाता। साले को······"

"बस-बस ज्यादा नहीं। लेकिन किया तो कुछ भी नहीं !" वेदन बोला।

"करता क्या ? किसी बात का पता ही बाद में चले तो क्या हो सकता है ? गलती थी मधुर की। इस डर से कि पार्क में भीड़ इकट्ठी हो जायेगी वह चुप हो गई।" मालवीय ने उत्तर दिया—"और इन्हें तो कोई साथ ही लिये जा रहा था तब तुम ने कौन दिल्ली का लाल किला गिरवा दिया।"

मालवीय और वेदन अन्तरंग मित्र हैं—यह प्रमदा जानती थी। यही कारण था कि दोनों मित्रों में सदा ही उस प्रकार की तीती किन्तु फिर भी मीठी बातचीत सुनकर वह प्रमुदित होती रहती थी। एक अवसर पर प्रमदा अकेले ही 'शापिङ्ग' के चक्कर में गाँधी पार्क के गोल चक्कर से जा रही थी कि किन्हीं भद्र महाजन ने कह दिया था—"अकेली कहाँ जा रही हो। हमारे ही साथ चलो।"

अब ऐसी परिस्थिति में स्त्रियाँ क्या करें ? समाज में बढ़ते हुये इस प्रकार के उद्दण्ड-व्यवहार के समक्ष या तो वे मौन हो रहें अथवा अपनी चरण-पादुकाओं का खुला प्रयोग कर डालें। वैसे में एकत्रित भीड़ में चलते-चलते तब कहीं कोई उससे भी भोंडी बात कहे और साइकिल दबा कर भाग खड़ा हो। ऐसा अनेक अवसरों पर होता है और नारी का सलज्ज स्वभाव मौन पीकर रह जाता है। वैसा ही प्रमदा के साथ भी हुआ।

अब जब उसने वह सूचना घर आकर वेदन को दी और वेदन ने उसको मालवीय की ओर बढ़ा दिया तो कई दिन तक उसकी चर्चा चलती

रही। मालवीय ने प्रमदा को भाँति-भाँति के हास्य-व्यंग्यों द्वारा तंग किया और उस आकुलता से ऊबी प्रमदा को जब मालवीय ने स्वयं अपने अनुभव की बात आज कह सुनायी, तो प्रमदा ने जमकर मालवीय से बदला लेने की ठान ली और तभी कहती गयी—"वाह जी वाह! साथ चलते-चलते लोग औरतों के चुटकी तक काट जायें और लोग यही कहते रहें—'मैं तो एक दो कदम आगे था।' अजी! आगे क्या? ऐसे में तो लोग हट आते हैं··· मुझे तो आज मालूम हुआ। अब ज़रा मधुर कभी मिलेगी तो उसकी सारी तेजी झाड़ूँगी। मेरी उस बात पर तो मेरे प्राण खा गई और अपने चुटकी······" कहते-कहते प्रमदा खिलखिला कर हँस दी।

हँसी वेदन और मालवीय भी न रोक सके, किन्तु मालवीय उस हास-परिहास से अचानक गम्भीर हो गया और बोला—"अच्छा, अब इस मज़ाक को छोड़िये। कल से छुट्टियाँ हो रही हैं। इरादा हो तो दिल्ली घूम आया जाय।"

"दिल्ली······" वेदन ने दोहराया।

"हाँ दिल्ली।"

"वह क्यों?"

"यों कि आजकल दिल्ली ही एक ऐसा स्थान है जहाँ सब ओर के भ्रमणार्थी टक्कर मारते हैं।" मालवीय बोला।

"तो हमें टक्कर तो नहीं मारनी है।"

"अरे बाबा! कह रहे थे कि नहीं कि अब की छुट्टियाँ कहीं बाहर बितानी हैं।" मालवीय ने ज्यों ऊब कर कहा।

"मधुर चलेगी?" प्रमदा ने प्रश्न किया।

"वह क्या चलेगी? वह गयी।"

"कहाँ?"

"अपने बाप के घर।"

"चलो ठीक किया। वहाँ वह जब गयी तब लड़का लायी और तुम्हारे यहाँ हमेशा लड़की ....." प्रमदा ने हँसते हुये कहा और अपने रतनारे नेत्र खिलखिलाहट में मालवीय पर टिका लिये।

"मालवीय! बेटा तुमने इसे छेड़ कर अच्छा नहीं किया। अब देखो रात-दिन कितने भीगे-भीगे मिलते हैं।" वेदन ने मुस्कराते हुये कहा।

"मिलने दो। मिलने दो। इनका तो सब कुछ सहन करना पड़ेगा।"

"सहन करो उनका जो चुटकी काटते घूमते हैं या उनका जो चुटकी कटवाती हैं। हम लोग कोई चुटकी काटते घूमते हैं!" प्रमदा ने इलायची सुपारी की तश्तरी मालवीय की ओर बढ़ाते हुये अपनी हँसी भरे ओठों को धोती के छोर से छिपाते हुये कहा।

मालवीय मौन, हँसता रहा और वेदन अनायास कह उठा—"चुपो प्रमदा।"

"अरे बाबा! भर पाया। मुझे माफ कर दो। अब मैं कभी नहीं कहूँगा कि तुम्हें कोई मिला था जो कह रहा था—'अकेली कहाँ जा रही हो। चलो हमारे साथ चलो।"

इस बात से वेदन तिलमिला उठता था और प्रमदा की दशा भी गुरु-गम्भीर हो जाती थी। वह प्रसंग कितना अशोभनीय था; आज के सामाजिक जीवन का वह कैसा गलित-दृश्य था। वह मानवता का कैसा कलुष था। वह पुरुष-नारी के अस्तित्व की यथार्थता पर कैसी भयावह चोट थी। वह समाज-व्यवस्था के स्तर का कैसा पतन था और वह दूसरी घटना भी कि मालवीय साथ चलता रहा और उसके साथ की नारी के कोई चुटकी काट जावे—वह अमर्यादा और दुःसाहस। कैसा बनता जा रहा है समाज? कैसी बिगड़ती जा रही हैं सामाजिक आचार-व्यवहार, रीति-नीतियाँ, और जैसा प्रमदा के कथन से ज्ञात हुआ था; वह पतित कोई नवजवान

नहीं था---एक अधेड़ व्यक्ति था जो अपने पापमय जीवन का कलुष आज समाज के बीच यों सड़कों पर उछालता चलता है---वह सफेद पोश था आँखों पर रंगीन चश्मा चढ़ाये था और हाथ में घड़ी बाँधे था......तो क्या आज समाज की इकाई इस प्रकार गल-गल कर कोढ़ बनी जा रही है......यह सब सोचते-सोचते प्रोफेसर वेदन शर्मा समाज की मौत की सी उस भुतही तस्वीर की कालिमा को शून्य में देख कर ज्यों हर बार डर जाते थे और उनके सहकर्मी प्रोफेसर मालवीय अपने अनुभव से व्यथा और आक्रोश निकाल कर एक ओर कर देते थे तथा स्वभाव की अल्हड़ता में विराग-विषाद से विमुक्त हो सदा हँसते रहते थे।

× × × ×

कार्यक्रम तो निश्चित हो ही गया था। वेदन, मालवीय तथा प्रमदा ने देहली प्रस्थान की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। प्रमदा ने चलने के पूर्व बहुत सी जलपान सामग्री---मठरियां, सेव, आलू के लच्छे, मांगरे, बेसन के लड्डू आदि बना ली थी।

मध्याह्न में मालवीय आया तो वेदन बोला---"भई मालवीय! मेरी तो चलने की तबियत है नहीं।"

"क्यों?"

"यों ही।"

"फिर वही राग अलापना प्रारम्भ किया। किवाड़ में उँगली पिच सकती है इसलिये किवाड़ कभी बन्द ही न किया जाये; सीढ़ियों से रपट जायेंगे इसलिये सीढ़ियों से कभी उतरो ही नहीं; चलते-चलते ठोकर लग जायगी इसलिये सड़क पर चलो ही नहीं; मोटर से पिच जायेंगे इसलिये कभी सड़क पार मत करो; बिजली पकड़ लेगी या धक्का दे देगी इसलिये कभी स्विच ही मत छुओ; पेड़ के गिरने का डर रहता है इसलिये पार्क में पेड़ की छाया के निकट कभी बैठो ही नहीं; हवाई जहाज गिरने का

कभी भय रहता है इसलिये लोग उस पर चलना ही बन्द कर दें; पानी का जहाज डूब सकता है इसलिये वे तैरें ही नहीं; रेल लड़ जाती है इसलिये रेलों का आवागमन ही बन्द हो जाये`` ```यह भी कोई बात हुई!" मालवीय कहता ही चला गया।

प्रमदा निकट ही चुपचाप खड़ी सुन रही थी कि मालवीय जी अपनी तीव्र वक्तत्व शक्ति का प्रदर्शन करते चले जा रहे हैं, तभी खट से वेदन बोल उठा—"कहना क्या चाहते हो?"

"यही कि आँखें लड़ जाती हैं इसलिये लोग देखना ही बन्द कर देवें, यह कौन सा तर्क है?"

प्रमदा चुपचाप घूम कर दूसरी ओर चल दी और वेदन को लगा जैसे जीवन-क्रम में जो कभी अप्रत्याशित्व की संभावना रहती है उसका पूर्व भय सर्वथा अस्वाभाविक है, यह ध्यान कर वह बोला—"फिर भी सतर्कता बरतनी चाहिये।"

"सतर्कता बरतने का अभिप्राय कभी यह तो नहीं होना चाहिये कि कि मनुष्य की गति-प्रगति ही जड़ हो जाय, स्थिर हो जाय।"

"किन्तु गति इतनी तीव्र हो जाय कि मार्ग-कुमार्ग न दिखाई दे। प्रगति वह हो जाय कि ब्लाउज़ से पेट भी न ढक पाये तो वही होगा कि लोग रास्ते चलते चुटकी काटेंगे।"

"अरे बाबा! मैंने उन ब्लाउजों में जोड़ लगवा-लगवा कर बेबी के घुँघराले झबले बनवा दिये हैं! अब तो कुछ मत कहो।"

"अच्छा! छोड़ो हर समय तुम्हीं तो झक-झक करते हो। चलना है तो चलो`````` प्रमदा! हम चल रहे हैं। बिस्तर बँध जाँय।"

२

आगरा कैन्ट स्टेशन से जब ट्रेन चली तो वेदन ने सेकेंड क्लास की एक सीट अपने लिये व एक प्रमदा के लिये आरक्षित कर ली और उन पर बेडिंग खोल दिये। मालवीय ऊपर की बर्थ पर अपना बिस्तर लगा कर लेट गया। प्रमदा तो अपने विस्तर पर ही लेटते ही सो गयी। वेदन व मालवीय आपस में वार्तालाप करते रहे। मालवीय कह रहा था—"यदि चलते-फिरते अनुभव लेने हों तो सफर करना चाहिये। काम न हो तो भी सफर करते रहना चाहिये जिससे मौसम की हवा और फैशन के जादू के अधिर खुले रूप सामने आ जाते हैं।"

"और सफर के लिये पैसे कहाँ से आवें?"

"यह भी एक शौक है। इसके लिये सिनेमा कम देखिये। पान कम खाइये। सिगरेट मत पीजिये और ऐसे ही अनेक खर्चों को बचा कर सफर कीजिये।"

"तब मालवीय! तुम एक काम करो। इस बार आगरे लौट कर 'सफर करो' आन्दोलन आरम्भ कर दो। देखना, नाम हो जायेंगे। आन्दोलन के नाम पर तुम भी कुछ कमा खाओगे और फिर यदि कहीं रेलवे-मिनिस्टर प्रसन्न हो गये तो रेलवे-बजट में तुम्हारी पेन्शन का 'प्रोवीजन' होना कोई बड़ी बात नहीं है।"

"वेदन ! बात चाहे गम्भीर हो या सरल; तुम तो उस सब का सत्यानाश करना। तुमसे बात करने का अभिप्राय है तर्क के नगड़-बाबा को न्योता देना।"

"यह नगड़-बाबा कौन सा जन्तु है मालवीय ?

"यह जन्तु नहीं श्रीमान् ! हम सब का बुजुर्ग है बुजुर्ग.........."

"वह क्या ?"

"हमारा बुद्धि-देवता मनु !"

"जिसने हमारी सभ्यता बनाने के पहले ही अनैतिकता का इकला—एक पढ़ा वही था न देवताओं का देवता मनु और तुम्हारा भी......"

"अच्छा बातचीत बन्द। मैं सोता हूँ।" मालवीय ने अपने वक्ष पर पड़ी चादर को सर से ओढ़ते हुये कह डाला।

"नाराज़ हो गये क्या ?"

"नाराज़ क्या ? कहो अभी जरा देर में गाली-गुप्ता करने लगो। तुम्हारा क्या ठिकाना ? हे भगवान् ! मुझे तो हर क्षण प्रमदा भाभी का ध्यान बना रहता है। कैसे निभाती होगी वह तुम्हें ?"

"हमें निभाने का तो नाम करती है। वास्तव में तो वह तुम्हारे जैसे भाभी वालों की ही मन-भावनी रहती है।"

"अच्छा अब आप बकिये मत। चुप रहिये। मुझसे चाहे जो कहना। खबरदार, जो प्रमदा भाभी को कुछ कहा।"

"हाँ भाई, इस समय ऐसे क्यों नहीं कहोगे। वह जो नींद का बहाना किये सब सुन रही है उसे जितना आनन्द भाभी कहलाने में आता है उतना प्रिय उसे कोई रिश्ता नहीं लगता है.........."

"यह भी अच्छी रही। आप दोनों सर फोड़ें और मुझे बीच में यों ही साने। यह कहाँ की भलमनसाहत है..........।" प्रमदा ने अपने उन सुललित नेत्रों को मलते हुये उठते-उठते कहा।

"भाभी ! मैं कुछ नहीं कह रहा हूँ । अब इन्हें मेरा भाभी कहना नहीं मान्य है, समझीं !" मालवीय बोला ।

"बात यह है कि एक इनकी भी भाभी हैं । उनकी ही आँखों से ये सबकी भाभियों को देखते रहते हैं ।" प्रमदा ने अपना अधर दाँतों में दाबते-दाबते कहा और किसी कड़वे उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी ।

'बात यह है कि आज हरेक हरेक को भाभी कहना चाहता है और हरेक हरेक से भाभी कहलाने में प्रफुल्लित होती है । भाई चारा भी बदल कर भाभीचारा होता जा रहा है ।" वेदन ने एक सिगरेट सुलगाई और कश खींचते हुये कहा ।

"तो आपको कुछ बुरा लगता है, क्या ?" प्रमदा ने अपने जूड़े को दोनों हाथों से सँभालते हुये कहा । प्रमदा ने इस समय अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लिये थे । उसके वक्ष की स्पष्टता जो झलकी तो वेदन अनायास ही कह गया—"वाह ! कितना अच्छा लग रहा है !"

"कोई स्टेशन आ रहा है ।" प्रमदा ने जैसे प्रश्न किया !

'हाँ ! स्टेशन आते-आते गाड़ी धीमी हो जाती है; यही पूर्व-संकेत है । क्यों प्रमदा ?" वेदन ने बहुत धीमे से कहा और रेल की खिड़की के बाहर झाँकने लगा ।

"हर स्थान पर यह बात लागू नहीं होती है ।" मालवीय तपाक् से कह उठा और देखते-देखते अपनी ऊपर की बर्थ से कूद कर नीचे आ गया !

"मथुरा आ गया ...."वेदन कह उठा ।

× × × ×

मथुरा स्टेशन पर एक महाशय का आगमन हुआ । इनके साथ एक देवी जी तथा तीन बच्चे थे । पूरे कम्पार्टमेंट में नीचे तीन बर्थें थीं । इनमें से दो पर प्रमदा एवं वेदन ने स्थान ग्रहण कर रक्खा था । तीसरी

खाली बर्थ पर नवागन्तुक परिवार ने स्थान ग्रहण कर लिया। ये महाशय देखने में सुन्दर थे। इनका गौरवर्ण का तथा यह श्वेत खादी की खद्दरी, कुर्ता एवं पाजामा पहने हुये थे। इनके साथ की महिला पतली-दुबली, पीत-श्वेत-प्राकृति की शुभ्रता में खादी के रेशम की बादामी साड़ी पहने हुये थी। बच्चों में दो लड़के थे, जो क्रमशः छै व चार वर्ष के प्रतीत हो रहे थे। लड़की गोद में थी। तीनों ही बालक देखने में स्वस्थ एवं सुन्दर थे तथा सीट पर बैठते ही दोनों लड़के किलकारियाँ भर कर ज्यों नवीनता का अनुभव करते हुये बाहर खिड़की में से झाँकने लगे। उनकी माँ ने उन को बाहर झाँकने से वर्जित किया और तब सीट पर बिस्तर बिछाने में संलग्न हो गयी।

तब तक वे महाशय भी कुलियों को पैसे देकर उसी सीट पर आ बैठे और छोटे गोद के बच्चे को चुटकियाँ बजा-बजा कर पुचकारने लगे! इनके आते ही बड़ा लड़का बोला—"बाबू जी! यहाँ तो डाकू नहीं आयेंगे?"

"नहीं बेटे! कहीं हर जगह डाकू आते हैं।"

वार्तालाप का प्रथम नाटक सुनते ही प्रमदा, वेदन व ऊपर मालवीय भी चौंके। तभी स्वर सुनायी दिया—"भगवान् ने बड़ी खैर की......।" साथ की महिला कह रही थी।

वेदन ने ध्यान दिया कोई घटना अवश्य ही घटित हुयी है। तभी बात आगे बढ़ी—"थर्मस कहाँ है?"

"तुम तो ऐसे चौंक गये जैसे इतने के बाद मैं अब थर्मस को लापरवाही से रक्खूँगी। वह सिरहाने रक्खा है।" महिला बोली।

नवागन्तुक जैसे आश्वस्त होकर पुनः अपने बच्चों को प्यार से थपथपाने लगा। छोटे लड़के का सर उस्तरे से मुँडा हुआ था जिससे प्रतीत हो रहा था कि उसका मुंडन आज या कल में ही हुआ है। उस बच्चे के मुँडे सर पर उसके पिता ने एक हलकी चपत दी जिसको बच्चा अपने नन्हें हाथों से सहलाता रहा और तभी उसके बड़े भाई ने अपनी

ओर से एक ज़ोर की चपत उसके सर पर लगा दी। आवाज़ से समूचा कम्पार्टमेंट गूँज गया।

"अशोक! खबरदार! अब हम पीटेंगे अगर चपत लगायी तो।"

"बाबू जी! यह बड़ा शैतान है। जब डाकू आये थे तो यह कह रहा था—'सालों को जान से मार डालूँगा।' भला बताइये, यह उन्हें जान से मार देता। हः उल्लू कहीं का। वह तो आप थे तो हम सब बच गये, नहीं तो बाबूजी डाकू लोग हम सब को जान से मार डालते। न, बाबूजी! तब भाभी को भी मारते डाकू। आप थे तो हम बच गये…।" बच्चा कहता गया।

अब स्पष्ट था कि परिवार किसी आपत्ति में फँस कर बचा है। प्रमदा ने एक प्रश्नात्मक मुद्रा वेदन पर आरोपित की। तभी अनायास वेदन ने प्रश्न किया—"क्यों साहब क्या मैं पूछ सकता हूँ कि ये बच्चे डाकू-डाकू बारम्बार क्यों पुकार रहे हैं?"

"जी हाँ, ठीक ही पुकार रहे हैं।" नवागन्तुक ने उत्तर दिया।

"क्या बात है?"

"हम लोग सचमुच ही डाकुओं के घेरे से बच कर आ रहे हैं।"

गाड़ी तीव्र गति से देहली की ओर भाग रही थी। कम्पार्टमेंट में वेदन, प्रमदा, मालवीय तथा उस परिवार के अतिरिक्त एक भी यात्री नहीं था। उस परिवार की महिला गोद के बच्चे को दुलरा रही थी। किन्तु उसकी आकृति में एक भय मिश्रित कौतूहल प्रकट हो रहा था। बच्चे ज्यों आँखें फाड़कर, मौन हो आगे की बात सुनने के हेतु एक टक अपने पिता की ओर निहार रहे थे। तभी मालवीय ने ऊपर की बर्थ से ही प्रश्न किया—"हाँ, क्या हुआ साहब?"

"क्या बतावें साहब एक चक्कर था। आया और निकल गया!" नवागन्तुक ने उत्तर दिया।

"कैसे क्या हुआ ?"

"बस हुआ यह कि डाकू मिल गये।"

"अरे साहब, आपको तो मिल गये। यहाँ सुनकर हालत बिगड़ रही है। जरा जल्दी बताइये हुआ क्या ? आप लोग कहाँ रहते हैं ? कहाँ जा रहे हैं ?" मालवीय ने प्रश्नों की झड़ी बाँध दी।

"और पूछिये आपकी जाति क्या है ? पेशा क्या है ? पढ़े कहाँ तक हैं ? कितने यार-दोस्त हैं ? घर में कितने आदमी हैं ?........" नवागन्तुक ने प्रश्नों में प्रश्न जोड़ दिये।

"क्षमा कीजियेगा। आप कुछ परेशान से दिख रहे हैं। यदि हमारी किसी बात से आपको कोई आघात पहुँचा हो तो आप उस पर ध्यान न दें और वह डाकुओं वाली बात, कम से कम, तुरन्त बता दें।"

"ऐसी क्या बात है साहब, हम इलाहाबाद रहते हैं और इस समय देहली होते हुए वहीं जा रहे हैं।"

"तब ये डाकू आपको कहाँ मिल गये ?"

"हम लोग जैन हैं। आगरे से थोड़ा आगे हमारा एक तीर्थ स्थान है। महावीर जी है। हम वहीं से आ रहे हैं।"

"तब हो सकता है। धर्मस्थान में तो अनेक प्रकार के डाकू लगते हैं।" वेदन ने कहा।

प्रमदा निरन्तर कौतुक भरे नेत्रों से साथ की महिला को देखती जा रही थी कि बेचारी किसी विपत्ति से बच कर आ रही है। तभी नवागन्तुक ने कहा— "जी नहीं, न तो हम जैन धर्मावलम्बियों के तीर्थ स्थान इस प्रकार के होते हैं, न ही हमें वैसे डाकू मिले थे जो तीर्थ स्थानों में लगते हैं...।"

"तब तो सचमुच के डाकू मिल गये क्या आपको ?" मालवीय बोला।

प्रमदा से बिना हँसे न रहा गया और वह अपनी साड़ी का पल्ला मुँह पर लगा कर धीमे से बोली—"सुनिये ! सचमुच के और झूठे डाकू भी दो तरह के होते हैं क्या मि० मालवीय ?"

सकपकाते हुये मालवीय ने उत्तर दिया—"मेरा मतलब······ और यों तो डाकुओं को हज़ार किस्में हैं।"

"तुम्हारा मतलब ठीक था, मालवीय। तुम समझदार भी काफी हो। ······हाँ, भाई साहब ! आप बताइये क्या हुआ ?

"तो महावीर जी का पवित्र मंदिर, स्टेशन से लगभग चार मील है। हम लोग परसों रात्रि में स्टेशन पर उतरे थे। उतरते ही स्टेशन की निकटवर्ती धर्मशाला के दो-तीन जमादार हाथों में लालटेनें लेकर हमारे डब्बे के सामने आ खड़े हुये। हम लोगों का सामान सेकेन्ड क्लास के एक छोटे डब्बे से उतर रहा था। एक तो महावीर जी जाने-आने की अधिकतर ट्रेनें रात्रि में ही महावीर जी पहुँचती हैं, दूसरे हम जब उतरे तो हम लोगों के अतिरिक्त सम्भवतः उस छोटे से स्टेशन पर दो-तीन परिवार ही और होंगे जो उस रात्रि में ट्रेन से उतरे थे। उन जमादारों की सम्भवतः यह ड्यूटी थी कि वे रात्रि में 'महावीर जी' स्टेशन पर आने-जाने वाली गाड़ियों को देखें और यात्रियों को सुविधापूर्वक धर्मशाला में ले जावें। उसी प्रकार वे हम लोगों के निकट-आये और उनमें से एक ने अपनी लालटेन ऊँची करते हुये प्रश्न किया—"आप लोग महावीर जी जायेंगे ?" मैंने उत्तर दिया—"हाँ !"—"तब आप हमारे साथ चलिये। रात्रि में धर्मशाला में विश्राम करना होगा तब प्रातःकाल महावीर जी जाइयेगा, एक जमादार ने कहा !"—ये देवी जी काफी जेवर पहने हुये थीं और एक भारी नेकलस जमादारों की लालटेनों के प्रकाश में बारम्बार झलका देती थीं।" कहते-कहते सहयात्री ने एक बार अपनी दृष्टि अपनी देवी जी पर केन्द्रित की। वह मुस्करा रही थी किन्तु उस मुस्कराहट में भी एक भय उलझा हुआ था।

प्रमदा सर्वाधिक कौतूहल में अपनी दृष्टि उस यात्री पर टिकाये हुये थी। वेदन व मालवीय भी बीच की सीट पर आ बैठे थे और उस कथन को सुन कर जैसे हैरानी में साँस दाबे बैठे हुये थे।

"तब क्या हुआ मिस्टर जैन।"

"हम लोगों का सामान धर्मशाला में रखवा दिया गया। वहाँ हमें एक कमरा मिला और दो चारपाइयाँ। सामान रख कर कुली सीधे भी न हुये होंगे कि तांगे वालों के एक दल ने हमें घेर लिया। सभी प्रश्न करना चाहते थे—"बाबूजी! महावीर जी चलेंगे!" हमने उत्तर दिया—'हाँ'! 'तब अभी तय कर लीजिये। इस समय तो तांगा महावीर जी जावेगा नहीं। हम दिन निकलते-निकलते चल देंगे।' एक तांगे वाला बोला—मैंने उनमें से एक तांगे वाले को चार रुपये में तय कर दिया और कह दिया कि सुबह आ जाना, निकटवर्ती हलवाई की दूकान से मैं इस बच्ची के लिये दूध लाया। इस बीच में देवी जी ने बिस्तरे ठीक कर ही दिये थे; अतः सभी को सोते ही नींद-आगयी।

"प्रातःकाल नित्य-कर्मादि से निवृत्त होकर हम महावीर जी जाने को तत्पर हुये। हमारे पास, आप देखिये इतना समान था। हम अजमेर से एक शादी निबटा कर आ रहे हैं, अतः बहुत सामान साथ है।

"अस्तु, यह एक बड़ा सन्दूक व कुछ सामान हमने स्टेशन वाली धर्मशाला में ही छोड़ दिया क्योंकि हमें उसी दिन लौटना था और एक-दो सन्दूक, खाने का टिफनदान, गर्मी है—इस कारण थर्मस और यह सुराहीदान भी हम साथ लेते गये। बच्चों का साथ था! हम सब लदे और ताँगा महावीर जी चल दिया।

"हमें श्री महावीर जी की पवित्र प्रतिमा के दर्शन करने के साथ-साथ इन श्रीमान का (छोटे लड़के की ओर संकेत करते हुये) मुंडन भी

कराना था क्योंकि परिवार में एक परम्परा चली आ रही है कि बच्चों के सर के बाल इसी स्थान पर उतरते हैं......... ।"

कथांश यहीं तक पहुँच पाया था कि नवागन्तुक ने कहा—"भाई साहब क्षमा कीजियेगा । थोड़ी देर में ही रात्रि हो जावेगी । गाड़ी भी लेट है और हम लोगों को भोजन करना है । आज्ञा हो तो भोजन कर लेवें.........आप भी आइये ।"

"अवश्य-अवश्य ।" कहते हुए मालवीय एवं वेदन दूसरी ओर मुड़ गये तथा कौतुकलांत प्रमदा बाथरूम चली गयी ।

३

"तब आप लोग दिन में ही भोजन करते हैं।" ज्यों ही सहयात्री ने भोजन समाप्त किया तत्काल मालवीय प्रश्न कर बैठा।

"जी हाँ, कुछ थोड़ी-बहुत इसी प्रकार की धार्मिक मान्यता निभी चली जाती है वैसे तो..... ।"

"वैसे तो कुछ नहीं श्रीमान् जी, आप लोगों की धार्मिक आस्था से पृथक हम तो यह मानते हैं कि दिन में ही भोजन कर लेने की यह जैन व्यवस्था बड़ी उपयोगी है। स्वास्थ्य के नियमों की कसौटी पर तो यह इतनी खरी उतरती है कि साहब, कुछ पूछिये मत। वात्स्यायन के अनुसार रात्रि-शयन से चार-पाँच घंटे पहले भोजन करके निवृत्त हो जाना चाहिये।..."

"वाह भाई, मालवीय वाह! प्रसंग भी याद है तो वात्सायन के काम-सूत्र के। यों नहीं कह सकते कि स्वास्थ्य व पाचन के ध्यान से भोजन दिन में ही कर लेना चाहिये। साथ ही यह कितना 'हाईजिनिक' है। दिन में प्रकाश रहता है, और न मच्छर रहते हैं न कीड़े उड़ते हैं......"

इसी क्षण बड़े लड़के ने बेचारे छोटे लड़के की चिकनी खोपड़ी पर एक कस कर टीप जड़ दी। जिससे सभी का ध्यान उस ओर घूम गया।

"अरुण! तुम इधर आ जाओ। यह अशोक पीटा जायेगा......। क्यों, तुमने इसके फिर क्यों मारा?" मिस्टर जैन ने बड़े लड़के को डाँटते हुये कहा।

"बाबू जी यह कहता है—बाबूजी इधर-उधर की बातें कर रहे हैं। इन लोगों को डाकुओं की कहानी सुनाते ही नहीं हैं।" वह बच्चा बोला।

"तब तुमने इसको मारा क्यों?" पिता ने प्रश्न किया।

बच्चा लजा कर एक ओर हट गया और वार्तालाप आरम्भ हो गया। मिस्टर जैन ने कहा—"हाँ, तब चलते-चलते उसी धर्मशाला का जमादार बोला—'बाबू तांगे में जगह हो तो हम भी महावीर जी चलें?' मैंने कहा—'चलो। जगह तो है।'—कारण मैं व देवी जी तांगे में पीछे बैठे थे और ये दोनों बच्चे आगे थे। अतः उस जमादार को बैठने का स्थान तो था ही। अतएव वह आ बैठा।

"घन्टे-सवा-घंटे में हम लोग महावीर जी पहुँच गये। महावीर जी की एक छोटी सी किन्तु बड़ी रमणीक बस्ती है। एक विशाल मन्दिर है जिसमें जैन दिगम्बर के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर की मनोज्ञ प्रतिमा विराजमान है। इस मन्दिर से ही संलग्न एक बड़ी धर्मशाला है जिसमें यात्री ठहरते हैं। मन्दिर के आगे चौक में संगमरमर का एक कीर्तिस्तम्भ बना हुआ है। यह सब एक परकोटे में घिरा हुआ है। इसके बाहर सब मिला कर छः या सात बड़ी-बड़ी धर्मशालायें हैं जो देहली, जयपुर, आगरा आदि के सेठों ने बनवाई हैं।

"अस्तु, महावीर जी पहुँच कर मन्दिर की मुख्य धर्मशाला में हम जा ठहरे। भगवान के दर्शन किये और तब इस शैतान का मुण्डन कराने के लिये छतरी पर गये।

"अब आप सुनना ही चाहते हैं तो विस्तार में सुन लीजिये। इस छतरी की भी विचित्र कथा है।" मिस्टर जैन कहते जा रहे थे।

"वह क्या मिस्टर जैन?" वेदन ने पूछा।

"आज के युग में तो वह सब एक मनगढ़न्त ही प्रतीत होगा; किन्तु वह इतना ही सत्य है जितना इस समय मेरा आप से बातचीत करना।

तो अब से अधिक समय पूर्व—जैसी कि बात प्रचलित है—महावीर जी में एक ग्वाला रहता था········· ।"

"मिस्टर जैन आप क्षमा करें तो एक बात बहुत स्पष्ट करें !" मालवीय बोला ।

"कहिये !"

"यदि यह भूमिका भाग छोड़ कर आप हमें जल्दी से केवल उन डाकुओं वाली कथा सुना दें तो बहुत अच्छा हो । मैं तो केवल उतना ही सुनने के लिये बेचैन हूँ ।" मालवीय ने बात काटते हुये किन्तु अनुरोध भरे स्वर में कहा ।

"नहीं साहब, आप पूरी बात कहिये । इस छतरी के सम्बन्ध में भी अवश्य बताइये मिस्टर जैन ।" वेदन ने कहा ।

"छोड़िये, वह बाद में बता दूँगा । मैं वह डाकुओं वाली मूल घटना ही बताये देता हूँ और वह भी जानकर क्या कीजियेगा । बस इतना समझ लीजिये कि वैसा कुछ घटित हुआ और समाप्त हो गया । एक आफत थी । आयी और गयी । सभी पर आती है ।"

"नहीं साहब, आफत भगवान करे किसी पर न आवे और फिर आप इतनी परेशानी में फँस कर आ रहे हैं । हमारी पूरी सहानुभूति आप के साथ है । हम यह अवश्य जानना चाहते हैं कि आप की परमात्मा ने कैसे रक्षा की ? हम आपके साथ-साथ अपना आभार भी उस परम-शक्तिमान के प्रति प्रदर्शित करना चाहते हैं जो पग-पग पर हमारे व आप जैसे निरीह प्राणियों की रक्षा करता है ।" वेदन बोला ।

अब तक प्रमदा व मिस्टर जैन की पत्नी में भी स्फुट-वार्तालाप प्रारम्भ हो गया था । अनायास ही प्रमदा ने पूछा—"क्या हुआ ? आप बड़ी सौभाग्यशालिनी हैं कि डाकुओं से बच आयीं ।"

"बहन ! सच, मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है। हम सब को तो भगवान ने ही बचा लिया।"

"परन्तु हुआ क्या ?"

"बहन ! कुछ पूछो मत यह थर्मस न होता तो हमारा और सामान भी लुट जाता। फिर भी नुकसान तो हुआ ही।" मिस्टर जैन की पत्नी ने कहा।

इसी समय वेदन ने—जो मिस्टर जैन की पत्नी के मुँह से 'थर्मस न होता तो हमारा और सामान भी लुट जाता' सुन चुका था; कहा—"मिस्टर जैन आपकी पत्नी कह रही हैं, थर्मस ने आपके सामान की रक्षा की ····· ?"

"हाँ, साहब, यह थर्मस ही था जिसने हमारा सब जेवर बचा लिया।" कहते हुये मिस्टर जैन ने अपनी पत्नी को सम्बोधित कर कहा—"थर्मस देना तो इधर।"

मिस्टर जैन की पत्नी ने थर्मस आगे बढ़ा दिया। तब मिस्टर जैन ने थर्मस के ढक्कन की चूड़ियाँ घुमायीं और उसमें भरे बरफ व पानी को हटाते हुए एक-एक करके सोने का नेकलेस, हाथ के तोड़िये, कड़े तथा चूड़ियाँ निकाल-निकाल कर सामने दिखा दीं।

"यह सब सामान आपने इसमें क्यों रख छोड़ा है मिस्टर जैन ?" मालवीय ने प्रश्न किया।

"इसलिये कि इस समय यह इसमें मेरी पत्नी के कण्ठ से अधिक सुरक्षित व सुन्दर लग रहा है।"

"तो इस थर्मस ने आपके सामान की कैसे रक्षा की मिस्टर जैन ?" वेदन ने प्रश्न किया।

"हुआ यह कि महावीर जी में मुण्डन-कर्म से निवृत्त होकर हमने विश्राम किया और तब मध्यानान्तर में चलने की तैयारी की। हमारा

तांगे वाला आने-जाने के लिये तय था, अतः पाँच बजे के लगभग वह स्वयं आया और बोला—'चलिये !'—हम चलने की तैयारी में थे ही। एक-दो अन्य दर्शनार्थियों ने सुझाव दिया कि यों तो रात्रि में जाना-आना सुरक्षित नहीं है, किन्तु इतने पर भी आरती के समय तक भी जाया जा सकता है। बहुत लोग भगवान की संध्या आरती के बाद तक जाते हैं। तभी मैंने वहाँ लोगों से कहा कि यदि एक महीने पूर्व ही स्टेशन से कस्बे तक के मार्ग में एक बैलगाड़ी लूटी जा चुकी है और उसमें एक नव-बधू का कई हजार रुपये का सोने का जेवर लुट चुका है तो क्या गवर्नमेंट ने अभी तक कोई व्यवस्था नहीं की है ?—इसके उत्तर में वहाँ के लोगों ने असन्तोष सा प्रकट किया······।"

बीच में टोकते हुये मालवीय तपाक् से कह उठा—"यदि सरकारी विभागों का कार्य इतनी तत्परता से होने लगे तो आज सचमुच गाँधी जी का राम-राज्य मूर्तित हो जाये, किन्तु प्रचार के बल पर चलने वाली आज की आधुनिक सरकारें विशेषतः ये जन-तान्त्रिक व्यवस्थायें व्यवस्था बनाने में इतनी सफल नहीं होती हैं; जितनी राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति में उसके प्रचार में, आत्म-नेतृत्व के पोषण में सफल होती हैं।"

"मालवीय ! भई तुमसे भी हम परेशान हैं। मिस्टर जैन जो कुछ सुना रहे हैं उस विषय पर तुम्हें अपना व्याख्यान देने की सनक भी दिखाने का यही समय मिला था······। हाँ मिस्टर जैन, फिर क्या हुआ ?" वेदन बोला।

"नहीं मिस्टर मालवीय ! आप ठीक कह रहे हैं। सरकारी व्यवस्था का प्रत्यक्ष उदाहरण मैं अभी बताऊँगा। अभी सुनकर आप हैरान रह जायेंगे। और शासन में इधर-उधर अव्यवस्था है—हम इतना कह सकते हैं। दोष किसका है, हमें नहीं मालूम।" मिस्टर जैन ने कहा।

"ठीक हो सकता है मिस्टर जैन, किन्तु जन-तान्त्रिक शासन व्यवस्था में भी यदि जनता को असन्तोष है तो उसका दोष जनता पर ही है। शासक-

वर्ग विशेष पर कदापि नहीं है। अन्ततः इस गण-तन्त्र-शासन का आधार-सूत्र है क्या ? इसकी शक्ति कहाँ है ? इसके निर्माण अथवा विध्वंस करने का आश्रय क्या है ? जनता ही तो है। सम्राट अथवा डिक्टेटर के शासन में तो ठीक है, हम मानते हैं, जनता पिसती है। जनता यूँ नहीं कर सकती है, जनता सर नहीं उठा सकती, किन्तु जन-तन्त्र में जनता का शासन होते हुये भी जनता की आकुलता—तब जनता का स्वभाव ही कहना चाहिये। माना कि इस प्रकार की शासन व्यवस्था में एक दल-विशेष शासन-सत्ता पर आरूढ़ रहता है; किन्तु उसे भी जनता द्वारा ही मान्यता प्राप्त होती है और फिर सबल विरोध भी तो जनता की ही अपनी वस्तु है।······" वेदन बोला।

"ठीक है पर्याप्त भाषण हो चुका। अब मिस्टर जैन की कथा प्रारम्भ होने दो······।" मालवीय ने जैसे उस तर्क की राजनीतिक शुष्कता से ऊबते हुये कहा।

"मालवीय ! देखो आगे बीच में न तुम कुछ बोलो न मैं बोलूँगा। देहली निकट ही आ रहा है। कोसी स्टेशन—यह पार हुआ। इसके बाद ट्रेन देहली ही रुकती है। या फिर मिस्टर जैन आप परेशान होंगे, थके होंगे—विश्राम कीजिये।" वेदन बोला।

"भई बोलना तो केवल मेरा बुरा लगता है। चलो, नहीं बोलूँगा। जन-तन्त्र-व्यवस्था पर तीन घण्टे का भाषण हो गया कोई बात नहीं।" मालवीय ने कहा।

"आप लोग व्यवहार में बड़े निकट और मृदुल प्रतीत होते हैं। क्या मैं आप लोगों का परिचय जानने की धृष्टता कर सकता हूँ ?" मिस्टर जैन ने कहा।

"क्षमा कीजियेगा ! डाकुओं के चंगुल से बच आने के अनन्तर जिस प्रकार परिचित की भाँति आपने अपने थर्मस का यह जेवर हम अपरिचित

लोगों को दिखा दिया—उसके पूर्व ही आपको हमारा परिचय जान लेना चाहिये था।" मालवीय बोला।

"यह ठीक है किन्तु प्रत्येक स्थान पर तर्क काम नहीं करता है, महोदय! तर्क और दर्शन का आधार साधारण जीवन में क्या गत्यवरोध नहीं उत्पन्न करता है?" मिस्टर जैन ने उत्तर दिया।

"जो लोग साधारण जीवन को ही तर्क और दर्शन के साँचे में ढाल लेते हैं वस्तुतः उनका जीवन परम सुखी रहता है। उसका अभाव ही आज समस्त क्लेश-आपदाओं का कारण बना हुआ है।" मालवीय ने कहा।

"हो सकता है। किन्तु इस तर्क-वितर्क के स्थान पर, अब यदि आप महानुभाव अपना परिचय दे देवें तो कृपा होगी।" मिस्टर जैन ने दोहराया।

"यों यात्रा में परिचय देना क्या युक्ति-संगत है?" मालवीय बोला।

"तब आप शान्तिपूर्वक उधर खिड़की की ओर मुँह करके बैठिये। क्यों व्यर्थ कष्ट उठा कर मेरा सर खा रहे हैं?" अनायास ही मिस्टर जैन ने कुछ बिगड़ते हुये कहा।

डब्बे में एक क्षण को सन्नाटा खिंच गया और वहाँ का वातावरण क्षुब्ध हो गया। प्रमदा को मालवीय पर क्रोध आ रहा था। वह सोच रही थी कि मालवीय की व्यवहार-शून्यता इसी प्रकार अनेक अवसरों पर विषाद का कारण बन जाती है। किसी भी अपरिचित व्यक्ति से इतनी अधिक बहस कौन सी समझदारी की बात है? तभी उसने वेदन से कहा—"क्या बदतमीजी हो रही है। एक नये आदमी से इस प्रकार ऊट-पटांग बातचीत करना बन्द कर दीजिये आप लोग।"

"मिस्टर जैन मैं इनकी ओर से आप से माफी माँगता हूँ। ये आगरा में एक कालेज में गणित के प्रोफेसर हैं, किन्तु जामेट्री की 'प्राब्लम्स' में उलझे रहने के कारण ये हर समय 'एल्जेब्रा' के 'माइनस-प्लस' बने रहते हैं।" वेदन ने कहा।

"नहीं साहब, माफी माँगने की क्या बात है। इनके जीवन का तर्क ही व्यवहार में उतर आया है, बस, और कोई बात नहीं है!" मिस्टर जैन ने कहा और खिड़कियों पर अधिक लटकते हुये अपने दोनों बच्चों को सँभालते हुये बोले—"आप इनके मित्र हैं और निकटतम······और आप क्या करते हैं?"

"साथ ही मैं इन्हीं के साथ कालेज में अर्थ-शास्त्र का अध्यापक हूँ।" वेदन ने उत्तर दिया।

"तब तो आप दोनों महानुभाव ही समाज के युवक-वर्ग का नाश करने में तुले हुये हैं।" मिस्टर जैन ने तपाक् से कहा।

मालवीय को डब्बे की सीट के तख्ते जैसे चरचराते प्रतीत हुये। प्रमदा प्रसन्न हुई कि मालवीय को कोई सवा सेर मिल गया और तभी वेदन बोला—"वाह जैन साहब, बहुत अच्छे, खूब—यह कृपा हम पर ही हुई है या समूचे प्रोफेसर-वर्ग पर······।"

"नहीं प्रोफेसर साहब इसको अन्यथा न लेवें। आप तो उस विनाश के उपकरण मात्र हैं। वास्तव में मैं उस शिक्षा-प्रणाली की ओर संकेत करना चाहता था जिसने इन विभिन्न विषयों के पोस्टर लगा कर शिक्षा के व्यापार को प्रचारित किया है, जो समाज के उस कोमल-तल को बोझिल बना रहा है जिसका नाम विद्यार्थी अथवा हमारे भविष्य निर्माता, राष्ट्र के होनहार कर्णधार हैं। आज शिक्षा के माध्यम से जो बुद्धि-नाश व धन-हानि हो रही है वह ऊपर से दिखावे में उतनी ही प्रिय लगती है जितनी मास में प्रथम तिथि को आपको मिलने वाली नोटों की गड्डी। ······· आप भी क्या करें? इस सब में लाभ केवल इतना है कि आज के शिक्षितों के एक समूह विशेष को—आप सरीखे अनेकों को—निश्चित आय का एक सिलसिला अवश्य बना हुआ है। ·········"

प्रोफेसर वेदन एवं प्रोफेसर मालवीय के क्लास-लेक्चर्स जैसे ठप्प होते प्रतीत हो रहे थे और दोनों मूर्तिवत मिस्टर जैन के उस कर्कश भाषण

को कानों की राह अटक-अटक कर मस्तिष्क में उतारते जा रहे थे। तभी जैसे उस क्षणिक-नीरवता को वेदन ने भंग किया और वह बोला—"प्रत्येक विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण सम्भावित हैं। इसको तो आप मानेंगे ही मिस्टर जैन। मैं यों कुछ कहना नहीं चाहता, किन्तु आपने जो अनायास यह कह दिया कि हम युवक-वर्ग को नाश करने पर तुले हुये हैं; इस पर मुझे आपत्ति है। हम लोग भी, जो शिक्षा के उस विधान से सन्निद्ध हैं—यह मानते हैं कि शिक्षा प्राप्त करने में आजकल जो अधिक धन व्यय होता है और आधी से अधिक आयु केवल उसकी जटिलता में समाप्त हो जाती है; वह प्रणाली अवश्य परिवर्तित होनी चाहिये, किन्तु जहाँ तक प्रश्न विभिन्न विषयों एवं उनकी उच्च श्रेणियों का है वे सर्वथा समीचीन हैं ' ······जो भी हो हम इस वाद-विवाद के लिये इस समय कदापि न तत्पर थे, न हैं। साथ ही हम परिचय के प्रारम्भिक आधार को भी छोड़ रहे हैं। अस्तु, मेरा अनुरोध है कि आप इस प्रसंग को यहीं समाप्त कर देवें······और मैं मालवीय को क्या कहूँ······खैर सब ठीक है।" कह कर वेदन शान्त हो गया।

मालवीय ने ध्यान किया कि वार्तालाप के उस तर्क-कुतर्क में जो कुछ आवेश का वायुमण्डल प्रकट हो गया है उसे शान्त करना चाहिये और तभी उसने अत्यधिक विनम्र एवं कोमल शब्दों में कहा—"छोड़िये भी मिस्टर जैन! हम कालेज-स्कूल वाले भी कभी-कभी सोचते हैं कि वास्तव में अपनी व विद्यार्थियों दोनों की शक्ति तथा आयु का हम अपव्यय कर रहे हैं—फिर भी जैसा हमारे भाई कह रहे हैं—हमारा आपका कुछ घण्टों का परिचय है और कुछ घण्टों ही रहेगा। अच्छा हो हम वाद-विवाद की कटुता में न पड़ कर सरल-हृदय व्यवहार को अपनावें। मुझे तो प्रतीत हो रहा है कि हमारी ट्रेन ही पटरी से उतर कर खेतों में दौड़ने लगी। बात महावीर जी की हो रही थी और हमें-आप को स्मरण हो आयीं देवी सरस्वती········"

इस पर प्रमदा, वेदन, मालवीय तथा मिस्टर जैन भी हँस पड़े। उस समस्त वार्तालाप से उदासीन श्रीमती जैन अब तक नींद की उसाँसें खींच रही थीं—उठीं और जैसे उनके गोद की बेबी कहीं खो गई, इस प्रकार चौंक कर उसे टटोलने लगीं। बेबी उनकी गोद में ही सो रही थी। अतः उसको थपथपाते-थपथपाते वे पुनः सो गयीं।

"देखिये! देहली निकट है आप बहुत संक्षेप में उस विवरण को सुना दें जिससे हमारा कौतूहल शान्त हो······" मालवीय ने बात जोड़ दी।

"आप लोग देहली ही जा रहे हैं? वहाँ रुकेंगे?" मिस्टर जैन ने प्रश्न किया।

"जी हाँ, हमारे कालेज की एक सप्ताह की छुट्टियाँ हैं। आज रात्रि तो हम लोग वेटिंग-रूम में व्यतीत करने की सोच रहे हैं। कल प्रातःकाल हम एक मित्र के यहाँ जावेंगे जो यहाँ लोक-सभा के सदस्य हैं······" मालवीय ने उत्तर दिया।

'आप लोग युवक-वर्ग को नाश करने पर तुले हुये हैं।' यह बात वेदन को कुछ विशेष रुचिकर प्रतीत नहीं हुई। अस्तु वह एक ओर हट कर प्रमदा से बातचीत करने में संलग्न हो गया। तभी मिस्टर जैन ने कहा—"देहली आने दीजिये। अभी तो हम आप एक रात साथ रहेंगे। तब बहुत बातें कर सकेंगे।" मिस्टर जैन ने उत्तर दिया······"कहिये भाई साहब, आप को मेरी किसी बात से यदि क्षोभ हुआ हो तो क्षमा करें।" वेदन को सम्बोधित कर मिस्टर जैन ने बात जोड़ दी।

"नहीं साहब, ऐसी क्या बात है। यह तो अपना-अपना मत एवं दृष्टिकोण है।" वेदन ने उत्तर दिया।

४

तभी ट्रेन न्यू-देहली स्टेशन पर आ लगी। न्यू-देहली स्टेशन नया बन रहा था तथा सब तरफ रोड़े-पत्थर फैले हुये थे। एक प्लेटफार्म से दूसरे प्लेटफार्म को मिलाने के लिये एक बड़ा सा पुल बन रहा था जिसका लोहे का एक भारी ढाँचा दूर तक फैला हुआ था। वेदान व मालवीय वाला सेकैंड क्लास का कम्पार्टमेंट ठीक इस पुल के नीचे आकर खड़ा हुआ। तभी मालवीय बोला—"खैर साहब, जो भी हो काम तो रेलवे-मन्त्रालय कर रहा है। शास्त्री जी ने सभी ओर अच्छी उन्नति दिखलायी है।"

"जी हाँ, टीका-टिप्पणी करना लोगों का एक सिद्धान्त बन गया है। त्रुटियाँ कहाँ सम्भव नहीं हैं; किन्तु जहाँ प्रगति हो रही है, उन्नति हो रही है, देश आगे बढ़ रहा है—वहाँ मानना भी चाहिये। आजकल एक हवा चल गयी है कि अपनी सरकार है। अपने आदमियों की तरह ही उसे बुरा-भला कहो।" मिस्टर जैन ने मालवीय के मत की पुष्टि की।

"सदियों की गुलामी के बाद जितना भी हुआ है, बहुत कुछ है। देश के निर्माण में एक युग का समय लगता है। जितनी सरलता से देश को स्वतंत्रता मिल गयी है; देश का निर्माण उतना सुगम नहीं है।" मालवीय बोला।

"फिर वही वादाविवाद। आप रोकिये न।" प्रमदा ने वेदन से कहा।

"अब मैं क्या कहूँ? यह मालवीय गणित के स्थान पर दर्शन (फिलासफी) का प्रोफेसर होता तो अच्छा था।" वेदन ने प्रमदा को उत्तर दिया।

"मैं सब सुन रहा हूँ।.........भाभी जी मेरे विरुद्ध 'कान्सप्रेसी' करके आप अपना ही नुकसान कर रही हैं।" मालवीय ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया—"आपके लिये पान लाऊँ।" कहते-कहते वह प्लेटफार्म पर उतर गया।

"जरा बुलाना तो, मालवीय को...... ।" प्रमदा ने वेदन से शीघ्रता में ओठों पर किंचित हास झलकाते हुये कहा।

"ए मालवी!" वेदन ने पुकारा।

मालवीय तब तक उस ऊबड़-खाबड़ प्लेटफार्म पर दस-बीस पग आगे बढ़ गया था। तत्क्षण ही ट्रेन ने सीटी दी। तभी वेदन ने पुनः पुकारा—"मालवीय।"

लौट कर दौड़ता हुआ मालवीय जब तक डब्बे में चढ़ा ट्रेन चल दी।

"क्यों साहब, आदत से मजबूर हैं......न!" प्रमदा बोली।

"क्यों भाभी, हुआ क्या?"

"पान के बहाने दौड़े और मैं ही बताऊँ कि क्या हुआ?" प्रमदा ने उत्तर दिया।

मालवीय मुस्कराता रहा और ज्योंही उत्तर देने को उसने मुँह खोला प्रमदा ने पुनः आरम्भ किया—"अब बीबी-बच्चे वाले हो गये हो। ये हरकतें छोड़ दो।"

"पर, भाभी हुआ क्या?"

"अब बोलो मत। तितलियों के पीछे दौड़ोगे तो कभी...... ।" प्रमदा को बोलते-बोलते रोक कर मालवीय बोला—"भाभी, तुम्हारी आँखें हैं कि दूरबीन ।"

"जो एक बार परख लिया जाता है उस पर हर समय नज़र रक्खी ही जाती है ।" प्रमदा कह गयी ।

"कसूर बार-बार नहीं होता है । अब माफ भी कर दो ।" वेदन ने बीच में ही कहा ।

"वाह जी वाह ! वेमतलब तोहमत । माफ कीजिये मैं वह कसूर-वसूर कुछ नहीं मानूँगा ।" मालवीय बोला ।

"तुम क्या कोई नहीं मानता है किन्तु......" और तभी ट्रेन देहली स्टेशन पर रेंगने लगी ।

× × × ×

निश्चय हुआ कि सभी सेकन्ड क्लास के वेटिंग-रूम में रात्रि व्यतीत करेंगे । पंजाब मेल लगभग साढ़े आठ बजे देहली पहुँचा होगा । देहली का रेलवे प्लेटफार्म ट्यूब-लाइट्स से दमक रहा था । व्हीलर के बुक-स्टाल तथा उस बड़ी घड़ी के बीच का स्थल जहाँ काँच का एक भारी बोर्ड गाड़ियों के आवागमन की तालिका को प्रकाश से चमकाता है—भव्यता तथा व्यस्तता का केन्द्र बना हुआ था । वहीं सामने आने-जाने के मार्गों से आते-जाते नर-नारियों के मोहक स्वरूप को देखर प्रतीत हो रहा था कि भारत की राजधानी आ गयी । वैभव की एक विचित्र छटा दृष्टिगत हुयी जिसे देखकर पता लगा कि कौन कहता है कि भारत देश कृषकों का, श्रमिकों का अथवा निर्धनों का है । प्रतीत हो रहा था अटूट सम्पत्ति भरी पड़ी है इन स्त्री-पुरुषों की आल्मारियों में । मानों इनके यहाँ कपड़ों की तरह नोटों के बन्डल भरे पड़े हैं । तभी तो सिवा रेशम अथवा महीन खादी की धवलता के कहीं कुछ नहीं दिखायी देता है ।

इसी भीड़-भाड़ के बीच से वेदन, प्रमदा, मालवीय, श्री व श्रीमती जैन तथा दोनों उछलते हुये बच्चे आगे बढ़ गये और धीरे से सेकन्ड क्लास वेटिंग रूम जा पहुँचे। प्रतीक्षालय भरा पड़ा था। कोई कोच, कुर्सी अथवा बैंच खाली नहीं थी। तभी एक ओर से इन का सामान उतार कर कुलियों ने बीचों-बीच ढेर लगा दिया।

पन्द्रह बीस मिनट बाद ही यकायक, कोने के दो बैंत के कोंच खाली हुये और तत्काल उनको हस्तगत कर इस दल ने दो बिस्तर बिछा दिये। एक बिस्तर मिस्टर जैन का था जिस पर श्रीमती जैन ने अपनी बच्ची को सुला दिया और दूसरा बिस्तर फैला कर वेदन, मालवीय तथा प्रमदा बैठ गये। तत्काल ही स्वर गूँजा—"बाबू जी! भूख लगी है।"

दोनों बच्चों को एक साथ चुप कर मिस्टर जैन किसी उधेड़बुन में बाहर चले गये।

वेदन ने एक दृष्टि प्रतीक्षालय की उस व्यस्तता पर फेंकी। भाँति-भाँति की आकृतियाँ, भाँति-भाँति की पैकिंग-सामग्री देखकर वेदन यों ही मन ही मन मुस्करा दिया, तभी भयंकर काला आदमी-झकाझक सफेद कोट-पतलून पहने जो वेस्ट-इण्डीज का वासी प्रतीत होता था; हाथ में एक हल्की चमड़े की अटैची हिलाता प्रतीक्षालय में आया और दूर से सन्तोष न करके वहाँ की भीड़-भाड़ का एक-एक कोना झाँकते हुये निराशा में अपने चेहरे की कालिमा को और अधिक गहरा करता हुआ तथा उसी प्रकार अटैची हिलाता हुआ लौट गया। इसे देखकर वेदन व प्रमदा ही नहीं, प्रतीक्षालय के अनेक लोग अनायास ही हँस दिये।

तभी कहीं से मालवीय एक आराम-कुर्सी घसीट लाया जिस पर बैठ कर उसने प्रमदा के बिस्तर पर अपने पैर लम्बे कर लिये। श्रीमती जैन सुन न लें इस ध्यान से बहुत धीमे से वह बोला—"वेदन! आदमी यह जैन भी कुछ सनकी दिखायी देता है।"

"एक तो किसी अपरिचित के साथ ऊटपटाँग बातें करो और ऊपर से उसे सनकी बताओ……मुझे ये पति-पत्नी दोनों ही बड़े सरल व सज्जन दिखायी दे रहे हैं। जैन तो आकृति से एक सौम्य व प्रतिष्ठित व्यक्ति जान पड़ता है। तुम जो यह उल्लूपन, हर समय दिखाया करते हो उसी से अपरिचित ही क्या परिचित भी कुड़कुड़ा जाते हैं।" वेदन बोला।

"मैंने हज़ार बार कसम खाई है कि कम बोला करूँ। दूसरे की सुनूँ अपनी कम कहूँ। किन्तु बहस की झक हर समय मस्तिष्क में भरी रहती है जो स्थान-स्थान पर अप्रिय बन जाती है।………" मालवीय ने उत्तर दिया।

"तुम दोनों मियाँ-बीबी एक से हो। तुम्हारी वह मधुर भी जब जिससे बात करेगी; जली-कटी। लगेगा जैसे उससे सुन्दर अथवा उससे अधिक बुद्धिमान इस जगत में और कोई है ही नहीं। वही हाल तुम्हारा है। अब मिस्टर जैन ने जो दो-चार बातें उखाड़-पछाड़ की सुना दीं तो जी खुश हो गया होगा……है, न!" प्रमदा बीच में बोल पड़ी।

"अब डाँटती क्यों हो?……मुझे ही समझा लेने दो। देखो न कैसा टीपू की तरह चुपचाप बैठा, बेचारा, सुन रहा है……।" वेदन ने मालवीय की ओर देख कर हँसते हुये कहा।

"वाह! अब तुम लड़ने दो। मैं इन्हें डाँटूँगी……मैं तो बात कह रही हूँ।" प्रमदा बोली।

"नहीं भाभी, आप ठीक कह रही हैं। संसर्ग के प्रभाव से कोई अछूता नहीं बचता है……आप बहुत ठीक कह रही हैं। मधुर पर आपका और उसका प्रभाव मुझ पर भली भाँति पड़ा है—मैं मानता हूँ………।" मालवीय ने उत्तर दिया।

"बहुत अच्छे, मालवीय बहुत अच्छे।"

"अगर ऐसा है तो हम भी एक होना जानती हैं। मधुर और मैं दोनों ही फिर तुम लोगों को मिलकर…… ।" प्रमदा कहती गयी।

"क्या बात है ? तुम लोग और मिलकर……मालवीय ये औरतें मिलकर……ये कभी मिल भी सकती हैं। दुनियां में औरतें अधिक क्या यदि दो भी मिल जायें तो……लेकिन ये और मिल जायें।" वेदन ने बीच में टोक कर कहा।

प्रमदा यां मुस्करा रही थी किन्तु उसकी त्योरियों में धनुष प्रकट होकर विलीन हो रहे थे। उधर श्रीमती जैन वार्तालाप में निष्क्रिय भाग ले रही थी। वह भी जब प्रसंग दो स्त्रियों के मिलने पर अटक गया तो उन्हें दूर से कुछ आकर्षण हुआ; परन्तु अपने ही तक।

"भाभी, चलो छोड़ो इस प्रसंग को। यह बताओ वह आदमी जो उस दिन मिला था फिर सामने आवे तो पहचान सकती हो ?" मालवीय ने मुस्कराहट को ओठों में भींच कर कहा।

"कौन सा आदमी ?"

"वही जो कह रहा था कि……।"

"या जिसने तुम्हारी उनके चुटकी काटी थी।"

"तुम अपनी कहो। उसको तो मधुर पहचान सकती है…… ।"

तत्क्षण ही एक व्यक्ति ने प्रतीक्षालय में प्रवेश किया। इस समय लगभग साढ़े नौ बज रहे थे। मिस्टर जैन ने बच्चों को दूध लाकर पिला दिया था और वे सो गये थे। तभी प्रमदा ने धीरे से कहा—"सुनते हो…… ।"

"बोलो……।" ज्यों वेदन ने चौंकते हुये कहा क्योंकि उस समय वह उन देवीजी को देख रहा था, जो दूसरी ओर की दीवार के सहारे पड़े हुये बीच के कोच पर लेटी हुई थीं और उनके सरहाने……उनको पति ही मान लेना चाहिये—बैठे हुये उनके सर के बालों में उंगलियाँ

फेर रहे थे और वे श्रीमती जी कनखियों में अपने नेत्रों का रस उँडेल कर उनकी अनुराग-भावना का रसास्वादन-पब्लिक-प्लेस (प्रतीक्षालय) में घर के ड्राइंग रूम की भांति कर रही थीं।

"देख क्या रहे हो ? आजकल रिवाज़ है। घर में इन्हें अवकाश कम रहता है।" मालवीय बोला और उस ओर देखता हुआ इस जोर से मठारा कि वे युगल-स्नेही तो सतर्क हुये, साथ ही समूचा प्रतीक्षालय एक बार मालवीय की ओर देखने लगा। कुछेक तरुण तो उस क्रिया से मुस्कराते और कुछ अधेड़ व्यक्ति गम्भीर होकर अपने व्यतीत में समा गये।

"मालवीय ! तुम कालेज के प्रोफेसर क्या कभी-कभी लड़कों से भी गये-बीते हो जाते हो ! क्या जोर से खाँसे हैं आप।" वेदन बोला।

"छोड़ो भी, सुनो······।" प्रमदा ने पुनः कहा।

"बोलो क्या कह रही हो।"

"यह जो व्यक्ति सामने खड़ा कुली को पैसे दे रहा है यह निश्चित वही आदमी है जिसने उस दिन मुझसे वह बेहूदगी की थी······।" प्रमदा बोली।

"कि कहाँ अकेली जा रही हो······।"

"मालवीय हँसी मत करो। मैंने इसे पहचान लिया है और पूरी गम्भीरता से कह रही हूँ।"

"सच!" वेदन बोला।

"बिलकुल······।"

"फिर क्या है आने दो साले को······मालवीय उसे इधर ही सरका लाओ·· ···लेकिन देवीजी समझ लेना। फिर पहचान लो। हम लोगों ने भी थोड़े दिन पहले ही कालेज छोड़ा है। अगर हमने इलाज कर दिया तो······ऐसा न हो कि धोखे में कोई गरीब मारा जाय।"

"मैं कब कह रही हूँ कि उसको मारिये, किन्तु यह निश्चित है कि यह वही आदमी है।"

"तब फिर क्या है ? अच्छा भोजन रहेगा।" मालवीय बोला।

तभी मालवीय उठा और उस व्यक्ति के निकट जाकर तपाक् से कह गया—"आइये ! क्या आपको कोई स्थान नहीं मिला ? आप इधर निकल आइये ! हमारे उधर एक कुर्सी खाली है।" कहते हुये वह उसे अपने कोच की ओर ले गया।

ज्योंही वह कोच के निकट पहुँचा और उसने प्रमदा को समक्ष देखा तो एक बार तो वह काँप गया। उसके चेहरे के उड़ते रंग को वेदन व मालवीय ने भी देखा और तब अधिक सरलता पूर्वक वे उसको अपने निकट बैठालने को तत्पर हो गये। कुर्सी उसकी ओर बढ़ा कर मालवीय वेदन के निकट बिस्तर पर आ बैठा और उसने उस नवागन्तुक से प्रश्न किया, "कहिये, आपका निवास स्थान ?"

"आगरा......।" नवागंतुक का काँपता स्वर बाहर आ गया।

वेदन ने मालवीय तब प्रमदा की ओर देखा। वे दोनों भी विस्मय चकित हाल में उसे देख रहे थे। तभी मालवीय ने उस व्यक्ति पर प्रश्न की दूसरी गोली दाग दी—"क्या काम करते हैं ? शक्ल से तो आप बीमा एजेन्ट मालूम होते हैं।"

"मैं बीमे का ही काम करता हूँ।"

उत्तर सुनते ही मालवीय ने वेदन के हाथ पर हाथ पटक दिया और तत्परता पूर्वक कह गया—"क्या तीर निशाने पर बैठा है ?" तब उस व्यक्ति को सम्बोधित कर उसने पुनः प्रश्न किया—"आप आदमियों का बीमा करते हैं या औरतों का बीमा भी करते हैं ?"

प्रश्न को सुन कर नवागन्तुक दो क्षण शान्त बैठा रहा। वह उत्तर देने के लिये संभवतः ओंठ चला ही रहा था कि मालवीय ने अपने प्रश्न

में इतना और जोड़ दिया—"और आपको बीमे मिलते कहाँ पर हैं ?......
मैं भी बीमे का काम प्रारम्भ करना चाहता हूँ। अच्छी तफरीह रहती है।
सड़क चलते 'बिजनेस' होने की उम्मीद रहती है। बीमे की खानापूरी न
भी हुयी तो आशा बँधती है। बातचीत तो हो ही जाती है। आसामी ठीक
मिल गया और कनवेसिंग तगड़ी हो गयी तो फार्म भी भर ही जाता
है......क्यों साहब !"

नवागंतुक ज्यों सुन्न बैठा किसी भयावह स्थिति की कल्पना में मौन
हो रहा था तभी उसके कानों में फिर गड़गड़ाहट हुई—"आप बोलते
क्यों नहीं साहब ! बीमा एजेन्ट तो बोलने में बड़े कमाल के आदमी होते
हैं। क्या आप अकेले में बोलते हैं ? सब के सामने नहीं बोल पाते......
आखिर, आपकी बोलती बन्द क्यों है......बोलिये साहब ! हम तो आपका
बोलना सुनना चाहते हैं। आप बोलें तो हमारा काम बने। हाँ, तो
बोलिये।" इस बार का स्वर वेदन का था।

"क्यों साहब, मेरे बोलने में क्या खास बात है...... ?" जल्दी में
नवागन्तुक कह गया।

वेदन व मालवीय दोनों की प्रश्नात्मक मुद्रायें प्रमदा को देख गयीं।
प्रमदा ने भी आँखें मटका कर और ओठ हिलाकर जैसे स्वीकृत करली थी
कि हाँ यह वही पाजी है। उस समय जो स्निग्ध गढ़े प्रमदा के दोनों
गालों पर पड़ गये थे उनमें भरी प्यार की गहराइयों को जैसे दूर से स्पर्श
कर मुग्ध होता हुआ वेदन उस नवागंतुक की ओर घूम गया।

"बस, अरे साहब कुछ और बोलिये। मोहब्बत की बातें कीजिये......
आपकी शक्ल बता रही है कि आप इस काम में एक्सपर्ट हैं। हमने सुना
था। एक दिन दोपहर में सुभाष पार्क के सामने खड़े-खड़े आप हवा से
बातें कर रहे थे......कहिये साहब, मैं झूठ तो नहीं कह रहा हूँ ? थी न
ऐसी बात !" मालवीय कहता ही चला गया।

"मैं इधर दस वर्ष से सुभाष पार्क ही नहीं गया······ ।" नवागंतुक बोला।

"ठीक है। आपने इसीलिये बीमे का धंधा प्रारम्भ किया है। क्यों साहब, कभी टेढ़े-मेढ़े क्लाइन्ट भी मिल जाते होंगे ?" वेदन कह गया।

"आप इन्हें तंग क्यों कर रहे हैं। बेचारे नये एजेन्ट मालूम देते हैं। काम प्रारम्भ किये थोड़े दिन ही हुये हैं। तजुर्बा कुछ कम मालूम होता है।" दूर ही से अनायास जैन ने कहा। बात कुछ ऐसी जम कर बैठ गयी कि नवागंतुक अनायास अपने स्थान से कुछ उचकने सा लगा और तभी मालवीय ने कुछ कर्कश स्वर में कह डाला—"बैठ······ किये। देखिये! आप इन्हें पहचानते हैं। ये हमारी भाभी जी हैं······ ।"

सुनकर प्रमदा ने अपनी आरक्त-आकृति दूसरी ओर घुमा ली और अत्यधिक भयभीत सी मुद्रा में नवागंतुक भूमि पर दृष्टि गड़ाये बैठा रहा।

"एक दिन ये कह रही थी कि आप सड़क चलते अपने बीमे की कनवेंसिंग करते हैं। क्यों साहब ?" मालवीय ने प्रश्न किया।

नवागंतुक सोच रहा था कहाँ फँस गया और तभी धीमे से बोला — "अच्छा साहब यदि मज़ाक पूरी हो गयी हो तो मैं चलूँ।"

"वाह साहब। जायेंगे कहाँ ? बैठिये! अभी तो आप से काम है······ वाह आपने भी क्या कहा है। आप और मज़ाक ? क्या हमको बाज़ार में चुकंदर नहीं मिलते ?" मालवीय ज़ोर से हँसते हुये कह गया।

अब तक निकटवर्ती कोचों पर लेटे-बैठे लोग भी उस ओर आकर्षित हो चुके थे। वे अनुभव कर रहे थे कि ये लोग मिल कर किसी नये आदमी की खिल्ली उड़ा रहे हैं। इसी समय नवागंतुक चलने की तत्परता में उठ खड़ा हुआ और अपनी चमड़े के बैग की धूल को फूँक से उड़ा कर उसका ताला ठीक करने लगा।

तभी मालवीय ने आगे बढ़कर उसके दोनों कन्धों को पीछे की ओर दाब कर कुर्सी पर बैठालने का सा उपक्रम करते हुये कहा—"अरे वाह ! आप बड़े खूबसूरत हैं । बातों ही बातों में चल दिये । अरे साहब, बैठिये ।"

अब नवागंतुक ने झुँझलाहट में अपने को मालवीय से छुड़ाते हुये तथा अपने कंधों को झकझोरते हुए अनायास कहा—"आखिर आप चाहते क्या हैं ? किसी भले आदमी······ ।"

"की मरम्मत ।" सब को देखते-देखते मालवीय कह गया ।

प्रमदा सहम गयीं । ज्यों उसका हृद्‌चाप तीव्र हो गया । वेदन भी तत्पर हो गया कि यदि सचमुच मालवीय अपने पुराने कालेज के हाथ दिखा दे तो वह भी जुट जाय ।

सहमा सा नवागंतुक सचमुच भागने की चिन्ता में था । उसे व्यतीत घटना का स्मरण हो आया । जैसे संसार में अनेकों का बाहरी रूप आकर्षक व अन्तरंग कलुपमय होता है वैसा ही वह व्यक्ति दिखाई दे रहा था । हमारे समाज में चतुर्दिक ऐसे दुर्गन्धि युक्त कीड़ों की कमी नहीं जो व्यवहार में व कर्मों से कीच और गन्दगी में बिलबिलाते हुये भी देखने में चमकीले और लाल दिखाई देते हैं । आज समाज में जो कलुप-कलिमा उच्च-स्तरीय व्यक्तियों के द्वारा वातावरण को विषाक्त बना रही है, वह तथाकथित निम्न-वर्ग से तो सम्भव भी नहीं है । समाज में यत्र-तत्र फैली वैयक्तिक इकाइयाँ इतनी निडर हो रही हैं कि किसी भी अनैतिकता के अलावा अनाचार की ओर अग्रसर होने में उन्हें किंचित हिचक नहीं होती । आज किसी भी सम्भ्रान्त महिला का विचरण खतरे से खाली नहीं है । आज शिक्षित-वर्ग भी अधिकांशतः इतने दूषण को अपने में लपेटे हैं कि जो जहाँ जिस स्थिति में है वहीं अनाचारों को घेर कर जल में पड़ी भँवर की तरह सब कुछ अपने में लीन कर रहा है ।

यह बीमा-एजेन्ट भी यों समाज के व्यक्ति के रूप में शिक्षित वर्ग का पतिनिधित्व करता है । भली संगति उससे अपेक्षित है । किन्तु रास्ते चलते

भले घर की बहू-बेटियों की प्रतिष्ठा में अपशब्द कहने में इसे कोई हिचक नहीं। ऐसी घटनायें यत्र-तत्र सुनने को मिलती हैं।

उस क्षण नवागंतुक काँप रहा था। वह जिस प्रकार पकड़ में आया था उस प्रकार तत्काल ही उसे अपनी मर्यादा की मौत सामने दिखायी दे रही थी। जो अपराध वह कर चुका था उससे इस समय भाग कर भी मुक्ति नहीं थी।

तभी मालवीय ने आगे बढ़कर उस व्यक्ति के कान में फुसफुसाया—"याद रखना! आगे कभी भी ऐसी हालत की तो इतने जूते पड़ेंगे कि तबियत तर हो जायगी।……"

बीमा-एजेन्ट सचमुच उस समय तर ही हो गया। उसके पैरों के नीचे से धरती खिसक गयी और……"जाइये" का शब्द सुनकर वह चुपचाप वहाँ से हट आया।

वेदन मालवीय से बारम्बार पूछता रहा—"कहा क्या?"

५

“यह था कौन ?”

“समाज का कोढ़।” वेदन ने मिस्टर जैन के प्रश्न का उत्तर देते हुये कहा।

“क्या मैं पूछ सकता हूँ कि बात क्या थी ?”

“मनुष्य रूप में पशु की बात ही क्या हो सकती है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज किन्हीं नियम-बन्धनों पर आश्रित है जिन्हें यह मानने से इंकार करता है।”

“ऐसा तो बहुत से लोग करते हैं।” मिस्टर जैन ने वेदन को उत्तर देते हुये उस व्यक्ति की ओर तत्परता से देखा जो अब तक इनके निकट से जाकर कुली द्वारा अपना सामान उठवाने की चिन्ता कर रहा था।

“जो लोग ऐसा करते हैं उनके लिये समाज ने नहीं, कानून ने तो दण्ड-निर्धारण किया ही है।”

“किन्तु कौन से लोग ? इस व्यक्ति का अपराध क्या है प्रोफेसर साहब ?”

“मिस्टर जैन, ये नहीं बतावेंगे, आइये मैं बताऊँ।” कहते हुये मालवीय मिस्टर जैन को प्रतीक्षालय के बाहर वाली लम्बी गैलरी में लिवा ले गया।

पाँच-सात मिनट बाद ही ये दोनों व्यक्ति लौट आये और तभी मिस्टर जैन ने कोच पर अपना आसन सँभालते हुये वेदन को सम्बोधित कर कहा, "देखिये, मैं दृढ़ता पूर्वक तो कुछ कह नहीं सकता किन्तु मेरा ध्यान है कि उस घटना में उस व्यक्ति का अपराध उद्देश्य-रहित है।"

"वाह साहब, खूब। यह उद्देश्य-रहित अपराध क्या बला है ?" वेदन ने किंचित आवेश में कहा—"वह तो और भी बुरा है। गुनाह बेलज्जत······"

"मेरा अभिप्राय है कि जिस प्रकार सड़क पर चलते-चलते अनेक लोग अपने आप से बातें करते जाते हैं, नाना प्रकार की भंगिमायें बनाते हैं, ऐंठते जाते हैं, बिगड़ते जाते हैं, कभी हँसते भी जाते हैं उसी प्रकार की कोई विचित्र आदत कहीं इस व्यक्ति की भी न हो······!" मिस्टर जैन ने अपना मत व्यक्त किया।

मिस्टर जैन के विचित्र तर्क को सुनकर एक बार तो वेदन व मालवीय चौंके परन्तु तत्काल ही वेदन बोल पड़ा—"आप कहना चाहते हैं कि उसमें उसी प्रकार की कोई अस्वाभाविक उत्तेजना है जिसके कारण वह मार्ग में भी स्त्रियों को पुकारता चलता है। उससे तो अच्छा है कि या तो उस पर मालवीय वाला इलाज किया जाय अथवा उसे पागलखाने भेज दिया जाय।"

"अब यह आप जानें किन्तु ऐसा भी सम्भव है, क्योंकि आप देखें वह हर समय अपने ओठ चलाता रहता है। न मानें तो देख लीजिये। अभी सामान उठवा कर वह नीचे किसी प्लेटफार्म पर ही होगा।"

वेदन तो शान्त बैठा रहा किन्तु जुगुप्सा मालवीय चल दिया।

कुछ देर बाद लौट कर मालवीय ने बताया कि मिस्टर जैन का कथन सत्य है। तब अपनी कुर्सी पर पुनः बैठकर बहुत धीमे से उसने कहा—"भाभी से उसने कुछ भी कहा हो किन्तु······" तब तीव्र स्वर में उसने सब के समक्ष प्रकट किया कि कोई भी जाकर देख आवे। वह प्लेटफार्म पर अपने सूटकेस पर बैठा है और इतनी तीव्रतापूर्वक ओठ चला-चलाकर

अपने आप से बातें कर रहा है तथा हाथ हिला-डुला रहा है कि लगता है किसी दूसरे से बातें कर रहा है।

एक क्षण को वहाँ मौन छा गया तब अनायास ही मालवीय ने मिस्टर जैन की ओर मुड़ते हुये कहा—"छोड़िये भी······हाँ मिस्टर जैन आप अपनी कहानी समाप्त कर दीजिये। प्रत्येक घटना पर विशेष अथवा कम महत्व आरोपित करना हमारे आप के हाथ की बात है। कँरोचन तभी तक रहती है जब तक मन भरा रहता है। अब उस बदमाश को दस-बीस कह लेने के बाद जी भी हल्का हो गया है, साथ ही उस घटना विशेष की स्मृति-रेखा भी धुँधली हो गई है।"

"साथ ही प्रत्येक प्रसंग व परिस्थिति पर तर्क भी कार्य नहीं करता है। इतना और जोड़िये प्रोफेसर मालवीय······।" मिस्टर जैन ने कहा।

"अब इस समय यह भी स्वीकार्य है, किन्तु वह डाकुओं वाला कथांश तत्काल समाप्त कर दीजिये। बहुत देर हिलगाये रक्खा······।" हँसते हुये मालवीय ने उत्तर दिया।

"मैंने बताया कहाँ तक था?······"

"वही कि आप ने एक तो थर्मस में रक्खे अपनी पत्नी के जेवर दिखाये तथा आप महावीर जी में संध्या-आरती की तैयारी में थे और उस के पश्चात् स्टेशन आने वाले थे······।" वेदन ने तत्काल बताया।

"ठीक है। हाँ, तो हम लोग संध्या आरती के लिये तत्पर हो गये और इस ध्यान से कि तत्काल चल देंगे जिससे विलम्ब न हो। हमने अपना सामान उसी तांगे वाले पर लदवा दिया। तुरन्त ही हम भगवान् की आरती करने चले गये और प्रोफेसर साहब! श्री महावीर जी में संध्या-आरती का वह दृश्य यदि आप कभी देखें, जब बहुसंख्य घृत-पात्रों की दीप-शिखायें प्रज्वलित होकर समूचे मन्दिर को दैदीप्यवान करती हैं और तब उससे उभरी वह सुगन्धि जो रोम-रोम में प्रवेश कर पवित्रता को आत्मा में भर देती है। कितना मनोरम दृश्य होता है, वह······।"

"अवश्य मिस्टर जैन हम अवश्य उस भव्य प्रतिमा व आकर्षक दृश्यावली के दर्शन करेंगे। आपको हमारे साथ चलना होगा।" वेदन ने उत्तर दिया।

प्रमदा अत्यधिक एकाग्र होकर उस कथा को सुन रही थी। मालवीय भी गुरु-गम्भीर बना मिस्टर जैन द्वारा प्रकट की जा रही उस विशेष घटना को यों ध्यानस्थ हो सुन रहा था; किन्तु कभी-कभी उसका ध्यान उचट कर उस व्यक्ति में उलझ जाता था जिस पर उसने अभी-अभी अपना सम्पूर्ण रोष शब्दों में व्यक्त कर दिया था। किन्तु इस समय वह सोच रहा था यदि वह कतिपय व्यक्तियों की भाँति सूने में भी बड़बड़ाता रहता हो तब उसने भाभी जी को लक्ष्य कर कुछ नहीं कहा होगा। तब तो बड़ा अनर्थ ही हुआ। किन्तु इस प्रकार के उद्दण्ड लोग भी बहुसंख्या में समाज में हैं—यह मानना है और यह कि उनके निराकरण का कोई उचित उपाय होना चाहिये। यह भी परमावश्यक है अन्यथा इस प्रकार की डाकेज़नी...... ... डाकेज़नी शब्द का ध्यान कर मालवीय ने अनायास प्रमदा की ओर देखा और उच्च स्वर में हँस पड़ा। उसे यों अपने में ही हँसते देख प्रमदा, वेदन एवं मिस्टर जैन भी उस ओर आकृष्ट हुये। तभी प्रमदा ने प्रश्न किया—"यह हंसी किस बात पर आयी......?"

"कुछ नहीं भाभी।"

"कुछ तो।"

"यों ही क्या ? मिस्टर जैन ने तो ऐसी कोई बात कही नहीं जिस पर आप श्रीमान यों हँस पड़े...... ।"

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो।"

"एक बात ध्यान आ गई।"

"वह क्या ?"

"कुछ नहीं।"

"वाह, यह भी कोई बात हुई !"

"हें:, छोड़ो भी।"

"लेकिन तुम हँसे क्यों ?" वेदन तत्काल प्रश्न कर उठा।

"आप से मतलब ?" मालवीय पुनः हँसता गया।

प्रमदा ने इस बार गम्भीर होकर हा—"जहाँ बैठे हो या तो वहाँ सभ्यतापूर्वक बैठिये अन्यथा बाहर जाइये।"

"भाभी आप तो नाराज़ होती हैं। अब मैं वह बात कह दूँगा जिस पर मुझे हँसी आई तो आप और नाराज़ होंगी।"

"अच्छा ठीक है। मत कहो। तुमसे कोई पूछ भी नहीं रहा है।"

"लेकिन अब तो मैं बताऊँगा।"

"बताओ न ! मना किस ने किया है। स्वयं चित्त, स्वयं पट्ट······ यह पुरुषों की आदत होती है।" प्रमदा कह गई।

"ऐ, ऐ ! मैं भी पुरुष हूँ।" वेदन बोल पड़ा।

"भाभी जी तुम्हीं को कह रही हैं।" मालवीय ने तपाक से कहा।

"ओ हो ! आपको यह गरूर है कि आप पुरुष हैं।" प्रमदा ने बहुत धीमे से वेदन से कहा।

"तो क्या मैं······।"

"मैं कुछ नहीं कह रही हूँ। मैं कुछ नहीं कह रही हूँ। वैसे आजकल अखबारों में रोज खबरें आती हैं कि लड़का-लड़की बन गया······।"

"तो आपका ध्यान है मैं भी बन गया या बनने वाला हूँ·········" वेदन ने बिगड़ते-हँसते हुये कह डाला।

"बुराई क्या है ? मैं तो परसाद बाँटूगी। कस-कस कर बदले लूँगी·········।" अत्यन्त मन्द स्वर में प्रमदा ने वेदन से कहा और मुस्कराती रही।

बात कुछ ऐसी अटक कर रह गई कि किंकर्तव्यविमूढ़ से मिस्टर जैन बैठे के बैठे रहे और जो उचटते स्वर मालवीय तक आये तो मालवीय भी अपनी बातों में गुदगुदी भर लाया—"भाभी...... ।"

"उफ ! इनकी इच्छा है कि ये लड़की से लड़का बन जायें। तुम समझते नहीं!" वेदन ने मालवीय के कान में कहा जिसका आशय स्पष्टतः प्रमदा समझ गई और उसने उच्चट कर वेदन के चुटकी काट ली। वह कहने लगी—"बको मत। मिस्टर जैन की बातें सुनते-सुनते न जाने क्या ऊटपटांग बातें करने लगे।"

"लेकिन मालवीय, तब मज़ा आ जायगा। तब हम भी देखेंगे—इन को कौन पूछता है?"

"तब तुम्हारी पूछ बढ़ जायगी।" अनायास प्रमदा कह गई।

लड़कियों की भाँति लजाया सा वेदन सोच गया—काश! ऐसा हो गया तब क्या होगा और वह हँसते हुये कह गया—"धत्! दुष्ट कहीं की।"

"हाँ, मिस्टर जैन मियाँ-बीवी की बातचीत समाप्त हो गई है। अब आप आरम्भ कीजिये।" मालवीय कह गया।

"जैसे मैं कोई ग्रामोफोन हूँ, भाई साहब। जब चाहें सुई चढ़ाई और उतार ली। मुझे माफ कीजिये।"

"नहीं मिस्टर जैन आप हम लोगों को क्षमा करें। अपराध हमारा है अब हम ऐसी धृष्टता नहीं करेंगे। आप सुनाइये, आगे क्या हुआ?" वेदन ने तत्परता से कहा। वह प्रमदा को आँखों में डपटता जाता था; ज्यों कह रहा हो अब ऊट-पटांग बातें मत करना।

तभी मिस्टर जैन ने प्रारम्भ किया—"हाँ, तो आरती-वन्दना के अनन्तर हम अपने ताँगे तक आये। उसी समय, जिस फाटक पर हमारा ताँगा खड़ा था उसके आगे वाले फाटक पर तीन ताँगे और लद रहे थे। उन्हें देख कर ज्यों मुझे सन्तोष हुआ कि चलो अन्य लोग भी साथ रहेंगे।

वस्तुतः, हमारा ताँगा तथा वे ताँगे साथ ही साथ चलते यदि तत्काल ही मेरे ये छोटे पुत्र-रत्न न पुकार उठते—"बाबू जी, पानी।"—मैंने तुरन्त सुराही से पानी ढाल कर इन्हें पिलाया और तब हमारा तांगा चल दिया।

"महावीर जी ग्राम की सरहद पर ही एक पहाड़ी नदी सी बहती है जो खोह कहलाती है। दूर तक इस खोह की मिट्टी की ऊँची-ऊँची कगारें ढाल अथवा ऊँचाई के रूप में दूर तक फैली हुई हैं। इसी के बीच से हमारा ताँगा जा रहा था तभी मैंने कोचवान से प्रश्न किया—'वे ताँगे कहाँ हैं?' —'आगे बढ़ गये हैं, बाबू जी।'—मैं उत्तर पाकर शान्त हो रहा; किन्तु रह-रह कर मन उद्विग्न हो जाता था जैसे अनजाने कोई अप्रत्याशित घटना घटित होने को हो।

"धीरे-धीरे हम लोग लगभग डेढ़ मील निकल आये होंगे तभी मैंने सड़क पर दूर चमकते हुये तीव्र प्रकाश की रेखा को अनेक बार प्रकट व बिलीन होते देखा। तभी मैंने ताँगे वाले से पुनः प्रश्न किता—'क्यों जी! यह रोशनी काहे की है?'—'बाबू जी, कोई मोटर आ रही होगी।'—उत्तर से न जाने क्यों मुझे सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि किसी कार या बस की रोशनी की स्थिरता में और उसमें बड़ा अन्तर था।

"इस बीच मैं यह भी बताऊँ कि वही धर्मशाला वाला जमादार जो स्टेशन से सुबह साथ चला था शाम को फिर हमारे साथ चल दिया। इस समय वह भी बोला—"किसी गाड़ी की रोशनी तो ऐसी नहीं होती है।"—व्यग्रता में मैंने पुनर्वार सामने देखा। प्रकाश जलकर बुझ जाता था। वह प्रकाश हमसे कम से कम दो फर्लांग की दूरी पर था। तभी बढ़ते-बढ़ते हमारे ताँगे ने मार्ग में पड़ने वाले एक गाँव को पार किया। गाँव पार करते ही एक गहरा बाग सामने आया जहाँ मैंने दूर से देखा कि तीनों ताँगे पेड़ों के झुरमुट के नीचे खड़े हैं। मैंने यों ही ध्यान किया सम्भवतः किसी ताँगे की कोई वस्तु गिर गई हो या कोई और बात हो। उस समय

तक हमारा ताँगा उन ताँगों से लगभग सौ गज दूर था। तभी अनायास हमारा ताँगा उन ताँगों के बराबर तक आ गया।

"तत्काल एक हाथ-बैटरी की लपलपाहट भरे प्रकाश के साथ एक तीखा स्वर गूँज गया—"रोको······।"

"जब तक मैं दृष्टि स्थिर करूँ एक पिस्तौल मेरे वक्ष के निकट आ लगा। ताँगा रुक गया। किनारे लगाओ" के स्वर के साथ सब मिलकर चार व्यक्तियों ने तांगा घेर लिया।

"इनमें से तीन व्यक्ति नीले रंग की मिलिशिया की सी पोशाकें पहने थे और एक देहाती के वेश में घुटनों तक की धोती पहने था और अस्त-व्यस्त साफा सर पर बाँधे हुये था। हमारा ताँगा किनारे लगा दिया गया। घोड़े का मुँह खेतों की ओर था और हम लोग सड़क को निहार रहे थे जो उस समय सूनी खड़ी हमारे साथ मौन सहानुभूति व्यक्त कर रही थी। वे तीनों डाकू ताँगे वाले को व आगे बैठे उस जमादार को अपने साथ उतार ले गये और मुझ से कह गये—'चुप बैठना।'

"मैं तत्काल समझ गया आज किसी कुचक्र में फँस गया। श्रीमती जी भगवान के नाम का जाप देने लगीं और मैं स्थिर होकर भविष्य की कल्पना में लीन हो गया। उस समय हमारे ताँगे के पास कोई नहीं था। वे डाकू उन अन्य तीन ताँगों के निकट चले गये थे जो हम से २०-३० पग दूर खड़े थे। चतुर्दिक अन्धकार छाया हुआ था। एक क्षण की मौत की सी उदासी घिर आई थी। सामने के खेत निरीहता में हमारे साथ कराहने को आतुर हो रहे थे। ये बच्चे सहम गये और बड़े साहब बोले—"बाबू जी, ये कौन हैं? क्या चोर हैं?"—मैंने इन्हें शान्त किया और मन में सोचता रहा—क्या खूब? जैसे इसने ऐसे चोर पहले कभी न देखे होंगे। किन्तु बच्चे भी कभी-कभी तीव्र-बुद्धि से कार्य कर तत्काल निष्कर्ष निकाल डालते हैं।

"मैंने तुरन्त ध्यान किया जेवर कैसे बचाया जाय। अब फँस तो गये ही हैं। मेरी प्रत्युत्पन्न मति ने कुछ कार्य कर दिखाया। मैंने सोचा—यों पहने हुए तो जेवर बच नहीं सकता। अतः इसे सुराही या थर्मस में डाल देना चाहिये। बचेगा तो बच जायेगा। थर्मस का ध्यान कर मैंने इनसे कहा—'अपना नेकलेस जल्दी से निकालो तो।'—उसी बीच मैंने सहमते हुये बहुत धीमे से थर्मस के ढक्कन की चूड़ियाँ घुमा डालीं। इनके नेकलेस का बन्द करने का खटका टूटा हुआ था उसके स्थान पर इन्होंने एक सेफ्टीपिन लगा रक्खी थी। अतः इन्होंने भी पिन खोल कर अविलम्ब नेकलेस निकाल दिया। खटका होता तो सम्भवतः एक-दो सेकंड और लग जाता। वहाँ उस समय एक-एक पल का महत्त्व ज्ञात हो रहा था। भय था कि कहीं वे लोग लौट न पड़ें। जब मैंने नेकलेस थर्मस में डाल दिया तो साहस और बढ़ा। तभी मैंने श्रीमती जी से हाथ के तोड़िये, कड़े व आर्मलेट खोलने को कहा। जल्दी में किन्तु आहिस्ते से इन्होंने भी सब वस्तुएँ एक-एक कर मेरे हाथ में रख दीं और मैंने वे थर्मस में सरका दीं। थर्मस में ऊपर तक बरफ व पानी भरा हुआ था। जब लगभग सब जेवर मैंने उसमें रखकर उसका ढक्कन बन्द किया और सोचा कि अब कान के टाप्स व नाक की कील कोई चाहेगा तो ले लेगा, तभी वह दल मेरे ताँगे के निकट आ गया।

"वस्तुतः, जितनी देर में मैंने अपने जेवर की सुरक्षा की योजना सम्पन्न की उतनी देर में वह दल उन तीन ताँगों के यात्रियों की लूट करता रहा। उस में ही मुझे समय मिल गया।"

"कमाल किया साहब आपने।" अपने उत्कंठित नेत्रों को और अधिक विस्फारित कर वेदन कह गया।

प्रमदा निरन्तर श्रीमती जैन की ओर निहारती जा रही थी, ज्यों उनकी तत्परता की सराहना कर रही हो और वे सामने कोच पर बैठीं अपने पति द्वारा प्रकट की जा रही कथा को सुन रही थीं और मन ही मन अपने पति

की तत्कालिक बुद्धिमत्ता को सराह रही थीं जिसके आधार पर वह अपना समस्त जेवर बचाने में समर्थ हुयीं।

"तब क्या हुआ मिस्टर जैन?" मालवीय ने प्रश्न किया।

"तब साहब उन लोगों ने मेरे ताँगे के निकट आते ही एक ने तो पुनः मेरे सीने पर रिवाल्वर ताना। दूसरे ने बैटरी जलाई और तीसरे ने कड़क कर कहा—"नीचे उतरो!"—ज्यों अपने किन्हीं गुरुजन का निर्देश पालना हो, इस प्रकार आज्ञा पाते ही मैं ताँगे से नीचे उतर आया। उतरते ही एक व्यक्ति ने मेरी जेबों का सामान निकालना प्रारम्भ कर दिया। मैं यही पाजामा, कुर्ता व सफेद बण्डी पहने था। मेरी सब जेबें खखोल डाली गयीं और ताली का गुच्छा, कागज-पत्र, डायरी, पान की एक पुड़िया, दो इलायचियाँ, फाउन्टेनपेन, क्लिपदार केस में रक्खा थर्मामीटर तथा एक सौ चौंसठ रुपये सात आने मेरी जेब से उन डाकुओं ने निकाल लिये।

"एक व्यक्ति यह सब निकाल-निकाल कर देता जाता था तथा दूसरा जो ग्रामीण वेश में था; अपने कुर्ते को फैला कर उसमें रखता जाता था······।"

"क्यों मिस्टर जैन उन लोगों की क्या अवस्था होगी?" वेदन ने प्रश्न किया।

"उन मिलिशिया पोशाक वालों में कोई भी तीस से अधिक न होगा किन्तु वह ग्रामीण अवश्य पचास के लगभग दिखता था।"

"तब असली डाकू वही था। ये तीनों उसके सहायक होंगे!" वेदन कह गया।

"वह कैसे? क्या साथ रहे हो?" मालवीय ने तपाक् से बात चिपका दी।

"आप हैं मूर्ख। यह मनोविज्ञान है। किसी की प्रेरणा हो यह बात दूसरी है अन्यथा नवजवान, रूप की लूट-खसोट अधिक करता है, धन की बहुत कम।" वेदन ने उत्तर दिया।

"वाह साहब, क्या मनोविज्ञान है ? क्या नवजवान को धन की आवश्यकता नहीं होती। और फिर रूप की लूट भी बिना धन के अधूरी रहती है। रोमांस के लिये भी पैसा चाहिये बाबू साहब। आज के मजनूँ फाकेकश्त कम होते हैं। जो होते हैं वे येन-केन-प्रकारेण धन अवश्य प्राप्त करते हैं अन्यथा आज के इस फैशन के युग में वे हिल भी नहीं सकते। अपनी प्रेयसि को प्रसन्न करने को और कुछ नहीं तो एक सिनेमा तो दिखायेंगे ही। और मिलन-व्यापार बढ़ चला तो......।" मालवीय कहता गया।

"जो हो। मेरा अपना मत है कि इस प्रकार के डाकों में कोई युवक नेतृत्व नहीं कर सकता। उसमें कोई अधेड़ या वृद्ध व्यक्ति ही होगा जो वास्तविक डाकू होगा। युवक राजनीतिक डाकों में अवश्य भाग लेंगे—नेतृत्व करेंगे। करते आये हैं।" वेदन ने स्थिर होकर कह दिया।

"भाई, तुम्हारे मनोविज्ञान को हम नहीं पहुँच सकते। बस, मिस्टर जैन की कहानी चुपचाप सुनो। अब तुम तर्क लड़ाने लगे।" मालवीय बोला।

"तब मिस्टर जैन ?"

"जब मेरी जेबों की तलाशी समाप्त हो गयी और वे रिक्त भी हो गयीं तब मुझे उसी कड़कती आवाज में निर्देश मिला—'जाओ। बैठो।'—मैं ताँगे पर जा बैठा। तभी बैटरी फिर जलनी प्रारम्भ हुई और श्रीमती जी के ऊपर उसका प्रकाश फेंका गया। उसी प्रकार कड़कता स्वर प्रकट होता रहा—इस औरत के पास जेवर नहीं है ? इसका जेवर कहाँ है ?—मैंने उत्तर में कहा—"इसके पास कोई जेवर नहीं है। जो कुछ है सामने है।"—'वह भारी नेकलेस वाला औरत किधर गया ?'—एक बोला। तत्क्षण मैं शान्त होकर सोच गया—इस डाके का सूत्र-पात्र श्रीमती जी का नेकलेस देखकर विगत रात्रि स्टेशन पर ही हो गया था।

"तभी उनमें से दो व्यक्तियों ने दो ओर से मेरे उस सन्दूक को उठाने का उपक्रम करते हुये पूछा—'इसमें क्या है ?' मैंने उत्तर दिया—'कपड़े'

'इसमें ज़ेवर नहीं है?'—एक ने कड़क कर प्रश्न किया। मैंने उत्तर दिया—'नहीं।'

''भगवान महावीर का कसम खाता है कि इसमें जेवर नहीं है। बोलो—जल्दी बोलो।' मैंने उसी तत्परता में उत्तर दिया—'मैं भगवान महावीर की सौगन्ध खाता हूँ, कि इस सन्दूक में ज़ेवर नहीं है।' इतना सुनकर उन्होंने मेरा ताँगा छोड़ दिया और वे खेतों में उतर गये। जाते-जाते वे कह गये—'ऐ! आध घण्टे तक ऐसे ही चुप खड़े रहना। बोलना मत।'

६

"और वह फाउन्टेनपैन वाली बात तो आपने बतायी ही नहीं।" श्रीमती जैन ने अपने पति से कहा।

"हाँ, सुनिये। मैं एक बात तो बताना भूल ही गया।" मिस्टर जैन ने वेदन व मालवीय की ओर मुड़कर पुनः कहना प्रारम्भ किया।

"सुनाइये मिस्टर जैन।" वेदन बोला।

"हुआ यह कि जिस समय मेरी जेबों की तलाशी हो रही थी उसी समय, जैसे मैंने बताया, मेरी जेब से यह 'पैन' व 'थर्मामीटर' भी निकाल लिया गया था। 'पैन' मेरी एक परमावश्यकता है। अतः मैंने साहस कर उन शैतानों से, अन्त में कहा—'अरे भाई, आपने मेरा सब सामान तो छीन लिया किन्तु इस पैन और थर्मामीटर का आप लोग क्या करेंगे? वह मुझे लौटा दीजिये।' तत्काल ही एक कड़कती आवाज़ सामने आई, जो उस ग्रामीण को सम्बोधित कर रही थी—'ऐ! कलम वापस दो।'—तत्काल ही उस धूर्त ने मेरा यह पैन व थर्मामीटर अपनी जेब से निकालकर मुझे लौटाया। कमबख्त मेरे कलम को जेब में ऐसे भरे हुये था जैसे तिजोरी में निरीह सोने की छड़। प्रोफेसर मालवीय! मुझे दुःख एक सौ पैंसठ रुपये जाने का किंचित भी नहीं हुआ। अपेक्षाकृत तब अपार प्रसन्नता हुयी जब मुझे मेरी प्रिय लेखनी मुझे प्राप्त हुयी......।"

"अरे साहब ! यह क्या कम खुशी की बात है कि अपनी चतुराई से आप अपना सब ज़ेवर बचा लाये...... ।" वेदन बोला ।

"देखिये तो...... ।" मालवीय ने सब का ध्यान एक ओर आकर्षित कर दिया ।

सामने वाले कोच पर जो युगल अब तक स्नेह-क्रीड़ा में हाथ-पैर चला रहे थे—उनके ओठ अभी-अभी ही एक दूसरे से पृथक हुये थे ।

"अरे साहब ऐसा ही है तो घर है, धर्मशाला है । होटल है... ... वहाँ चले जाँय । बगल में रिटायरिंग रूम है ।" मालवीय ने इतने उच्च-स्वर में कहा कि उस युगल ने तो सुना ही होगा साथ ही दाहिनी ओर की दीवार के सहारे पड़े कोचों के आगे रक्खी, छै-सात कुर्सियों पर बैठे तरुणों में से दो कह उठे—"और कुछ नहीं तो यहीं बाथरूम है ।"

उस समय रात्रि के लगभग तीन बज रहे थे । प्रतीक्षालय में लगभग सभी निद्रा-निमग्न थे । एक तो वह छै-सात तरुणों का दल जाग रहा था जिनमें कि सभी कोई न कोई पुस्तक, पत्रिका अथवा समाचार-पत्र पढ़ने में तल्लीन थे और रह-रहकर कनखियों से प्रत्येक उन युगल-स्नेहियों को देख लेता था तथा आपस में ठिठोली कर लेता था । वे लोग (युगल) भी लज्जा के इतने परे थे कि अपनी उत्तेजना में समय तथा स्थान सभी कुछ भुला रहे थे । इस पर भी इन तरुणों का अब तक यह साहस न हुआ था कि वे अपने मुँह से कुछ व्यक्त करते ।

दूसरी ओर वेदन-मालवीय, प्रमदा एवं श्री व श्रीमती जैन जाग रही थीं । इनमें मालवीय के साहस अधिक तीखे थे । चुम्बन के उस आदन-प्रदान में उभरी अपनी असहायावस्था को प्रोफेसर मालवीय स्वीकार न कर सके और तभी उन्होंने व्यंग्य की वह गोली दाग दी । उनके शब्दों के साथ ही वह तरुण-वर्ग जो उभरा तो लगभग आध घंटे तक बड़बड़ाता ही रहा ।

"अरे साहब ! मोहब्बत है । ध्यान आ गया । अब आप क्या करेंगे । आप...... ।" एक बोला ।

उसको रोकते हुये दूसरा बोला—"ध्यान आ गया तो और कुछ नहीं, चलती ट्रेन का संडास तो खाली मिलेगा। यहाँ वेटिंग-रूम में हम पर कृपा करें, भाई-ई-ई।"

"चुप बे, शीतल। यह सेकिन्ड क्लास वेटिंग-रूम है कोई चिड़िया घर नहीं है। चें-चें चें किये ही चले जा रहे हैं। सब तरफ भले लोग सो रहे हैं।"

"खाली दो सामने जाग रहे हैं......" तपाक् से आवाज़ आई।

"ऐ-ऐ! वह देखो। वह भी सो नहीं सकती। वह फिर बैठ गयी..." एक बोला और उसने दक्षिण दिशा की ओर वाली दिवाल के सहारे पड़ी एक कोच पर अभी-अभी उठकर बैठती एक सुन्दर नवयौवना की ओर इंगति की। वह तरुणी सचमुच बार-बार लेटती-उठती थी और कनखियों से उस युगल के स्नेह-व्यापारों को निहार कर मुँह फेर लेती थी। इस ओर भी उन तरुणों का विशेष आकर्षण था। लड़की कभी-कभी अपनी उचटती दृष्टि उस तरुण-समूह पर भी फेंक कर घूम जाती थी।

इस वातावरण से उन तरुणों को विशेष आनन्द आ रहा था। यों सबके हाथ में कोई न कोई पाठ्य-वस्तु थी, किन्तु न कोई पढ़ रहा था न किसी का ध्यान ही लग रहा था। वे दो आकर्षण उन जागरूक-युवकों को उलझाये हुये थे।

"अब आप देखिये! ये लड़के जो उछल-कूद कर रहे हैं उसमें इनका कोई कसूर है, क्या?" मालवीय ने अनायास प्रश्न किया।

"बिल्कुल नहीं! उम्र के कच्चे, अनुभव के कोमल, सूरत के मुलायम—ये तरुण वातावरण के प्रोत्साहन पर ही बातें उछाल देते हैं।" मिस्टर जैन ने तत्काल कह डाला।

"आप ठीक कहते हैं मिस्टर जैन, किन्तु कहीं ये आवश्यकता से अधिक बढ़ जाते हैं।" वेदन बोला।

"वह आपको अब लगता है क्योंकि आप उस वर्ग से हट कर आगे

की सीढ़ी पर चढ़ गये हैं। उस अवस्था में हम आप सभी एक से रहते हैं······।"

"इतना होते हुये भी क्या नैतिकता और सदाचार को आप तिलांजलि दे देंगे।" वेदन कह गया।

"ऐसा अवसर आते-आते तो कुछ समय लगता ही है। वह हमारा कर्त्तव्य है कि बाढ़ आने के पहले हम बांध बाँधे, न कि सामने से बढ़ते पानी को देखकर हम बालू की बोरियाँ लेकर भागते फिरें। ऐसे में बाँध की वे बोरियाँ भी बह जायेंगी······।" मिस्टर जैन ने कहा।

"जब सामने प्रोत्साहन हुंकार रहा हो तो बांध की बात सोचना भी मूर्खता है।" मालवीय कह गया।

"प्रोत्साहन भले ही सामने हो किन्तु यदि आत्म-संयम निरर्थक है तो समाज की धुरी पल-पल पर हिल जायगी और अन्ततः स्थान-च्युत हो जायगी······।" वेदन कहता गया।

"वह पल-पल पर हिलती है। स्थान-च्युत होती है या नहीं—मैं नहीं जानता। समाज के संयम से बड़ा धोखा भी व्यक्ति के लिये और कोई नहीं हो सकता······।" अत्यधिक तीव्रता में मालवीय बोला।

"तब सामने जो कुछ हो रहा है वह क्यों बुरा लग रहा है? वह जो हमको अशोभनीय लगता है, उसमें क्या हमारी समाज-गत मान्यता नहीं है। जो समूह को अशोभन प्रतीत होता है वही समाज को ठेस पहुँचाता है।" वेदन ने तत्परता से उत्तर दिया।

"मैं वह नहीं कहता। मेरा कहना है कि कहीं समाज अपने नियमों का कर्कशता का जामा पहना कर जब एक व्यक्ति की स्वार्थान्धता से दूसरे व्यक्ति की सत्यता को पीसता है तो समाज की धुरी हिलेगी ही······।" मालवीय बोला।

"पहली बात तो यह है कि सत्यता का निर्णय कौन देगा? कौन जानता है कौन सच्चा है? प्रत्येक का अपना-अपना दावा हो सकता है।

दूसरी बात—जो कुछ कहना चाहते हो वह स्पष्टतः कहो तो कुछ समझ में आवे। यों पहेली बुझाने से क्या बनेगा······।" वेदन कह गया।

"मान लो एक व्यक्ति किसी से प्रेम करता है······।"

"कैसे पता? कोई पारा-लेविल है कि पहचान लिया जाय······।" वेदन ने मालवीय की बात काटते हुये कहा।

"अरे साहब! मैं कहता हूँ कि किसी के कहने पर ही मान लीजिये! न मानिये तो परिस्थितियाँ मनवा देंगी······।" हाँ, तो उस प्रेम की चरम-आस्था में भी दोनों एक दूसरे को अप्राप्य हैं। बीच में दीवाल है समाज गत मान्यता रूपी पति अथवा पत्नी। तब आप क्या करेंगे? फिर उस दीवाल को ढा देने के लिये महान तत्परता के होते हुये भी वह ढायी नहीं जा सकती····· उस दीवाल में लेशमात्र भी न महत्व का आरोपण है न पात्र की आस्था—बताइये, ऐसे में क्या सम्भव है? उस व्यक्ति की इकाई की पिसन का समाज के पास क्या इलाज है? क्या उस व्यक्ति-विशेष के प्रति समाज का कोई उत्तरदायित्व नहीं है? ढोल-तासा बजाकर जो ढोल एक की गर्दन पर लटका दिया जाता है वह जीवन भर के लिये लटक गया? वह कभी उतरेगा ही नहीं? और फिर वह ढोल जिसमें आवाज कुछ नहीं। जो फूटा ढोल केवल औरों के सर फोड़ने का काम करता है। वह ढोल जो देखने में मोटा किन्तु अन्दर बिलकुल खोखला है। वह ढोल जिसमें मरा चमड़ा मढ़ा हुआ है और वह भी फटा हुआ। वह ढोल जब आवाज़ के नाम पर चीखता है तो लगता है, अपने वातावरण को चबा जायगा, किन्तु वह यह भी नहीं कर पाता······तब आप क्या करेंगे?" मालवीय कहता गया।

"क्या मैं पूछ सकता हूँ कि वह दीवाल बीच में जब बनने वाली थी तब उसका पूर्व संकेत नहीं था, क्या?" वेदन ने प्रश्न किया।

"था! होता है। किन्तु वही समाज का संयम-नियम आड़े आया—आता है। ऐसे में ही तो व्यक्ति पिसता है। तब समाज के अन्तर्गत पिसने

वाले उस व्यक्ति के प्रति समाज का क्या उत्तरदायित्व है……?" वेदन पर आँखें तरेरता हुआ मालवीय कह गया।

"कुछ नहीं। पिसन नहीं, त्याग नहीं तो प्रेम कैसा? पेन आफ लव ए पार्ट, एवर, एवर! हैज एवर लवर लव्ड एन्ड नो नाट ग्रीफ नाट पेन! व्हाट लव हैज नार साइड एन्ड नोर एन्ड साइड ऐगेन……?" वेदन ने उत्तर दिया।

"यह बकवास है। वह ज़माना लद गया। आई बिलीव इन एचीवमेंट। जनाब, इमर्सन कहता है नथिंग ग्रेट वाज़ एवर एचीव्ड विद-आउट इन्थ्यूजियाज्म। मेरा तो यह मत है कि भारतीय समाज पिसन और मरन का ही दूसरा नाम है। समाज नाम से वह नहीं बदल सकता—नहीं बदल सकता। उसे तो कानून ही बदल सकता है।"

"वह दूसरी बात है। तब वहाँ मैं इस शादी की थ्योरी को ही नहीं मानता। शादी ही कोई वह प्रयोग या उपाय नहीं है जिसके द्वारा पुरुष अथवा स्त्री की मानसिक, शारीरिक, आर्थिक, सामाजिक अथवा जीवन की प्रत्येक अथवा एकमात्र समस्या का हल हो……।" वेदन ने कहा और अनायास प्रमदा की ओर निहारने लगा।

प्रमदा अब तक शान्त बैठी दो मित्रों की वार्तालाप को, ध्यानस्थ हो सुन रही थी। अब इस स्थल पर अनायास ही बोल पड़ी—"दूसरे शब्दों में यही बात मालवीय भी कह रहे हैं। और ……यह ठीक है।"

एक सन्नाटा खिंच गया। वेदन को स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि जिन मौखिक सिद्धान्तो को तर्क रूप में वह कभी-कभी प्रकट कर देता है उस समय कर रहा है, अथवा यह मानता है कि वह कहने भर के लिये हैं, उनका कोई क्रियात्मक रूप नहीं है—उन्हें उस समय यह देखकर प्रमदा सिद्धान्त रूप में मानती है और जिसका स्पष्ट आभास इस समय जीवन में प्रथम बार हो रहा है तो उसके नेत्रों के समक्ष झिलमिले उठने लगे। वह अब तक सोच ही न सका कि समाज का झण्डा ऊँचा

उठाने में तत्पर उस पुरुष की स्त्री के अपने स्वतन्त्र विचार, उसकी स्वतन्त्र मान्यतायें-आस्थायें भी हो सकती हैं। तभी उसने मौन हो, एकटक प्रमदा को देखा और मुस्कराते हुये, ज्यों मन के धुयें पर जल के छींटे देना चाहता हो, कह गया—"हमारी सरकार ने 'डाइवोर्स' की व्यवस्था कर ली है।"

"वह भी एक प्रयोग है – सन्तोष नहीं।" मालवीय बोला।

"तब आप चाहते क्या हैं ?"

"कुछ नहीं। केवल इतना कहना चाहता हूँ कि जीवन का संतोष कहीं……नहीं है। यह प्रेम, विवाह, तलाक सामयिक सन्तोष-असन्तोष के उपकरण मात्र हैं। वास्तव में जीवन पाकर मनुष्य को पूर्ण शान्ति कहीं प्राप्त ही नहीं हो सकती……। अब मैं कह नहीं सकता कि उसमें कितना काम ईश्वर नाम की तथाकथित सत्ता का है, कितना प्रकृति का, कितना समाज अथवा व्यक्ति का……।"

"यह एक निराशावादी दृष्टिकोण है जो तुम्हारे उस 'एचीवमेंट' वाले सिद्धान्त से भिन्न है," वेदन ने तुरन्त व्यक्त किया और निरन्तर प्रमदा की अदलती-बदलती भाव-भंगिमाओं को देखता रहा। उसे प्रतीत हुआ—प्रमदा उस बहस में भाग लेने को उससे अधिक तत्पर है। उसके ओठ फड़फड़ा कर रह जाते हैं। अस्तु, वह प्रमदा को सम्बोधित कर बोला—"तुमने 'सोसियोलाजी' में बी० ए० क्या घास छीलने के लिये किया है ? तुम भी कुछ कहो।"

"यही कि हमारी सभ्यता, संस्कृति, समाज कभी उन्नति नहीं करते। ये केवल बदलते हैं। जो हज़ार वर्ष पूर्व था वह आज नहीं है, जो आज है वह सौ वर्ष बाद नहीं होगा। हमारे समाज की मान्यतायें और नियम तो दिन-प्रति-दिन बदलते हैं। जो भारतीय-समाज-व्यवस्था अब से दस साल पूर्व थी; आज नहीं है।……शादी और दहेज के बन्धन तो इसके स्पष्ट उदाहरण हैं। इसलिये प्रेम और विवाह का यह द्वन्द्व यदि आज है तो

कल रहेगा या नहीं, इसे कौन कह सकता है······रही जीवन के सन्तोष-असन्तोष की बात, वह निश्चित उसी रूप में है जिस रूप में मालवीय कह रहे हैं ···· ।" प्रमदा ने शान्त व सुस्थिर शब्दों में अपना अभिमत प्रकट कर दिया और तब तुरन्त और जोड़ गयी—"मैं यह बात केवल अपने देश की समाज-व्यवस्था के सम्बन्ध में कह रही हूँ। यों प्रत्येक देश की सभ्यता, संस्कृति व समाज कभी उन्नति नहीं करते, वह केवल बदलते हैं।"

इस विषय पर ज्यों दोनों प्रोफेसर एक पल को निर्वाक् रह गये। वेदन ने आज प्रथम बार यह अनुभव किया था कि समाज का नहीं—सृष्टि का समस्त प्राणी आज दुःखी है। वह आज दुःखी नहीं है, वह सदैव से दुःखी रहा है और रहेगा। तब उसका उपाय! तब उस अशान्ति का शमन वैयक्तिक द्वन्द्वों के निबटाने, समाज के झंझटों के सुलझाने में भी नहीं है। तब इस सृष्टि की समग्रता की शान्ति कहीं अन्यत्र है—उसके उपाय कुछ और हैं। तब वे क्या हैं? ·····ये अन्तर्भेद व्यक्ति ही में क्यों है? समाज में हैं। उससे बड़ी समाज में हैं। राष्ट्रों में हैं। उनके रूप भिन्न हैं, किन्तु असन्तोप सर्वत्र है। तब इस जगत व्यापी-असन्तोप की समाप्ति का उपाय—न सृष्टि में है न समष्टि में। किन्तु कहीं तो है? जहाँ भी होगा; जब प्राणी उसे जान लेगा तब वह अपने अस्तित्व को खो देगा। वह अच्छा होगा कि बुरा, वह उसे ज्ञात नहीं—किन्तु कुछ बदलेगा—बदल सकता है; इतनी आशा वह कर सकता है। तभी वेदन ने दृष्टि फेरी तो देखा सामने वाले वे युगल-स्नेही लाज में डूब कर नींद में खो गये थे। तभी उसने जो दृष्टि घुमायी तो मालवीय के नेत्र कुछ उलझे से पाये। तब वह घूमा तो उसने देखा प्रमदा के नेत्रों में, अनायास मुस्कराहट झूम रही थी जो उसे प्रिय नहीं लगी।

इसी समय मालवीय जैसे वातावरण की नीरवता को भंग करता हुआ बोल पड़ा—"अब देखिये। यह सामने के दोनों कदापि पति-पत्नी नहीं हैं।"

"वह कैसे ?" प्रमदा ने प्रश्न कर दिया।

"वे प्रणयी हैं—इतना मैं आत्म-विश्वास से कह सकता हूँ। उनमें अतृप्ति की हूकें उठ रही हैं यह तो स्पष्ट है ही। तब वे उसकी शान्ति की खोज में हैं। अवसर के उपयोग में हैं······" मालवीय ने उत्तर दिया।

"यहाँ मैं यह नहीं मानती। यह व्यवहार की उद्दण्डता है जिसमें तृप्ति-अतृप्ति निष्प्रयोजन है······।" प्रमदा ने स्पष्टतः अपना मत व्यक्त किया।

"कार्य में कारण की व्युत्पत्ति तो होती ही है—इसे तो आप मानेंगी।"

"ऐसे कारण और कार्य दोनों हेय हैं जिनमें शील-संयम को तिलाञ्जलि दे दी जावे।" प्रमदा ने किंचित आवेश-युक्त शब्दों में कहा।

"तो कहिये, मैं कह आऊँ कि हमारी भाभी जी का हुक्म है कि आप महानुभाव वेटिंगरूम के बाहर निकल जाँय।" मालवीय ने वार्तालाप की गम्भीरता को परिहास में बदलने का प्रयत्न किया।

"जी! आप रहने दीजिये। अब आगे यदि मैं वैसी उद्दण्डता देखूँगी तो जाकर स्वयं कहूँगी। तब उन्हें लाज अधिक आवेगी······।"

तत्क्षण ही दिखाई दिया कि उन तरुणों में से एक उन युगल-स्नेहियों में से पुरुदेव से वार्तालाप कर रहा है। धीरे-धीरे स्वर तीव्र होते गये।

"लीजिये साहब यह ताली और पर्ची······।" युवक कह रहा था।

"किस बात की ?" उन स्नेही महाशय ने प्रश्न किया।

"रिटायरिंग-रूम की।"

"किस लिये ?"

"आपको आराम पहुँचाने के लिये।"

"उन महाशय के साथ की देवी जी चुप्पी साधे, चादर को सर तक ढके, करवट लिये पड़ी थी।

"लेकिन मुझे इसकी जरूरत नहीं। मैंने कोई रिटायरिंग रूम बुक नहीं किया।"

"आपको इसकी जरूरत है और उसे बुक मैंने किया है।" युवक हँसता जा रहा था।

दूर बैठे अन्य लड़के मुस्कराहट और तब खिलखिलाहट में दोहरे हो गये।

"मुझे कोई जरूरत नहीं। आप बकवास मत कीजिये। आपसे क्या मतलब? आप कौन हैं?......बोलिये आप कौन हैं?" अचानक बिगड़ते हुये वे महाशय उठ बैठे।

"देखिये बिगड़िये मत! मैंने चार रुपये का खून कर दिया है। अब आपको रिटायरिंग-रूम में जाना ही होगा।" युवक निरन्तर हँसता रहा।

"हाँ साहब, जाइये। चले जाइये! रात्रि का समय है। आराम मिलेगा। वैसे ही आधे से अधिक रात बेकार चली गयी है।" समूह में से दूसरा युवक उठा और पास आते-आते कह गया।

"आप लोग बहुत शैतान मालूम होते हैं।" वे महाशय बिगड़ते गये।

"माफ कीजियेगा। हम ऐसा आपको सोचते हैं।" तीसरा युवक भी निकट पहुँच कर कह गया।

"आप चाहते क्या हैं?" रोष में उन महाशय के ओठ फड़फड़ा रहे थे।

दृश्य के उस परिवर्तन को देखकर प्रमदा, वेदन, मालवीय एवं मिस्टर जैन भी उच्च-स्वर में हँस रहे थे। इस सबसे वे महाशय और अधिक उत्तेजित हो रहे थे। उन देवी जी को तो जैसे काठ मार गया था।

वेदन बोला था—"लड़कों ने अच्छा मज़ा पैदा किया।"

"अभी देखो अन्त क्या होता है?" मालवीय बोला।

हँसते-हँसते अनायास अपने को रोकते हुये प्रमदा ने कहा—"जो भी हो, लड़कों का यह व्यवहार ठीक नहीं है?"

"और उनका?"

"उससे औरों को क्या लेना देना ?"

"तब क्यों कह रही थीं कि मैं स्वयं जाकर कह दूँगी।"

"समझाने और मज़ाक बनाने में यदि आप अन्तर नहीं समझते तो आपको ही समझाना बेकार है। क्या समझे ? प्रोफेसर मालवीय जी !" प्रमदा ने नेत्रों में मुस्कान भर कर कहा।

न जाने क्यों वेदन इस समय अधिक खिन्न बैठा था। ऊपर से वह हँस रहा था किन्तु उसका अन्तराल जैसे जल रहा था। उसे लग रहा था—वह प्रतीक्षालय प्रतिध्वनि कर रहा है—'किसी को किसी अवस्था में सन्तोष नहीं है।'

तभी दिखाई दिया सामने लड़के उन महाशय को चारों ओर से घेरे खड़े हैं और कहते जाते हैं—"नहीं साहब, अब तो हमारे रुपये खर्च हो गये हैं। आपको रिटायरिङ्ग-रूम जाना ही होगा। परदेश में आये हैं। हमें कुछ पुण्य कमा लेने दीजिये...... ।"

और सामने से रोष भरे दो शब्द ही बारम्बार प्रकट हो रहे थे—"शट अप......गेट आउट......शट अप......गेट आउट।"

तभी मालवीय अपनी कुर्सी से उठा और उन युवकों के पास जाकर बिना कुछ कहे एक-एक को उनकी कुर्सियों पर बैठा आया और तब उन महाशय को सम्बोधित कर बोला—"मैं इन लोगों की ओर से माफी माँगता हूँ। आप वैसे ही आराम कीजिये। जिसमें आप को सुख उसमें सबको सुख...... ।"

"वाह साहब, यह कैसे ? हमें तो यही कष्ट है। इसीलिये हम अपनी आँखें बन्द कर लेना चाहते हैं या इन्हें अपनी आँखों से हटा देना चाहते हैं...... ।" कई लड़के एक साथ बोल पड़े।

"अच्छा, आप लोग चुप रहिये।" दूर से ही मालवीय बोला।

लज्जा की विचित्र सी कुड़कुड़ाहट में वे महाशय चादर ओढ़ कर चुपचाप पड़ रहे।

मालवीय वहाँ से लौट आया किन्तु आते-आते उसने सुना—"अबे उल्लू! अब इन चार रुपयों का क्या होगा?"

"किसी और को भेज दे?" कोई एक बोला!

"लाइये, चार रुपये मैं आपको दिये देता हूँ, किन्तु आप लोग शान्त हो जाइये।" मालवीय ने उस ओर बढ़ते हुये कहा।

इस चख़-चख़ में प्रतीक्षालय के काफी लोग जाग गये थे। तभी उन में से एक वृद्ध महाशय जिनकी आयु पचपन के लगभग थी किन्तु उनके बाल सब सफेद हो गये थे फिर भी उनके चेहरे पर एक दमक थी और नहीं तो वार्तालाप में वे पूर्णतः युवक थे; अनायास बोल पड़े—"क्यों जनाब! वही किस्सा है?"

"जी हाँ, बाबू जी।" दो युवक एक साथ बोल पड़े।

"हरे नारायण! हरे नारायण!" वे बोले और तब एक युवक को बुलाकर धीरे से कहने लगे—"अरे भाई! क्यों छेड़ते हो? कभी कपोत-कपोती को एक साथ इठलाते, ऊपर अपनी छत की मुँडेर पर नहीं देखा क्या? तुम लोग बड़े बच्चे हो।"

"बाबू जी! ये इंसान हैं। पक्षी तो नहीं!"

"इस स्थिति में सब बराबर होते हैं।" वे वृद्ध हँसते हुये बोल पड़े।

"बाबू जी की जय"—बाबू जी की जय लड़कों के स्वर गूँज गये।

× × × ×

"हाँ, मिस्टर जैन! अब आगे!"

"एक कांड समाप्त हुआ है। अभी और बताता हूँ। आप सुनें भी तो।" मालवीय को उत्तर देते हुये मिस्टर जैन ने कहा।

७

"आज की गई रात्रि जो हँसी-मज़ाक और बहस में पार हो गई है तो अब घंटे-आध घंटे के लिये ये जम्हाइयाँ क्यों आ रही हैं !" मालवीय ने वेदन से कहा ।

"आप का दिमाग खराब है । मैं सो नहीं रहा हूँ । यों ही अभी बैठे-बैठे सर में कुछ दर्द होने लगा .....।" कहते हुये वेदन ने अपना मस्तक दाब लिया ।

"क्यों, क्या हुआ ? मैं सर दाब दूँ !" अनायास ज्यों उद्विग्न होते हुये प्रमदा कह गयी ।

"और फिर सामने बैठे उन लड़कों से हँसी कराऊँ !" वेदन मुस्कराया ।

"कोई तुम इस समय सबके सामने मोहब्बत करोगे ?" मालवीय बोला ।

"रेडियो एक्टीविटी में 'एक्शन' होते क्या देर लगती है !" अपने मादक नेत्रों का प्यार प्रमदा पर उँडेलते हुये वेदन बोला ।

"खामोश........." कहते हुये प्रमदा ने वेदन की बाँह में चुटकी काट ली ।

"ऐ ! चुटकी मत काटो । मालवीय बेचारा घबड़ाता है ।" वेदन बोला ।

"क्या हुआ ? क्या हुआ ? क्या भाभी जी भी चुटकी काटती हैं ? क्या

औरतें भी······?" मालवीय कुर्सी पर से उछलते हुये जैसे ऊपर फाँदता हुआ बोला और तब फिर पीछे हट गया।

"क्यों, क्या हुआ ? औरतें क्या नहीं कर सकतीं ? तुम्हें वह याद है; बहुत दिन हुए एक खेल आया था 'उल्टी-गंगा'······" वेदन बोला।

"यह क्या था ?" मालवीय बोल पड़ा।

"मैंने देखा था उस चित्र को !" ऊँघते-ऊँघते तत्काल सतर्क होकर बैठते हुये मिस्टर जैन ने कहा।

"क्या बात थी साहब उस खेल की !" वेदन कह गया।

"फिर भी, कुछ बताओ तो !" मालवीय ने अनुरोध भरे स्वर में कहा।

"अच्छा, मैं लेटती हूँ······।" प्रमदा अनायास कह गयी और लेटने का उपक्रम करने लगी।

"लीजिये ! ये सोने लगीं। आपके तो मतलब की बात है।" वेदन ने प्रमदा को अधलेटे उठाकर बैटाते हुये कहा।

"अच्छा दूर से बात करो। मैं बैठ रही हूँ।"

"मालवीय ! तुम भी कितने दुर्भागी हो। उल्टी-गंगा खेल नहीं देखा, धत्। और तुमने प्रमदा ?"

"मैंने भी नहीं देखा।"

"हाँ-हाँ तुम औरतें उसे क्यों देखतीं ?"

"वाह ! बेमतलब सिर पड़ना। बोलो भी, खास बात क्या थी उसमें ?"

"उस खेल में दिखाया गया था कि जब अब से पचास साल बाद सर्वत्र स्त्रियों का साम्राज्य होगा तब क्या होगा ?" वेदन बोला।

"ऐसे तो बहुत से खेल आ चुके हैं।" मालवीय बोला।

"जी नहीं। उसमें विशेषता थी। वह आधुनिकता के आधार पर बनाया गया था। और खेलों में तो पौराणिक कथाओं का समावेश है। उसमें दिखाया गया था कि आज का समाज पचास साल बाद जब स्त्रियों के आधीन होगा तब क्या होगा !"

"क्या होगा ?"

"एन्ड सन्स के सब बोर्ड हटकर एन्ड डाटर्स के हो जावेंगे।"

"वह कैसे ?"

"प्रोफेसर मालवीय एन्ड सन्स के स्थान पर तुम्हारी फर्म का नाम हो जायगा मधुर कुमारी एन्ड डाटर्स।"

"बहुत अच्छा। और……?"

"जिस प्रकार आजकल ट्रेनों में एक या दो डिब्बे लेडीज़ होते हैं उसी प्रकार तब एक या दो डिब्बे मर्दाने होंगे शेष सब ज़नाने।"

"क्या बात है ? तब होगा क्या ?"

"जैसे हम अपनी देवी जी को ट्रेन पर छोड़ने जाते हैं तो उनकी सुरक्षा की चिन्ता बनी रहती है उसी प्रकार तब देवी जी हम लोगों को छोड़ने आया करेंगी और हमारी सुरक्षा के लिए आस-पास की महिलाओं से जाते समय कह जावेंगी—ऐजी! हमारे ये पहली बार सफर कर रहे हैं। इन्हें अमुक स्टेशन पर ठीक से उतार दीजियो!"

"तब यह होगा ?" मालवीय ने खिलखिलाते हुये प्रश्न किया। उसके नेत्रों में उत्सुकता व शैतानी दोनों ही तैर रही थीं।

"और अभी क्या है ? जैसे बाजार, हाट, पार्कों में किसी लड़की को देखकर लड़के पीछे हो लेते हैं वैसे ही तब लड़कियाँ लड़कों के पीछे लगा करेंगी……।"

प्रमदा हँसते-हँसते दोहरी हो गई। मिस्टर जैन भी कनखियों में मुस्कराते रहे और दूर बैठे एक अधेड़ महाशय अनायास पूछ बैठे—"क्या जी, यह कोई खेल था ?"

"जी हाँ! घबड़ाइये नहीं। यह कोई सच्ची घटना नहीं है।" ज्यों बड़ी उलझन मानते हुये मालवीय ने कहा।

"घबड़ाये, लाला।" प्रमदा बोली। उसका प्रखर-रूप इस समय और निखर आया था। उसने अपने भाल की लाल बिन्दी व्यवस्थित की और ओठों पर हास झलकाते हुये जोड़ दिया—"ऐसा कौन पुरुष चाहेगा ?"

"अरे हाँ! सुनो तो, बीच ही में बोल पड़ीं। अच्छा बहुत बोल रही हो। मालवीय सुनो, वही सुनाये देता हूँ। तब यह होगा कि हर डिपार्टमेंट में पुरुषों के स्थान पर स्त्रियाँ काम करेंगी। सब स्टेशनों, ट्रेनों, वेटिंग-रूम स्त्री कार्यकर्त्रियों से भरे होंगे। अब ट्रेन चली। उसके दो डब्बे प्लेटफार्म पार कर गये, शेष ट्रेन अभी प्लेटफार्म पर ही है। तभी अनायास रेंगते-रेंगते गाड़ी रुक गई और लौट आयी। पुरुषों की नहीं, मिलिट्री की नहीं, स्त्रियों की भरी-लदी गाड़ी रुक गई। जैसे अब आजकल हम लोग प्लेटफार्म पर उतर कर टहलते हैं वैसे ही डब्बे से स्त्रियाँ निकल आयीं। कोई पंखा झल रही है। कोई बीच प्लेटफार्म पर खड़ी शीशे में मुँह निहार रही है······।"

इस समय प्रमदा ने अपने ओठों पर साड़ी रख ली। कौतूहल में मालवीय कभी प्रमदा और कभी वेदन को जल्दी-जल्दी देख जाता और और हँस कर जैसे दाँत किटकिटा लेता।

"और आगे?" तभी उसने पूछा।

"हाँ, तो एक स्त्री आयी और ट्रेन में एक छोर से दूसरे छोर तक कह गयी—गाड़ी सात घंटे 'लेट' जायगी। गार्ड साहब के बच्चा पैदा हो गया।" मालवीय! यानी दो मिनट पहले गार्ड साहब ने हरी झंडी दिखाकर गाड़ी चालू की और बच्चा पैदा हो गया······गाड़ी सहम कर थम गयी। सात घंटे लेट! हम लोग जब खेल देख रहे थे तब एक साथी बोले—'गाड़ी बहुत लेट कर दी। इस बीच, इस खचाखच भरी गाड़ी में कहो सौ-पचास बच्चे पैदा हो जायें······! बस हँसते-हँसते पेट फूल गये······" वेदन कहता गया।

"अच्छा, आप चुप हो जाइये, हाँ तो······!" प्रमदा ने लजाते हुये वेदन की ओर अपना हाथ बढ़ाया, ज्यों उसके चुटकी काटने वाली हो; किन्तु वेदन ने तत्परता से वह प्रहार रोक लिया।

"भाभी जी! इसमें आपके बिगड़ने की क्या बात है? आप कोई गार्ड

थोड़े ही होंगी ? आप पढ़ी-लिखी हैं—किसी दफ्तर में ठाठ से कुर्सी पर आसन जमायेंगी।"

"अवे वाह ! एक तो पचास साल बाद तुम्हारी यह भाभी बुढ़िया हो जायेगी, दूसरे, दफ्तरों का हाल भी सुन लो। एक दफ्तर लगा है। सब लड़कियाँ ही लड़कियाँ काम कर रही हैं। अधिकतर टाइपिस्ट हैं। तब किसी बात पर दो लड़कियों में झगड़ा हो गया। दो दल बन गये। सारा दफ्तर जूझ गया। कोई किसी के बाल घसीट रही है, कोई किसी की चोटी और चल रही हैं कुर्सियाँ। समूचे दफ्तर भर की कुर्सी-मेजों का एक स्थान पर ढेर लग गया। आफीसर आया तो वह भी उस द्वन्द्व-युद्ध को रोकने के स्थान पर उसी में सम्मिलित हो गया.......... ।"

"औरतें लड़ने में शेर नहीं होंगी, तो क्या हम-तुम होंगे......?" मालवीय बोला।

"हाँ, इनकी वह बात तो रह ही गयी।"

"भाभी जी, आप नाराज़ न होइये। यदि दफ्तरों का यह हाल होगा आप किसी गवर्नमेंट डिपार्टमेंट में काम कीजियेगा।" मालवीय हँसते हुये कह गया।

"पहले पुलिस की सुनिये। ट्रैफिक चल रहा है। इन पुलिस वालों की जगह महिलायें काम कर रही हैं। चौराहों पर हाथ दे रही हैं। तभी ध्यान आ गया। कारों को पास देने के स्थान पर हाथ अपने बैग में चला गया और एक हाथ से छोटा शीशा निकला तथा दूसरे से पफ-पाउडर। बिना पास के दोनों ओर का ट्रैफिक रुका हुआ है, लेकिन कान्स्टेबिल साहब शृंगार करने लगे...... ।"

"तो भाभी जी कोई पुलिस-विभाग में काम करेंगी ? ये किसी मिनिस्ट्री से सम्बन्धित होंगी।"

"वह भी सुनिये ! डिफेन्स-मिनिस्ट्री की बैठक हो रही है। देश की सुरक्षा-योजनायें बनायी जा रही हैं। सूचना मिलती है, अमुक देश आक्रमण कर रहा है। सुरक्षा-मन्त्री निर्देश देते हैं—'कमान्डर-इन-चीफ को

बुलाओ।' कुछ समय के पश्चात् कमान्डर-इन-चीफ सामने आते हैं। आते नहीं—आती हैं। एक सुन्दर सी लचकदार महिला। 'हाँ! कमान्डर-इन-चीफ अमुक देश हम पर आक्रमण करने वाला है। हमारी सेना की क्या स्थिति है?'—बलखाते पैरों और लचकते हाथों से सैनिक अभिवादन करते हुये कमान्डर-इन-चीफ उत्तर देते हैं—"माननीय! हमारे पास कुल साठ हज़ार फौज है। इसमें बीस हज़ार फौज खुशियाँ मनाने गयी है अर्थात् उनके बाल-बच्चे होने वाले हैं।······बीस हज़ार फौज तीन दिन की अनिवार्य छुट्टी पर है।······हमारे पास इस समय केवल बीस हज़ार फौज तैयार है······।"

वेदन, मालवीय, मिस्टर जैन एवं निकटवर्ती एक-दो महानुभावों के हँसते-हँसते पेट में बल पड़ गये। प्रमदा हँसी तो किन्तु ऐंठते हुये। ज्यों उसने अपनी स्त्री-जाति की उस प्राकृतिक विवशता पर दो आँसू बहा दिये।

धीरे-धीरे पौ फटने लगी और सवेरा हो आया।

× × × ×

"मिस्टर जैन! आपकी कथा अभी भी शेष रह गयी।" मालवीय बोला।

"पूरी हो जायगी।"

८

● ● ●

प्रमदा ने वेदन की त्योरियाँ चढ़ी देखकर मौन साध लिया। वह सोचती रही स्नानागार जाने के पहले तो भले-चंगे थे। हँस-बोल रहे थे। यानी कल रात से जो 'मूड' बना था सो हँसते-हँसते पेट फूल गये। एक पल को भी रात भर सोये नहीं। बातें ही बातें। हँसी के फव्वारे! उफ़! दोहरे हो गये। जीवन में इसके पूर्व ऐसा, अनुभवतः कभी नहीं हँसे। और ये पड़ौस के संगी-साथी। इन्होंने और मज़ा पैदा किया।

लेकिन, इन्हें हुआ क्या?

बैरा तीन बार पूछ गया, कोई जवाब नहीं। प्रमदा ने प्रश्न किया—"क्या……!" उत्तर नदारद।

तब जैसा होता था—वेदन के गुम हो जाने पर प्रमदा सदैव चुप हो जाती। मन में वह सोच लेती—मामला 'सीरियस' है।

तो, इस समय भी प्रमदा ने विचारों का तारतम्य जोड़ा—नहीं सचमुच हुआ क्या? यह अवश्य था कि स्नानार्थियों का अच्छा सा 'क्यू' देर से लगा था; लगभग एक घन्टे से। किन्तु इससे उत्पन्न आनन्द की भी क्या बात थी। बहुत समय तक हम लोग देखते रहे—स्नानागार में भीड़ है—यह जानते हुये भी लोग उस ओर जैसे धावा बोलते चले जा रहे थे। पहले एक लाला जी बढ़े—लाल अँगोछा लपेटे, नंगे बदन, मुँह में नीम की दातून जिसकी कड़वाहट चेहरे पर भी स्पष्ट झलक रही थी, क्योंकि उन

के मस्तक पर तीन-चार रेखायें उभर रही थीं और ओठों के दोनों सिरे उठे हुये देखकर लग रहा था कि ये निश्चित ही बहुत समय से हैरान हुये प्रतीत होते हैं और इस समय अपनी लड़की के लिये वर खोजने आये हैं और लो ! सचमुच कैसा ठीक सोचा था हम लोगों ने ?

स्नानागार की भीड़ के धक्कों से पीछे हट कर लाला जी—जनेऊ सरकाते और जनेऊ में उलझी सोने की जंजीर को गले में सँभालते जब लौटे तो वेदन ने हाथ के संकेत से लाला जी को धीरे से बुलाया। जिस कुर्सी पर पैर रक्खे वेदन बैठा था उसे लाला जी की ओर सरका कर बोला—"बैठिये ! सेठ जी······।"

सकुचाते हुये, चारों ओर देखकर लाला जी कुर्सी पर बैठ गये। वेदन ने देखा निकट वाले लड़के हँसी की गोलियाँ दागते चले जा रहे हैं। अपने फैले पेट का ध्यान कर, औरों को क्या; लाला जी को स्वयं ही परम हर्ष-विषाद था।

अस्तु, प्रमदा सोचती चली गई—तब कितना सही उत्तर उतर आया था, वेदन के प्रश्न के उत्तर में।

"जी हाँ, लखनऊ से आया हूँ······।" लाला जी ने उत्तर दिया।

"कोई बिजनेस है सेठ जी ?" वेदन ने प्रश्न किया।

"जी हाँ, तेल मिल है।"

पड़ोस में से एक लड़का तपाक् से बोल उठा—"सुनते हैं तेल-मालिश से शरीर तन्दुरुस्त हो जाता है।"

निकट के आठ-दस आदमी एक-साथ हँस पड़े। जैसे सब सोच रहे हों—लाला जी का नम्बर है।

तभी सब अपने आप यह सोच कर ज्यों स्वयं ही शान्त हो गये—लाला जी से बात आगे बढ़ने तो दो।

"क्या देहली में लड़की का रिश्ता पक्का करने आये हैं ?"

अप्रत्याशित प्रश्न से लाला जी चौंके तो चौंके; आस-पास वाले सोचते रहे—क्या बेहूदा सवाल है ?

अब लाला जी समझ गये कि वे बनाये जा रहे हैं—यह मामला है। किन्तु इतने से आगे उनकी बुद्धि न बढ़ सकी और जैसे किसी 'कोर्ट' में बयान देने खड़े हुये हों, इस प्रकार अपने बायें हाथ से दाहिने कन्धे पर से मैल की बत्तियाँ निकाल-निकाल कर भूमि पर गिराते हुये लाला जी ने उत्तर दिया—"जी हाँ—बड़ी लड़की का रिश्ता तै करना है।"

"इसके माने लाला जी की छः-सात लड़कियाँ हैं?" मिस्टर जैन ने प्रश्न किया।

लाला जी मुस्कराये—"पाँच।"

"एक कम सही।" वेदन ने उत्तर दिया तब सभी हँस पड़े थे, किन्तु प्रमदा अब इस समय पुनः वेदन को देखकर सोचती रही— आखिर वेदन को हुआ क्या?

और अब वेदन ने भी सोचा—आखिर, मुझे हुआ क्या है?

तब वह बात फिर सामने आ गई—और सेठ जी बोल पड़े थे—"लेकिन आप ये सब बातें क्यों जानना चाहते हैं?"

"समय काटने के लिये। लेकिन आप कहें तो आपकी लड़की के रिश्ते में मैं आपकी कुछ सहायता करूँ!" वेदन कह गया।

विचाराधीन लाला जी के कानों में स्वर आते रहे—"अं······हः, हः हः······।"

निकटवर्ती लड़कों का मठारना सुन कर लाला जी को जैसे तत्काल रोष भर आया और वे स्नानागार की ओर गर्दन घुमा कर उठे और चलने को उद्यत हुये।

लड़के ज्यों कह रहे थे—"हम भी उम्मीदवार हैं।"

"लाला जी, जमीन पर जो ये मैल की बत्तियाँ गिराई हैं इन्हें उठा ले जाइये!" निकटवर्ती युवक वर्ग में से एक ने, जो कुछ दूर बैठा दाढ़ी पर साबुन का ब्रुश फेर रहा था; कहा।"

लजा कर लाला जी चले तो गये किन्तु दृष्टियाँ घूमीं तो उधर दिखा

कि एक सरदार जी तौलिया सर पर रक्खे स्नानागार की ओर बढ़ रहे हैं। तौलिया उनके सर के जूड़े की नोक पर ऐसे हिलगा था जैसे किसी खूँटी पर अटका हो। उनके हाथ में एक चौकोर डब्बा था जिसे देखकर निकट से एक बोला—"आप जानते हैं, उसमें सरदार जी की पालिश का सामान है।"

"बूट की नहीं, चेहरे की!" तुरन्त दूसरे ने जैसे पहले से तैयार उत्तर दे डाला।

"वही मतलब है ······।"

सरदार जी के कानों तक वह बात न जाती, यह असम्भव था। वह कही ही इस प्रकार से गई थी और तभी सरदार जी ने एक वक्र-दृष्टि उस ओर फेंकी, किन्तु प्रमदा सोचती रही सरदार जी की ही भाँति ये भी न जाने क्यों भुन्नाये बैठे हैं, इस क्षण।

उस समय वेदन सर पर कंघा फेर चुका था। प्रमदा के कहने पर तो वेदन ने रोष में उसे कोई उत्तर नहीं दिया था, किन्तु उसके 'पर्स' में से ही कंघा निकाल कर जैसे वेदन ने अपना रोष प्रकट करने की चेष्टा की थी।

प्रमदा सोचती रही—अवश्य कोई बात हुई है तभी उसकी दृष्टि घूमी तो उसने देखा—स्नानागार से तौलिया लौट कर जो आया है उसमें काफी भद्दी लगी हुई है। तब वह ध्यान करती रही—हुआ क्या? किन्तु प्रश्न करना अनुपयुक्त मान प्रमदा योंही चुप बैठी रही।

अब वेदन कंघा करके अपनी ठोढ़ी को गदेली पर रक्खे मौन बैठा रहा। उसके साथ जैसे कमरे में भी सर्वत्र सन्नाटा छा गया। केवल निकट बैठे वृद्ध महाशय माला के दाने घुमाते रहे। ये कुछ बुदबुदाते जाते थे और इनकी आँखें अपनी निकटवर्ती एक स्थूल सरदारिन के माँसल अंगों पर टिकी हुई थीं।

वेदन वृद्ध महाशय के उस जाप की क्रिया-शैली को देखकर मन-ही-

मन मुस्करा रहा था, किन्तु मन के आक्रोश के कारण कुछ बोल नहीं रहा था।

प्रमदा ने भी वृद्ध महोदय के मानसिक मन्तव्यों पर अपना दृष्टिकोण टिका कर तुरन्त हटा लिया था और अपने सामने उन दो छोटे बच्चों को देखकर हर्षित हो रही थी जिनकी कमसिन माँ उनसे हैरान थी। छोटे बच्चे ने भूमि पर लघु-शंकायें स्थापित कर दो तीन बार अपनी माँ को खिझाया था और उससे किंचित बड़ी बच्ची ने अभी-अभी दीर्घ-शंका कर पिता को कष्ट दिया था जो उसे ठुनकता छोड़ जैसे घाव लगा पतलून को हाथ में सँभाले बाथरूम की ओर, उसे धोने चला गया।

इतने ही में—"बूट-पालिश" कहता हुआ एक छोकरा निकट आया और जैसे उस स्थान पर उसका ही राज्य हो, बिना किसी से पूछे सामने रक्खे कई जूते उठाकर द्वार की ओर बढ़ गया।

"अब लाऊँ सरकार......" बैरा ने बात दोहराई।

प्रमदा मुस्कराई। साथ ही वेदन भी, जो अपनी नई बनयान की बाहों के आगे के ठोस भाग को मुट्ठी में कस कर अपने पौरुष की माप कर रहा था; मुस्करा दिया। प्रमदा और वेदन के नेत्रों में छाई खिलखिलाहट में आरक्त प्रमदा कह गई—"ले आओ।"

"एक आमलेट भी......।" वेदन बोला।

"हे भगवान......।" कहकर प्रमदा ने ज्यों गहरी साँस खींच ली।

"क्या......?" कहते हुये वेदन की उँगलियाँ गुदगुदी भर लाईं और वह अपना हाथ प्रमदा की ओर बढ़ा ही रहा था कि प्रमदा हँसते हुये बोली—"ताक़त बढ़ाई जा रही है......।"

प्रमदा ने हँसते हुये अपनी इकलाई का पल्लू मुँह पर लगा कर गर्दन घुमा ली। वेदन से न रहा गया और उसने प्रमदा को गुदगुदा ही तो दिया।

थोड़ा खसकते हुये प्रमदा बोली—"उधर देखो, उधर।"

सभी देख रहे थे। वेदन ने भी देखा, एक नयनाभिराम युवती, चंचल बिजली की भाँति सामने आयी और चतुर्दिक नेत्रों की चकाचौंध के बीच एक कुर्सी खिसका कर बैठ गई। लगा, वह सब दृष्टियों से जैसे ओझल है। जैसे, अपने से वह समूह में नहीं, 'रेस्तराँ' के किसी एकान्त चेम्बर में बैठ गई हो। जैसे वह समझ कर भी न समझ रही हो कि—सब के सब—वे भरमाये नयन, उसको ही ताक रहे हैं।

और बैरा ने 'चाय' का सरंजाम लाकर सामने से एक मेज़ घसीटते हुये उस पर रख दिया।

प्याले में चाय का शर्बती 'लिकर' ढालते हुये वेदन ने प्रमदा के रतनारे नेत्रों में अपनी दृष्टि को भिगो कर बड़े प्यार में कहा—"पार्टनर! तुम कभी न सुनकर भी बड़ा कष्ट देती हो।"

"हुआ क्या?" किसी डाँस या मच्छर के काटने की चिनचिनाहट का ध्यान कर अपनी भरी पिंडली को दाहने हाथ की उँगली से खुजाते-खुजाते प्रमदा बोली।

"वह तौलिया देखा?"

"कहीं गिर पड़े?"

"तुम्हें क्या? कहाँ था 'रिटायरिंग-रूम' में चले चलें, किन्तु—"पैसे बचाओ" के आर्थिक-उपदेशात्मक सुझाव में यहाँ इस पंचायत में घसीट लायीं ....।"

"रात से कितना मज़ा आया? यह कहाँ मिलता?"

"रिटायरिंग रूम......"

"चाय पियो, चाय!"

"और खुद तो 'जनान खाने' में जाकर चकाचक हो आयीं। जानती हो मेरा क्या हाल हुआ?"

"क्या हुआ?" कहते हुये प्रमदा ने 'टोस्ट' पर मक्खन लपेटना प्रारम्भ किया। मक्खन से भरे चाकू को वेदन के गालों पर छुआते हुये प्रमदा ने दोहराया—"हाँ, क्या हुआ?"

तौलिये से मक्खन को गाल पर से पोंछते हुये वेदन मौन हो रहा।

"फिर 'सीरियस' हो गये श्रीमान जी!"

"देखो, यह यह कोहनी छिल गई······।"

प्रमदा और वेदन की भीगी वार्तालाप का रस लेते हुये मिस्टर मालवीय ने कहा—"फिसल गये क्या वेदन बाबू?"

"फिसला तो मैं नहीं मिस्टर मालवीय! जीवन में कभी नहीं। हाँ, 'बाथरूम' में गिर जरूर पड़ा।"

"गिरने और फिसलने में कोई विशेष अन्तर है क्या वेदन बाबू?"

"मैं समझता हूँ गिरावट ····गिरावट तो मनुष्यता की मौत है मिस्टर मालवीय!"

वेदन में तैश भरता जा रहा था। प्रमदा ने एक बार वेदन की आकृति देखी। उसकी रक्ताभ छवि पर वह मोहित होती रही और अनायास "लो खाओ······!" कहते हुये उसने मक्खन से भरपूर टोस्ट उसकी ओर बढ़ा दिया।

वेदन उस सरोष मुद्रा में भी मुस्कराट खींच लाया और उस दुलार को प्रमदा पर उँड़ेलते हुये बोल उठा—"तुम······?"

"मैं ले रही हूँ······।" कहते हुये प्रमदा ने टोस्ट पर शक्कर छिड़क कर एक टुकड़ा मुँह से काट लिया।

"अच्छे आदमी हो, लेकिन कभी-कभी तंग करते हो।" वेदन ने प्रमदा से कहा।

"बाथरूम में गिर पड़े······?" प्रमदा ने मधुर पलकों को मूँद, मुँह खोल कर टोस्ट की करकराहट को दाँतों में दाबते हुये प्रश्न किया।

"और क्या होता?······आपने देखा मिस्टर मालवीय, स्नानागार की कितनी अच्छी व्यवस्था है, चारों ओर जितना-जहाँ तक चिकना सीमेंट नीचे और दीवारों पर चिपका है उतनी ही दूर तक काई लिपटी हुई है, चारों ओर।" वेदन बोला।

"मैं भी बच्चा ही हूँ, समझिये।" निकटवर्ती अन्य महाशय ने बात जोड़ दी।

"अजी, कुछ मत पूछिये। बाहर से देखने में प्रबन्ध बड़ा सुन्दर दिख रहा है, किन्तु छोटी-छोटी बातों में कमी रहने पर सचमुच सदैव ही बड़ा कष्ट होता है। व्यवस्था के अर्थ हैं प्रारम्भ से अन्त तक सब ठीक।" वेदन ने कहा।

"यों, ये छोटी-छोटी बातें ही कभी-कभी बड़ी बात के महत्व को घटा देती हैं।" मालवीय ने प्रकट किया।

"हुआ क्या? कैसे गिर पड़े?" प्रमदा ने वेदन को अपनी ओर आकर्षित करते हुये कहा।

वेदन ने अपनी गर्दन प्रमदा की ओर घुमाई और स्थिर होकर बोला—"तुमने कहा था न कि कपड़े गीले मत करना। जाना है। कैसे सूखेंगे? अतः अपने ने 'फ्रेंच-बाथ' का श्री गणेश किया। बाथरूम में जो लकड़ी का पट्टा था, सच जानो पार्टनर, उस पर इतनी काई जम रही थी कि वह भूमि पर इस प्रकार चिपका हुआ था कि उसे खसकाना ही कठिन था। मैंने प्रयत्न भी किया तो उसकी गिलगिलाहट से झट हाथ समेट लिया······"

"गिलगिलाहट अच्छी नहीं लगती?" प्रमदा ने झट कसकर अपने नेत्र बन्द कर लिये और सोचा कि अब वेदन या तो चुटकी काटेगा या···।

प्रमदा दिन प्रति-दिन शरारती होती जा रही है; यह ध्यान कर वेदन मन ही मन मुस्कराता रहा और तब बोला—"अच्छा, हँसी छोड़ो, सुनो।"

नेत्र खोलते ही प्रमदा ने तुरन्त कहा—"सुनूँ क्या? देखो······।"

और वेदन ने सामने दृष्टि फेंकी तो देखा रात वाले सरदार जी ने अनदेखे अपने साथ की देवी जी के गालों पर शीघ्रता में यों हाथ फेर दिया और इधर-उधर झाँका भी कि कोई देख तो नहीं रहा, किन्तु फिर

वही खेद कि प्रमदा तो दूसरी ओर देख रही है और वेदन ने उन्हें देख लिया और वे दोनों लजा गये।

"प्रमदा ! सरदार जी को घर में फुर्सत नहीं मिलती है।"

"या, यह भी सम्भव है कि वह स्वाद नया हो !" प्रमदा ने मुस्कराहट दाँतों में भींच कर कह डाला।

"हो सकता है।" वेदन बोला—"किन्तु बहुत अनुभवी हो।"

"तुम्हारे साथ।"

"लो, फिर वही झक। मेरे गिरने की कथा नहीं सुनतीं।"

"तुम्हारे गिरने की कथा ?......हे भगवान्, मैं नहीं सुनती।"

"प्रमदा......!"

"अच्छा सुनाओ," कह कर बड़े स्नेहपूर्वक मक्खन लगे टोस्ट का दूसरा टुकड़ा भी प्रमदा ने वेदन की ओर बढ़ा दिया।

"प्रमदा ! क्रीम......।"

"वह देखो......" कहते हुये प्रमदा ने पुनः वेदन का ध्यान पलट कर दूर फेंक दिया और वह तब सामने देखने लगा।

वे बंग-महिला वेदन की ओर निहारती हुई अपने स्थान पर आकर बैठ गईं। उनके पति महोदय किसी चक्कर में कहीं गये हुये थे और वे देवी जी 'लेडीज़ बाथरूम' से स्नान करके लौटी थीं। उनके घुँघराले जल से भीगे केश उनकी गर्दन पर इधर-उधर छितरे हुये थे जिसके नीचे की मर्सराइज्ड धोती का भाग गीला हो गया था और अन्दर के ब्लाउज के नीचे छिपी "बाडिस" की पेटियाँ झलक आई थीं और तब सद्यःस्नाता सुन्दरी का वह परम रूप......

वेदन बोला—"फिर कहती हो—कितने घूर कर देखते हो ?"

"अच्छा जाने दो उसे। बताओ क्या हुआ ? देखो, मैं यह नहीं पूछ रही हूँ कि कैसे......"

"गिरे......।" वेदन ने जोड़ दिया।

"हाँ" कहते हुये प्रमदा खिलखिला कर हँस पड़ी।

"खुद तो वहाँ ज़नानखाने में नहा आयीं। खैर ·····सुनो, बाथरूम से लगे तुम्हारे 'लेडीज़ बाथ-रूम' में होने वाली स्त्रियों की बातें साफ़ सुनाई देती हैं, प्रमदा ·····।"

"बड़े गन्दे हो तुम लोग" प्रमदा ने मुँह बिचका कर व नाक सिकोड़ कर कहा और टोस्ट का बचा टुकड़ा प्लेट पर रख दिया। प्रमदा को लग रहा था जैसे वेदन के उस कथन में नारी के नग्न-चित्रण का भाव छिपा है जो उसे अच्छा नहीं लगा।

"हम या आप लोग······।"

"कैसे?" विस्मय के से नेत्रों को स्थिर करते हुये प्रमदा ने प्रश्न किया।

"इतने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने की क्या आवश्यकता है—'बाडी उतार के न्हाइयो, नहीं सूखेगी नहां री! छोरी!' अब क्या करता कान बन्द कर लेता! हाँ, सच मानो दीवाल फाड़ कर कुछ दिख न जाय; इसलिये मैंने आँखें ज़रूर भींच लीं, प्रमदा।"

"जी हाँ, जैसे वहाँ की दीवालें फटी जा रही थीं······!" प्रमदा को नारी का वह स्वरूप अखर रहा था जिसका भार वह भी लादे थी।

"अच्छा छोड़ो। तो पहले तो भूमि पर ही पैर रपटा, किन्तु सँभाला अपने को······।"

"आपने?"

"जी हाँ, मैंने।"

"तब?"

"चारों ओर काई इतनी जम रही थी कि ध्यान किया खड़े-खड़े नहा लूँ···।"

"अच्छा, अब फिर ध्यान करो" प्रमदा कहकर मुस्कराई और उस ओर देखने लगी जिधर वृद्ध महोदय बैठे अब भी माला फेर रहे थे।

"अच्छा, तुम्हें मज़ाक सूझ रहा है। मैं अब कुछ नहीं कहूँगा।"

"लेकिन गिरे कैसे ?"

"कैसे भी नहीं," कह कर वेदन जैसे मौन हो रहा।

छेड़-छाड़ में प्रमदा ने पुनः प्रारम्भ किया—"लेकिन यह तौलिया कैसे गन्दा हो गया ?"

"रपटन से······।"

और प्रमदा की मुखर-आकृति आरक्त हो गई। उसे प्रतीत हुआ जैसे उससे किसी ने कोई मज़ाक कर दिया है और इसी कारण वह तब आगे कुछ बोली ही नहीं। वह सोचती गयी—ये मर्द भी बड़े निर्लज्ज होते हैं। सदा ही ऊटपटांग बातें करते हैं। कुछ भी कह डालने में उन्हें लाज ही नहीं आती। किन्तु इस समय तो किसी मर्द नें अथवा उसके पति ने उससे कोई गन्दी बात नहीं कही थी। तभी उस विवश-मौन को भंग करते हुये प्रमदा ने अनायास कह डाला—"देहली के इस सेंकड-क्लास के वेटिंग रूम में रपटन कहाँ से मिल गयी ?"

"क्लास फर्स्ट हो या सेकेंड, रपटन जब जमेगी तो हर जगह जमेगी। और फिर सफाई की तो हर जगह आवश्यकता है। सरकार ने जनता के आराम के लिये ये वेटिंग-रूम बनाये हैं, किन्तु ये बैरा-लोग जो इसकी देखभाल करते हैं इतने आलसी होते हैं कि यात्रियों से टिपिंग (इनाम) लेने के अतिरिक्त इन्हें अपने कार्य का कभी ध्यान ही नहीं रहता है। अब इन वेटिंग-रूम के स्नानागारों में कितनी गन्दगी रहती है; इसे देखने प्राइम-मिनिस्टर या हैल्थ-मिनिस्टर तो आता नहीं है······!"

"न आवे, किन्तु विभाग यह हेल्थ-मिनिस्टर का ही है। स्वास्थ्य-मन्त्रालय की देखभाल में जो डिपार्टमेंट्स' की सीढ़ियाँ बनी हैं उसकी पहुँच यहाँ तक होनी ही चाहिये। यह लापरवाही······।" बीच में टोकते हुये मालवीय ने प्रवचन कर डाला।

"यह तो सीधे-सीधे स्टेशन मास्टर की लापरवाही है।" वेदन बोला।

"कम्प्लेन्ट-बुक पर कम से कम दो पेज का एक लेख आज लिखा ही जाना चाहिये !" मालवीय बोला।

तभी मुस्कराते हुये प्रमदा ने अपने लजीले नेत्र वेदन की आकृति में फेर लिये। वेदन ने समझा अवश्य ही सामने का कोई दृश्य प्रमदा में लाज की रसवन्ती लालिमा भर कर कपोलों को सहला रहा है और उसने देखा समक्ष ही उस भीड़-भाड़ में एक देवी जी अपने आँचल की आड़ कर अपनी चोली उतार रही हैं। वेदन मुस्कराया।

प्रमदा बोली—"कोई-कोई स्त्री भी कितनी वेहूदी होती है। बोलो, यहाँ ही कपड़े उतारने की जगह मिली है, इस बेवकूफ को······।"

"तो क्या हुआ ? अब वह कपड़े कहाँ बदले ? भीड़ तो सभी जगह भरी हुयी है। भगवान की माया है जिससे वह स्वयं ही तंग है। दुनिया उल्लू है जो देखकर तंग होती है। और तुम······तुम अपनी ही चीजों को देखकर क्यों हँसा करती हो—प्रमदा !"

"चुप रहिये !"

"चुप रहिये मिस्टर मालवीय !" वेदन ने बात मालवीय पर टाल दी जो उस वार्तालाप को सुनने के स्थान पर स्वयं ही उस दृश्य का अवलोकन कर मर्माहत हो रहा था।

"क्यों, क्या हुआ ?" मालवीय ने अचकचा कर प्रश्न कर डाला।

"वे जो सुकुमारी जी उस कुर्सी पर बैठी हैं और निरन्तर उचक-उचक कर द्वार की ओर झाँक रही हैं किसी 'रोमांस' के चक्कर में हैं। इसीलिये कह रहा हूँ कि भाषण न करके केवल दृश्यों को देखो और यात्रा का सुख लूटो।"

"कैसे पता ?" मिस्टर जैन ने प्रश्न किया।

"जैसे भी हो, अभी पता लग जायगा।"

६

प्रमदा एवं वेदन में वार्तालाप चल रहा था, किन्तु मालवीय इस समय गम्भीर बना हुआ अपनी कुर्सी पर बैठा था। उसने अपने दोनों नेत्र बन्द कर लिये थे और दोनों हाथ बाँध कर दो उंगलियाँ बाहर निकालते हुये अपनी ऊपर की पलकों को दाब रहा था जैसे यों दाबने से आँखों को सुख मिल रहा हो। जब वेदन स्नानागार गया था और मालवीय तथा प्रमदा बैठे रह गये थे, तभी प्रमदा ने कहा था—"आप इस तरह की बहस इनसे मत किया कीजिये। कुछ ध्यान किया तबसे 'मूड' कितना बिगड़ गया······।"

"हाँ, किया ·····।" मालवीय ने उत्तर दिया और अब वह उसी बात को इस समय सोच रहा था। उसने वेदन से वैसे तर्क क्यों किये और प्रमदा का ध्यान-पूर्वक यह कहना कि आप इस तरह की बहस मत किया कीजिये। प्रमदा······बस, बारम्बार बन्द पलकों की दबी पुतलियों में प्रमदा की मनहर आकृति नर्तन कर रही थी जिसे वह सामने बैठी प्रमदा के स्थान पर अपनी पलकों में बन्द कर अधिक सुरुचि से देख रहा था। दूसरे बन्द, पलकों की तहों के और अन्दर जो कल्पना का केन्द्र है उसमें किसी भविष्य के सुखद स्वप्न की झाँकी निहार कर मन की उस गुदगुदी में बढ़ते हर्ष से उसकी स्वास-गति तीव्र हो गयी।

मालवीय एक सुन्दर व स्वस्थ युवक था। अवस्था उसकी अट्ठाइस-

उन्तीस साल की थी किन्तु उसके गेहुँये रंग से कुछ अधिक निखरे रंग पर इठलाती हुयी स्वभाव की मस्ती उसको एक डिग्री कालेज का प्रोफेसर होते हुये भी कालेज का एक छात्र तो व्यक्त करती थी। वेदन उससे अधिक गम्भीर तथा स्वभावतः कम बोलने वाला व्यक्ति था। अतः मैत्री-सम्बन्धों के नाते मालवीय को समय-समय पर टोका करता था—"मालवीय, अब तुम प्रोफेसर हो गये हो। कम बोला करो।" वेदन के टोकने पर मालवीय अपने ओठों पर उँगली रख देता ज्यों कह रहा हो—अब नहीं बोलूँगा किन्तु एक क्षण ही पश्चात् बात चलती तो वार्तालाप और तर्क की मेल ट्रेन छोड़ते हुये हुये मालवीय अनायास रुक कर अपने आप कह डालता—"हज़ार बार सोचा, मालवीय कम बोलो। लेकिन यह साली आदत……।" और तब वेदन फिर टोकता……"फिर वही साली आदत।"

इस प्रकार वेदन व मालवीय की स्नेह-वार्ता से प्रमदा को बड़ा सुख मिलता था। इधर एक-डेढ़ वर्ष से जब से दोनों को एक साथ प्रोफेसरी का एप्वाइन्टमेंन्ट मिला था तब से तो मिलना-जुलना तथा बैठक-उठक बहुत बढ़ गयी थी। यों अपने-अपने विषयों में एम० ए० प्राप्त कर लेने के अनन्तर लगभग सवा वर्ष किसी कार्य की खोज में व्यतीत करते समय भी दोनों मित्र अत्यधिक निकट थे किन्तु खाली रहने की मनःस्थिति में वेदन अधिक गम्भीर तथा मालवीय उतना ही चंचल बना रहता था।

वह कहता—"वेदन! तुम भी क्या आदमी हो। अरे, इस तरह झींकने से क्या होगा? नौकरी तो मिलेगी ही। कहीं मुँह बाये खड़ी होगी। हमें चिढ़ा रही है। लेकिन हम यों ही बेकार चिढ़ रहे हैं।"

तब रोनी सी सूरत बनाकर ओठों पर शुष्क हास्य लाते हुये वेदन उत्तर देता—"वाह क्या मुँह बाँये खड़ी है और क्या चिढ़ा रही है?"

"ठीक है तुम झींखो और मैं हँसता रहूँ। किन्तु नौकरी दोनों को एक साथ मिलेगी।"

और सचमुच हुआ भी वही। अनेक स्थानों के लिये वेदन व

मालवीय ने एक साथ आवेदन-पत्र भेजे। कहीं से नकारात्मक उत्तर मिले और कहीं उत्तर मिले ही नहीं। अन्ततः कालेज की यह प्रोफेसरी मिली तो एक साथ मिल गयी और दोनों को एक साथ, एक दिन ही नियुक्ति-पत्र प्राप्त हुये।

अस्तु, इधर जो पारस्परिक व्यवहारों का आदान-प्रदान बढ़ा तो वह दो मित्रों तक ही सीमित न रहा। वह पारिवारिक बन गया। वेदन व मालवीय के अतिरिक्त प्रमदा तथा मधुर भी निकट होती चली गयीं। इन दोनों की भी खूब पटती। जब दोनों मित्र कालेज में होते तो दोनों सहेलियाँ कभी एक के घर तो कभी दूसरे के यहाँ जातीं। अपनी आवश्यताओं का सामान बाजार से लातीं। दोनों ने मिलकर सिनेमा देख-देख कर तो ढेर लगा दिये थे।

वेदन कभी कहता—"हमसे तो ये औरतें ही भली हैं। जीवन का आनन्द तो प्राप्त करती हैं।"

तब मालवीय कहता—"जीवन का आनन्द केवल स्त्रियाँ क्यों पुरुष क्या नहीं ले सकता किन्तु है क्या? किसी की सूरत ही रोनी हो तो कोई करे क्या?"

इस पर वेदन हँसता अवश्य किन्तु सचमुच वेदन की न सूरत में आकर्षण था न स्वभाव में। साँवला रंग, ऐंठी आकृति, छोटी-छोटी भिंची आँखें, दबी नाक, फैले ओठ, छोटे कान किन्तु पीछे की ओर से बहुत फैली व सपाट खोपड़ी ने जो चित्र वेदन का खींचा था उससे और सब ऊब जाते थे किन्तु प्रमदा उसमें सन्तुष्ट थी। इसके विपरीत प्रमदा को परम लावण्यमयी युवती कहा जा सकता था। उसके अंग-सौष्ठव को देख कर जान-पहचान के लोग स्वयं सोचते—'बेचारी कहाँ फँस गयी। ऐसी सुन्दर—और उसे कैसा आदमी मिला है......।'

कोई-कोई अधिक बढ़ जाते तो कह डालते—

"हूर की गोद में लंगूर खुदा की कुदरत......।"

तब वेदन का घुला स्वभाव और कुड़कुड़ा जाता। वह अपनी कमी को कभी माने, दुर्भाग्य जाने या लोगों की बकवास जाने—वह कुछ भी न समझ पाता था किन्तु कुछ ऐसा वातावरण अवश्य बना हुआ था कि जिससे वह चिढ़ा हुआ सा बना रहता था। वह कभी-कभी यहाँ तक सोच जाता—'तो क्या आवश्यकता थी कि मुझे इतनी सुन्दर पत्नी मिलती ?'

किन्तु प्रमदा के मन में कोई मसोसन थी यह तो वह जाने। वैसे प्रत्यक्ष में अपनी परिचिताओं के किसी व्यंग्य पर वह तत्परता से उत्तर दे देती थी—'वाह! सौन्दर्य स्वभाव का व चरित्र का होता है। शकल की सुन्दरता ही कोई एकमात्र सुन्दरता नहीं है।'

कोई-कोई आगे बढ़ कर कह देती—"रानी कहो कुछ भी। जब मियाँ के ओठ आगे बढ़ते होंगे तो आँखें भींच लेती होगी······।"

और तब आकृति में बल डालते हुये प्रमदा कह जाती—"क्यों···?"

उत्तर तो किसी के पास नहीं था, न प्रमदा के पास ही। अतः बात बदल कर अपने-अपने पतियों के व्यवहारों, स्वभाव व घर-गृहस्थी की झंझटों में लिपट जाती।

कभी कोई यह भी कहती—"अजी झंझट इतने हैं कि शक्ल देखन की फुर्सत किसे है ?"

जीवन की इस यथार्थता में जैसे तब सब मौन ही रहतीं। और अपने-अपने जीवन की तिक्तता एवं कुण्ठाओं को वे व्यक्त करना प्रारम्भ कर देतीं।

मालवीय एवं मधुर की जोड़ी अधिक आकर्षक एवं सर्वप्रिय थी। मालवीय स्वयं एक स्वरूपवान युवक था साथ ही मधुर भी। यों प्रमदा का सौन्दर्य मधुर से अधिक निखरा हुआ था विशेषतः उसके मादक नयन तथा उभरी नासिका किन्तु मधुर भी सुन्दर-स्त्री कही जा सकती थी। यों प्रमदा के रंग से मधुर का रंग अधिक निखरा हुआ था किन्तु प्रमदा में जो लावण्य की लालिमा मिश्रित मुकुल-हास झलकते थे उनसे उसका

रूप अधिक प्रखर प्रतीत होता था। इससे विपरीत मधुर का स्वभाव कुछ तीखा साथ ही अपने रूप के प्रति कुछ विशेष अहंकार पूर्ण था। प्रमदा स्वभाव की सरल तथा अत्यन्त मृदु-भाषिणी थी।

इन दोनों युगल-दम्पति के विवाह हुये लगभग चार-चार वर्ष हो गये थे। विशेषता यह थी कि एक माह के हेर-फेर से ही दोनों मित्रों के विवाह सम्पन्न हुये थे। मालवीय व मधुर सृष्टि-रचना में अधिक गतिशील व सतर्क थे; अतः अब तक मधुर ने दो लड़कियों व एक पुत्र को जन्म दे दिया था। इस समय नम्बर चौथा था। इस प्रण वर्ष में एक की गति से—मालवीय संसार-सागर में नव सृष्टि की बूँदे टपका रहा था।

इसके विपरीत प्रमदा के अब तक एक भी संतान नहीं हुयी थी। इसमें कहीं मनस्तत्वों का आक्रोश था। अथवा शरीरिक अस्त-व्यस्तता, इसे वेदन नहीं जान पा रहा था; साथ ही प्रमदा तो इस ओर से जैसे उदासीन ही थी।

कभी साथ को कोई स्त्री यदि इस प्रसंग पर उस पर कोई छींटा फेंकती तो वह तपाक् से दर्पण उसके समक्ष कर देती—"अपनी शकल देखी है, इस शीशे में। लग रही हो बुढ़िया कि नहीं ·····।"

"और जैसे तुम तो कभी बूढ़ी होगी ही नहीं ······।"

"क्यों नहीं, किन्तु समय से।"

"समय से क्यों? कभी मत होना।"

"इसमें चिढ़ने की क्या बात है? यह तो अपने हाथ में है ······।"

"कोई चाभी हो तो हमें बता दो।"

"चाभी क्या? रात-दिन बच्चे तो तुम लोग पैदा करो और चाभी मुझसे पूछो····। बीबी एक बच्चा पैदा होने में शरीर के कितने टाँके हिलते हैं। स्त्री की कितनी शक्ति क्षीण होती है यह—क्या तुम्हें मैं बताऊँ ······!" प्रमदा अपनी अनुभव-शून्यता को भी उपदेशक की भाँति आरोपित कर देती।

"लेकिन तुम क्या जानो ?"

"जो देखा नहीं उसे क्या पढ़ा-समझा भी नहीं ?"

"क्यों नहीं-क्यों नहीं······। कम पढ़ी-गुनी थोड़े ही हो। लेकिन तुम······।"

"फिर वही सरदर्द। तुम लोग इसी में परेशान हो कि बच्चे किसके होते हैं और किसके नहीं। अरे, अपने भार को तो सँभालो।"

"लेकिन हम क्या करें······।" जब साथ की स्त्रियाँ कह जातीं तो वातावरण हास-परिहास में परिवर्तित हो जाता। विषय की गम्भीरता कभी चल ही नहीं पाती।

इसी प्रकार के वातावरण में वेदन-प्रमदा तथा मालवीय मधुर के सुखमय जीवन व्यतीत हो रहे थे।

इधर चार वर्ष का दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करने के पश्चात् कुछ ऐसा हो रहा था जो प्रमदा के अन्तर्मन में अन्दर ही अन्दर सुलग रहा था—कँरोच रहा था। कभी मन की अशांति से वह तिलमिला उठती थी किन्तु यह न जान पाती थी कि उस सब निरीहता का कारण क्या है ? उस अज्ञानावस्था में ही कुछ ऐसा था जो उसे झकझोर रहा था। पति से वह ऊबी नहीं थी न ऊबना चाहती थी अतः वह प्रयत्न करके उसके निकट से निकट खिंच आना चाहती थी, किन्तु न जाने क्यों वह जितना ही प्रयत्न करती—एकान्त में उसे प्रतीत होता वह न जाने किस लोक में है। इस जीवन, इस संसार से कुछ दूर-दूर सी है। यहाँ कुछ, उसका मन नहीं लगता है। कोई ऊब है–किन्तु उसका क्या कोई कारण भी है; यह वह जान ही नहीं पा रही थी।

धीरे-धीरे एकान्त उसे तंग करने लगा। वह कभी इतना ऊब जाती कि अनेक बार यों ही एकान्त में बैठे-बैठे उसका चिल्लाने का मन करता। अपनी मनः स्थिति उसने किसी से बतायी नहीं। वेदन से भी नहीं। जब इतना संमय उसने प्रयत्न करके किया तो वह और अधिक कराह उठी।

तब उसने उस एकान्त सेवन का त्याग करना चाहा। तब उसे संग-साथ में रुचि होने लगी। तब वह चाहा करती कि कोई न कोई स्त्री उसके पास बैठी बातें किया करे। तब वह प्रयत्न करके अपनी परिचित स्त्रियों को अपने पास बैठाला करती और देर तक इधर-उधर की बातें करती रहती। तब वह अनेक बार स्वयं कहीं न कहीं किसी से मिलने चल देती। इस प्रकार उसने अपनी सहेलियों की संख्या बढ़ा ली। मधुर भी उसके बहुत निकट आगयी किन्तु सन्तानोत्पति साथ ही सन्तान-पालन में वह कुछ इतनी घिरी रहती थी कि प्रमदा को अधिक समय न दे पाती थी।

इधर जब से मालवीय का सम्पर्क बढ़ा था तब से कुछ समय उसकी गप्पों व हास-परिहास में बीत जाता था। वह जितनी देर वेदन व प्रमदा के पास बैठता था, दोनों को निरन्तर हँसाया करता था। बड़े खुले भाव से प्रमदा को मालवीय का वह सरल-स्वभाव व भीना साहचर्य भला लगता था। उलझन का कोई प्रश्न ही नहीं था अतः बड़े निश्छल-निर्बन्ध भाव से वह मालवीय से मिलती थी। उसके समक्ष समय व्यतीत करती थी। सदा तो वेदन साथ रहता था अतः संकोच भी दूर रहता था।

न कभी मालवीय ने चेष्टा की न प्रमदा ने ही कि वे एक दूसरे से ऐसे समय में भी वार्तालाप करते रहे जब वेदन की अनुपस्थिति हो। मालवीय सतर्कता-पूर्वक प्रयत्न करके ऐसे समय में वेदन के यहाँ नहीं जाता था जब वह घर पर न हो। इसमें रीति-व्यवहारों के प्रति सहज मान्यता ही उसका लक्ष्य होता।

किन्तु प्रमदा के समक्ष उस सर्तकता का प्रश्न भी नहीं था। वैसा अवसर ही, आज तक कभी नहीं आया।

हाँ, इस अधिक सतर्कता-निर्वाह में मालवीय का अन्तर्मन प्रमदा के सम्बन्ध में सोचता बहुत बार था। उससे लाभ-हानि भी क्या थी? अतः अत्यधिक निश्चिन्तता में वेदन व मालवीय के मैत्री-सम्बन्ध स्थान पा रहे थे।

वेदन अपने में, न जाने, किस प्रकार की कमी, किसी अभाव, किसी निम्नता, अपने प्रति किसी तिरस्कार का अनुभव करता था और अपने भरे मन में संसार को हल्के से देखता था। वह समग्र-जगत से कुछ डरा डरा सा, कुछ भरमाया सा-सोचा करता था। प्रमदा के समक्ष वह अपने को हेय मानता था। वह स्वयं से सोचा करता था कि वह उसके लिये उपयुक्त जीवन-साथी नहीं है किन्तु इस पर भी जीवन से बिना ऊबे, विरक्ति से दूर वह प्रमदा व वातावरण में लीन बना हुआ था।

प्रमदा और मालवीय की हँसी-खुशी की बातचीत से वह कभी एकांत में कुछ सोचता भी किन्तु अपने ही तक। कोई ऐसा प्रश्न ही नहीं था कि वह घबड़ावे।

ऐसे ही में उस दिन कार्य क्रम बन गया और वे दिल्ली चल दिये।

× × ×

तत्काल ही मिस्टर जैन को सपरिवार इलाहबाद के लिये प्रस्थान करना था, अतः वेदन व मालवीय उन्हें कालका मेल पर छोड़ने आये। प्रमदा प्रतीक्षालय में ही रह गयी।

"मिस्टर जैन कभी आगरे आना हो तो मिलियेगा!" मालवीय बोला।

"अवश्य-अवश्य। आप लोगों का तो पता मैंने इसीलिये लिया है।"

"यही नहीं हमें तो आपके साथ महावीर जी भी चलना है।" वेदन ने मुस्काते हुये कहा।

"अवश्य। मैं आप को अवश्य ले चलूँगा। किसी की धार्मिक मान्यता कुछ भी हो, आदर और सम्मान तो सभी धर्मों के प्रति समान होना ही चाहिये।"

"निश्चयतः।"

१०

कभी ऐसा होता है कि निश्चल-शान्त बैठे-बैठे शरीर के किसी अंग में अनायास चिनमिनी सी लगने लगती है। प्रतीत होता है कहीं सुई की नोक चुभ गयी। कोई नन्हीं सी कटन हुई और क्षणभर में उसने मस्तिष्क तन्तुओं को झकझोर डाला। समस्त एकाग्रता उस ओर खिच गयी। लगा किसी चींटी ने काट लिया। वह स्थान जलने सा लगा। एक हल्का सा कष्ट प्रतीत हुआ। स्थान में लाली दौड़ गयी। चींटी की चोट ही कितनी। उसका प्रभाव ही कितना ? किन्तु कुछ ऐसा हुआ कि उसने मस्तिष्क के ध्यान को एक पल को उतनी ही तीव्रता से अपनी ओर खींच लिया जितनी तीव्रता से तलवार की चोट या भाले का घाव जीवन-क्रम के क्षणों की शान्ति में एक व्याघात उपस्थित कर देता। काट वह बड़ी होती है और तेज़ भी, किन्तु मस्तिष्क के भार के लिये चींटी की कटन और भाले की छिदन के पल का कष्ट समान होगा।

जब वेदन स्नानागार गया था, अनायास ही मालवीय के नेत्र जो घूमे तो प्रमदा की दृष्टि के उल्लास ने उन्हें उलझा लिया। प्रमदा की दृष्टि जो प्रतीक्षालय के वातावरण से लौटी तो मालवीय के नेत्रों के स्वागत में झूम गयी। किन्तु कहीं कुछ था नहीं। मालवीय एवं प्रमदा तत्परतापूर्वक व्यवस्थित होकर, प्रयत्न करके जैसे ठीक से, बैठ गये। प्रमदा की भोली आकृति में मुस्कान झूम गयी। मालवीय की सरल

चेष्टाओं में एक विवशता एक निरीहता तैर गयी और वह निराशा की भयंकर कल्पनाओं में तत्काल पैठ गया। उसने उस नेत्रोन्मीलन की जटिलता से अपने को सँभाला और व्यवस्था में घूम गया। प्रमदा ने उसे मानव स्वभाव-व्यवहार की कोमलता मानकर निर्लिप्त की सी भंगिमाओं में अपने मन-मानस की तरलता में तैरा दिया और निर्विकार शान्ति पा ली।

तत्काल ही वेदन वहाँ आ पहुँचा। तत्क्षण, प्रमदा की मुखर मुस्कान तथा मालवीय की आकृति पर इठलाती निरीहता को आँक कर वेदन अकारण ही शंकालु हो गया और तब विकार की अमान्यता में वह भी शान्तिपूर्वक कंघे-शीशे सहित बालों की उलझन को मन की सुलझन सहित सुलझाने लगा।

ज्यों किसी चींटी ने काटा। तिलमिलाहट हुयी। शान्त हो गयी। स्मृति में प्रभाव बना रहा। मालवीय उसी प्रकार शान्त हो उस क्षण की नीरवता भंग करने के ध्यान से कुछ बोलने की चेष्टा करने लगा।

प्रमदा ने भी उस क्षणिक भावोद्रेक की चंचलता को चींटी की कटन सा ही अनुभव किया और शान्त हो गयी।

प्रमदा की उस काल की मुस्कान ने मालवीय में विष घोल दिया। मालवीय के नेत्रों में झूमती विवशता ने प्रमदा में सहानुभूति भर दी और प्रभाव दोनों ओर चींटी की कटन से अधिक नहीं हुआ।

तभी वेदन के स्नानागार में फिसल पड़ने की बातचीत चल पड़ी और बात बदल गयी। चींटी के कटन का सा प्रभाव, थोड़ा सा, निरन्तर बना रहा। ज्यों स्थान पर कटन की लाली दिखायी दे रही थी किन्तु उसका प्रभाव चींटी की कटन से अधिक नहीं था!

किन्तु पलकों और मस्तिष्क में जो स्मृति रह-रह कर जाग रही थी उसमें तलवार की सी काट प्रतीत हो रही थी। तभी मिस्टर जैन से विदा लेने का अवसर आया और वेदन तथा मालवीय उन्हें ट्रेन पर छोड़ने चले गये।

मालवीय प्रतीक्षालय से उठकर गया। ट्रेन दीखी। मिस्टर जैन से विदा ली। वार्तालाप करता रहा। अपने को सब वातावरण में व्यस्त बनाये रहा किन्तु उसके पलकों में प्रमदा थी, प्रतीक्षालय के कोच पर बैठी मूर्ति, नर्तन करती रही।

प्रमदा प्रतीक्षालय में एकान्त में बैठी, अपने खुले पलकों, एकाग्र हो शून्य में विलीन कुछ सोचती रही। उसे लगा उसके जीवन की समस्त विह्वलता मूर्तित हो आयी है और वह कराह की सी गति में निश्चल बैठी रही।

कटन सचमुच वह चींटी की सी ही थी किन्तु प्रभाव उसका तलवार अथवा भाले से भी भयंकर हो गया था।

तभी वेदन व मालवीय लौट आये। मालवीय ने प्रयत्न करके प्रमदा को नहीं देखा। प्रमदा ने जानबूझ कर मालवीय को निहारा। उसने उस व्यक्ति में एक निराशा-निरीहता को ज्यों पढ़ा और अपने को वेदन से वार्तालाप करने में व्यस्त कर लिया।

वेदन बोला—"अब हम लोगों को यहाँ चलना चाहिये।"

"अवश्य।" मालवीय ने उत्तर दिया।

तत्क्षण मालवीय ने देखा कि जो सज्जन अब तक वेगपूर्वक माला फेर रहे थे और रह-रह कर, कभी इधर कभी उधर नारी-रूप के मोह-दर्शन के मोह को भी व्यवहार में लाते जा रहे थे उनकी लगभग एक घन्टे की जाप समाप्त हो गयी है और वे आमलेट व टोस्ट खाने में जुटे हुये हैं। मालवीय से न रहा गया। वह उठा और उनके निकट कुर्सी घसीट कर जा बैठा।

"माफ कीजियेगा।" उसने आरम्भ किया।

"कहिये—कहिये! आप लोग तो बड़े मसखरे लोग हैं। मैं एक बूढ़ा आदमी हूँ, मुझ पर कैसे कृपा की।"

उस बूढ़े की अँग्रेजियत में विदेशी वेश-भूषा एवं खान-पान में

अण्डे सहित देशी माला का सामञ्जस्य देखकर यों ही मालवीय को विशेष आकर्षण हो रहा था। ऊपर से जब वह माला फेरते-फेरते कभी आँखें खोलकर किसी ओर अथवा सामने ही बैठी हुयी सरदारिन की माँसलता को निहार कर अपने नेत्र पुनः मूँद लेता था तो मालवीय में ज्यों उसके प्रति शैतानी पैठ जाती थी। साथ ही वह सोच भी लेता था—पुरुष में नारी रूप के प्रति इतना मोह, इतना आकर्षण प्रकृति ने क्यों भर दिया है। किन्तु उसने कभी चेष्टा नहीं की, गहाराई से, यह जानने की कि क्या नारी भी पुरुष को इतनी ही उच्छृंखलता से देखती है? यों व्यवहार में उसे कभी लगा है कि नारी ने पुरुष पर एक दृष्टि डाली उसे देखा और घूम गयी। वह उसके शब्दों में घूरती नहीं है। तो, यह नारी स्वभाव की शालीनता है किन्तु प्रकृति का कार्य दोनों ओर एक समान है।

तब, उन महाशय के निकट बैठते ही मालवीय ने प्रश्न कर दिया—"माफ कीजियेगा। इस माला के साथ में इस अँडे के मेल-मिलाप की बाबत कुछ जानना चाहता था।"

बूढ़ा मुस्कराया। वह सोच गया, युवक उससे इठलाने आ गया किन्तु उसने पूर्ण तत्परता तथा शान्ति में उत्तर दिया—"माला धर्म की प्रभावना है और अंडा डाक्टर का आदेश-पालन।"

मालवीय उस उत्तर को सुन कर निर्वाक रह गया। इस प्रसंग पर वह आगे कुछ नहीं कहना चाहता था। एक पल को उसके मन में शैतानी आई कि वह पूछे—"और वह स्त्री घूरन।" किन्तु वह केवल इतना ही कह पाया—"आप ठीक कहते हैं। आपके इस उत्तर पर कोई तर्क अथवा किसी विवेचन की आवश्यकता नहीं है।"

तभी बूढ़े ने प्रश्न किया—"मैं जानना चाहता हूँ कि आप लोग कहाँ रहते हैं और क्या काम करते हैं?"

"हम आगरे रहते हैं और अध्यापन-कार्य करते हैं।"

"आप कहीं मास्टर हैं?"

मास्टर शब्द से मालवीय के मस्तिष्क के सब तार एक साथ जैसे झनझना उठे। अब उस अपमान का वह उस बूढ़े को क्या बदला दे? किन्तु बड़ी स्थिरता में मालवीय ने उत्तर दिया—"जी हाँ, हम लोग कालेज में प्रोफेसर हैं।"

"मैं भी एक प्रोफेसर के ही चक्कर में आया हूँ।"

मालवीय चौंका और पूछ बोला—"वह कैसे?"

"कम्बख्त ·····।"

शब्द सुनकर ज्यों मालवीय कुर्सी पर बैठा-बैठा अपने आप धरती पर सरक गया। ज्यों उसका सर घूम गया और वह तुरन्त प्रश्न कर बैठा—"किसी प्रोफेसर कम्बख्त ने क्या किया?"

"मेरी बीवी को पढ़ाता था··· ··।"

मालवीय मुस्कराया और उसने संकेत से वेदन को बुलाया। वेदन भी वहाँ जा पहुँचा।

"वह कुर्सी घसीट लो···।" मालवीय ने वेदन को सम्बोधित कर कहा।

वेदन भी जब कुर्सी घसीट कर वहीं बैठ गया तो मालवीय बोला—"हाँ साहब, तो एक प्रोफेसर कम्बख्त आपकी बीवी को पढ़ाता था······।" कहते हुये उसने वेदन की ओर देखा। दोनों ही मुस्करा दिये।

"जी हाँ।"

"तब······।"

"उसी के चक्कर में हूँ। न बीवी का पता है न उसका······।"

"ऐं! आपकी बीवी का पता नहीं है—इस एज में।" मालवीय ने अपने नेत्रों को कौतूहल में जल्दी-जल्दी हिलाते-डुलाते कहा।

"जी, एज क्या? एज से क्या मतलब?"

"वाह साहब एज से कोई मतलब ही नहीं। आपकी पत्नी की आयु होनी चाहिये पचास नहीं तो पैंतालीस। उतनी ही होनी चाहिये······।" वेदन कह गया।

"जी नहीं। उसकी उम्र है कोई इक्कीस या बाइस······।"

"तब ठीक है। तब ऐसा होना ही चाहिये था। तब ठीक हुआ। तब कुछ अन्याय नहीं है······ क्यों साहब! इक्कीस-बाइस की आपकी पत्नी थी वह। तो वह आपकी पाँचवी शादी थी या छठी?" मालवीय जल्दी-जल्दी कह गया।

वह बूढ़ा गुमसुम होकर बैठ गया। उसने मालवीय को कोई उत्तर नहीं दिया। उसे लगा उसके पास कोई उत्तर ही नहीं है। तभी वेदन ने अनायास प्रश्न किया—"तब आप रहते कहाँ हैं?"

"इलाहाबाद।"

"देहली कैसे आये हैं?" वेदन ने प्रश्न किया।

"कुछ नहीं ······।"

"उन प्रोफेसर व अपनी पत्नी को ढूँढने। क्यों न······!" मालवीय ने वेदन की बात का उत्तर दिया।

"यह शादी के नाम पर उस युवा-नारी पर घोर अन्याय है।" वेदन कह गया।

"आपसे मतलब? आप होते कौन हैं किसी की बात पर अपना निर्णय देने वाले।" बूढ़ा बिगड़ कर बोला।

"कोई नहीं······।" वेदन बोला—"आओ चलें।" कहते हुये उसने मालवीय को उठाया और दोनों बूढ़े के पास से चले आये।

× × ×

वेदन व मालवीय प्रमदा को प्रतीक्षालय में छोड़ कर अपने उन परिचित के यहाँ चल दिये जो देहली में लोकसभा के सदस्य थे। दोनों प्रमदा से कह गये कि वह वहीं प्रतीक्षा करे वे लोग शीघ्र ही लौट कर उसे ले जावेंगे।

वेदन व मालवीय ऑटो-रिक्शा में चले जा रहे थे। वेदन एक

दृश्य पर केन्द्रित था। वह स्नान करके लौटा था। प्रमदा मुस्करा रही थी और मालवीय की आकृति कराह रही थी।

मालवीय एक दृश्य में लीन था। वही प्रमदा के नेत्रों की उत्सुकता और उसकी अपनी अवशता। किन्तु वह वर्षों से वेदन के साथ है। वह वर्षों से भाभी जी के सामने जाता है। उन्हें उसने हज़ारों बार देखा है। वैसा कभी नहीं हुआ। आज तक नहीं हुआ। किन्तु ऐसा होता है। जीवन भर साथ रहिये। वर्ष-वर्षान्तर साथ रहिये। कहीं कुछ नहीं। कभी एक क्षण—नहीं आता और आ भी जाता है। और जब आता है तो वह क्षण विगत की सब सीमायें लाँघ जाता है। दृष्टि की एक जिज्ञासा सब कुछ खो देती है; सब कुछ पा लेती है। किन्तु उन दृष्टियों ने आ कुछ खोया—पाया तो नहीं है। हाँ, कुछ नया सा हुआ है।

वह, सम्भवतः जीवन में आज पहली बार इतनी स्थिरता; इतनी गम्भीरता से बैठा था। स्कूटर दौड़ता चला जा रहा था। वह अवसर भी प्रथम ही था जब वेदन तथा मालवीय एक ही पास बैठे रहकर भी इतनी देर से एक दूसरे से बोल नहीं रहे थे और मौन थे। तभी अनायास वेदन बोल पड़ा—"क्यों जी, मैं तो चला गया था? वह जैन आगे कुछ बता रहा था कि बाद में क्या हुआ?"

"हाँ, उसने बाद की कथा सुनायी। और हम करते भी क्या? बैठे-बैठे ऊब रहे थे। तुम्हें स्नान करने में दो घंटे लगते हैं। मैं पाँच मिनट में नहा लेता हूँ। पता नहीं तुम क्या किया करते हो?" मालवीय ने उत्तर दिया किन्तु वह सोचता रहा कि उसे एक बात और बतानी चाहिये थी। वह ध्यान करने लगा वह कह दे, उसने प्रमदा के नेत्रों की कसक को अपने जी में उतार डाला है किन्तु वह कैसे कहता? वह कह कैसे सकता था? उस टोक में कारण क्या था? उसे भी पता नहीं, किन्तु टोक थी। वह टोक सम्भवतः समाज से क्यों, व्यक्ति से ही थी। वह वेदन से ही थी। सामाजिक बन्धनों के आधार पर प्रमदा नामक एक स्त्री पर वेदन का

अधिकार था। वैसा अधिकार मालवीय का प्रमदा पर न हो सकता था। अतः वह किसी स्त्री के सामाजिक अधिकारी से यह कैसे कह सकता था कि उसने उसकी अधिकारयुक्त स्त्री के नेत्रों की कसक को अपने जी में उतारा है क्योंकि उसकी अपनी पत्नी भी तो है। अस्तु, वह आगे कुछ भी न कह सका और तभी वेदन का प्रश्न वायु में गूँज गया।

"हाँ तो, जैन क्या बता रहा था?"

"यही कि तब वह भी उन डाकुओं के साथ खेतों में उतर गया···।"

"वह कैसे?"

"अब उतर गया। कैसे क्या? वह बता रहा था कि तब उसने पीछे से कहा—'ठहरिये।'—एक डाकू ने कड़क कर उत्तर दिया—'क्या है?'—तब जैन ने कहा—'सुनिये, आपने मेरा सब कुछ तो छीन लिया अब इतना तो कीजिये कि मैं इलाहाबाद तक पहुँच जाऊँ···· ।" तब उनमें से पीछे चलते भले डाकू ने आगे चलते-चलते पीछे हाथ करके एक कागज का टुकड़ा जैन को पकड़ा दिया। तब जैन ने कहा– 'साहब इतने में कैसे जाया जा सकता है?'—तब कड़कती आवाज़ में डाकू फिर बोला—'वापस जाओ।' और जैन लौट आया। आकर उसने ताँगे के लैम्प की रोशनी में देखा—वह पाँच रुपये का एक नोट था। तभी जैन ने ताँगा अपने आप घुमा कर सड़क पर सीधा किया और ताँगे वाले को पुकारा। दो-तीन आवाज़ों में ताँगे वाला आया। उससे जैन ने स्टेशन चलने को कहा किन्तु वह मना करता रहा जैसे वह डरने की सी 'एक्टिंग' कर रहा हो। तब जैन ने उसे डाँटा और कहा कि अब उसे चलने में क्या भय है? उससे अधिक भयानक घटना अब आगे तो सम्भव ही क्या हो सकती है? तब ताँगे वाले ने कहा—"बाबू जी, मैं उन ताँगे वालों से भी पूछ लूँ कि वे क्या कहते हैं?' कहते हुये वह दौड़ गया। उसके जाते-जाते जैन ने कहा—'उनसे पूछो या न पूछो।' तुमको स्टेशन चलना होगा।

"थोड़ी देर बाद ताँगे वाला लौट आया और स्टेशन की ओर चलने को प्रस्तुत हो गया और चलते-चलते बोला—'बाबू जी, वे लोग महावीर

जी वापस जा रहे हैं।' 'जाने दो।'—जैन ने उत्तर दिया। तब उस ताँगे वाले ने उस जमादार को साथ ले चलने की बात फिर कही किन्तु जैन ने मना कर दिया और गालियाँ देते हुये उससे बोला कि सब तुम ताँगे वालों एवं उस जमादार की शरारत है। तब ताँगा स्टेशन चल दिया। मार्ग में जैन की पत्नी ने उससे बताया कि चिन्ता करने की कोई बात नही है। उसके पिता के दिये हुये सौ रुपये उसके ट्रंक में बच गये हैं। तब जैन आश्वस्त हुआ और आगे यात्रा के व्यय के भय से मुक्त भी······।"

"जो हुआ सो हुआ। जैन ने डाकुओं के सामने देवता की सौगन्ध खूब खाई······।" वेदन बीच में बोल पड़ा।

"सौगन्ध तो वह सच ही थी इसलिये कि उस ट्रंक में तो कोई जेवर था ही नहीं······।"

"हाँ, वह तो कहो मान्यता की बात है। उस समय तो सच थी ही अन्यथा कसम तो लोग सच मानने के लिये खाते ही हैं·········क्यों मालवीय ?"

"कभी नहीं। कसम खाने वालों में सौ में निन्यानवे झूठे होते हैं।"

"क्या एक सच्चा भी होता है ?"

"इतनी छूट तो देनी ही होगी।"

"हाँ, तब।"

"तब क्या ? स्वयं नहाते रहे और अब मेरे प्राण चाट रहे हैं।"

"तुम्हारे बताने में क्या कष्ट हो रहा है ?

"तब क्या ? स्टेशन पर जैन के आस-पास सैकड़ों आदमी एकत्र हो गया और तब मनुष्य-स्वभाव। वही अनर्गल प्रश्नोत्तरी। हाँ, स्टेशन-मास्टर ने उसके साथ बड़ी सज्जनता का व्यवहार किया। उसे रुपये देने लगा। इलाबाद के टिकट देने लगा किन्तु जैन ने नहीं लिये और कह दिया कि उसके पास खर्च है······सबसे प्रमुख बातें जो जैन ने बतायीं वे दो थीं। एक तो उस क्षेत्र में दस-दस, बीस-बीस मील तक कोई पुलिस

चौकी नहीं थी। कहीं रिपोर्ट तक नहीं की जा सकी। तब जैन ने सात रुपये खर्च करके लगभग बीस मील दूर किसी स्थान की पुलिस को तार से रिपोर्ट दी······।"

"क्या आज भी ऐसे स्थान सम्भव हैं जहाँ बीस-बीस मील तक पुलिस चौकियाँ न हों ?"

"अरे, तुम सम्भव हो सकती हैं कहते हो, जैन तो भुक्त-भोगी था बेचारा······।"

"और दूसरी क्या बात थी ?"

"वही कि सभी धार्मिक स्थानों की भाँति उस धर्म-स्थान में भी करोड़ों की सम्पदा मन्दिर के भण्डार में भरी पड़ी है किन्तु उसकी रक्षा के लिये बन्दूक तक नहीं थी। वही पुराने समय की बारूद भरने वाली दो बन्दूकें थी जिनमें जब तक बारूद भरी जाये प्रतिपक्षी उसके पहले ही सब कुछ कर डाले। और हुआ यह कि जैन तो स्टेशन चला आया किन्तु वे तीन ताँगों वाले यात्री महावीर जी लौट गये। वहाँ जाकर उन्होंने सूचना दी जिसके आधार पर गाँव के बीस-तीस आदमी, मन्दिर के अधिकारी तथा वे ही बारूद-मसाले वाली बन्दूकें महावीर जी मन्दिर की एक लारी पर लद कर चले। जैसा जैन बताता था स्टेशन कुछ ऊँचे पर था और महावीर जी से आने वाली सड़क नीचे पर, अतः स्टेशन से दूर के मार्ग पर रात्रि में जलती हुयी लारी के आगे की रोशनी दिखायी देती थी। तब उसी स्थल पर, जहाँ वह काण्ड हुआ था वह लारी आकर रुकी।

"तब······" बड़ी जिज्ञासा में वेदन ने बीच में टोक कर कहा।

"इन लोगों के पास दो गैस-लैम्पें भी थीं। जैसा स्टेशन से दिखायी दे रहा था। वे लोग खेतों में भी गये। उन्होंने एक स्थान पर कुछ कपड़े व चमड़े की दो अटैचियाँ जलती हुयी देखीं। वहीं उन लोगों ने बारूद वाली बन्दूकों से दो फायर भी किये। जैसा जैन कह रहा था कि उससे पहले तो सोचा था कि कहीं झूठी रिवाल्वरों को दिखला कर तो सारी लूट नहीं

हो गयी। किन्तु वैसा था नहीं क्योंकि उन डाकुओं ने भी अपनी ओर से दो फायर किये। साथ ही एक ऊँट पर बैठ कर वे भाग गये······। तब कुछ लोग जैन को ढूंढने स्टेशन आये जिन्होंने बताया कि उन तीन ताँगों में एक ही परिवार के स्त्री-बच्चे व पुरुष मिला कर पन्दरह लोग थे जिनका लगभग तीस हजार रुपये का सामान लूट लिया गया। स्त्रियों के ज़ेवर पहने हुये उतार लिये गये।"

"इसका अर्थ यह हुआ कि जैन बहुत बचा।" वेदन कह गया।

"और क्या? चतुर आदमी दिख रहा था।"

अब तक ऑटो-रिक्शा न्यू-देहली के टेढ़े-मेढ़े रास्तों में दौड़ रहा था। तभी वह स्थान भी आ पहुँचा जहाँ वेदन व मालवीय को जाना था।

अपने परिचित संसद-सदस्य के यहाँ बैठे वेदन व मालवीय वर्तालाप कर ही रहे थे कि वे वृद्ध महाशय जिनकी पत्नी लापता थीं—वहीं आ पहुँचे। उन्हें वहाँ देखकर दोनों ही मित्र चौंके व उनको देखकर वे महाशय भी। वहाँ कुर्सी पर बैठते-बैठते वे महाशय बोले—"वाह जनाब, जहाँ मैं जाऊँगा वहीं आप भी जाँयेगे।"

"किन्तु आपके कार्य में तथा हमारे कार्य में विशेष अन्तर है, महाशय!" मालवीय ने तपाक् से उत्तर दिया।

वेदन को सम्बोधित कर संसद-सदस्य ने अचानक प्रश्न किया—"क्या तुम इन्हें जानते हो?"

"जी नहीं। ये तो हमें वेटिंगरूम में मिले थे।

"ये नहीं जानते आप तो जानते हैं।" उन वृद्ध महाशय ने अत्यधिक उद्दण्ड व्यक्ति की भाँति जैसे बिगड़ते हुये कहा—"कहिये, आप क्या कहना चाहते हैं?"

"यही कि तुम पागलखाने भेजे जाने वाले हो।" संसद-सदस्य महोदय ने उत्तर दिया।

"यह लीजिये। मेरी ही बीवी गायब है और मैं ही पागलखाने भेजा जाने वाला हूँ······।"

"ख़ैर, छोड़ो उस बकवास को। यह बताओ कुछ पता चला?" संसद-सदस्य महोदय ने प्रश्न किया।

"अजी आपकी कृपा हो और पता चल जाये!"

"देखो, मैं फिर कहता हूँ कि तुम पागलखाने भेजे जाने वाले हो।" संसद-सदस्य महोदय ने किंचित रोष मिश्रित हास्य सहित कहा।

"देखिये, मैं भी कहता हूँ कि मुझे छै घंटे के अन्दर मेरी पत्नी मिल जाय अन्यथा मैं ज़हर खा लूँगा······।" वे वृद्ध महाशय इतनी सरलता से कह रहे थे कि जैसे पत्नी के जाने का उन्हें उतना सोच नहीं था जितना उन्हें ज़हर खा लेने की बात कहने की उतावली थी।

मालवीय बैठा मुस्करा रहा था किन्तु वेदन कुछ गम्भीर था। तभी मालवीय ने अचानक कह डाला—"आप तो ऐसे बोल रहे हैं जैसे आपकी पत्नी यहीं-कहीं छिपी बैठी है।"

"यहाँ छिपी नहीं बैठी है तो क्या हुआ? ये श्रीमान जी उसका पता-ठौर भली प्रकार जानते हैं।" वृद्ध बड़ी शान्ति से कह रहा था।

"इस बूढ़े का दिमाग ख़राब हो गया है।" कुछ उपेक्षा कुछ हास झलकाते हुये संसद-सदस्य-महोदय बोले।

"अच्छा चाचाजी, हम चलेंगे। थोड़ा घूम फिर लें। फिर आयेंगे।" वेदन ने उठने का उपक्रम करते हुये कहा।

"तो जब तुम्हारी पत्नी साथ थी तब उसे क्यों नहीं लाये?" सदस्य महोदय ने कहा।

"सब ठीक है। हम लोग स्टेशन पर ही ठहर गये थे। आपका पता लगाना था। अब तो कोई तकलीफ नहीं होगी। शाम को लेते आवेंगे।"

"जरूर······।"

वेदन तथा मालवीय चले आये। मार्ग में मालवीय ने कहा—"ऐ भाई! यह संसद-सदस्य बड़ा खटरागी आदमी मालूम होता है।"

"तुम उल्लू हो। जब चाहें जिसके सम्बन्ध में जो मन चाहा ऊट-

पटांग धारणा बना ली; यह कोई भली बात है।

"कोई बात नहीं। मैं जो कहता हूँ—कुछ समझ कर कहता हूँ।" मालवीय बोला।

"अच्छा छोड़ो बहस को। बहुत देर हो गयी। प्रमदा अकेली होगी। जल्दी चलना चाहिये।" वेदन ने कहा।

"टैक्सी ......।" मालवीय ने पुकारा।

एक छोटी टैक्सी किनारे आ लगी और वेदन व मालवीय उसमें जा बैठे।

११

लगभग डेढ़ घंटे के अनन्तर जब वेदन तथा मालवीय लौटे तो वे क्या देखते हैं कि देहली स्टेशन के बाहर जो कारों तथा टैक्सियों की लम्बी पंक्तियाँ खड़ी हैं उन में से सबसे पीछे वाली पंक्ती के किनारे—जो स्टेशन की चौहद्दी-दीवाल के बराबर से सटी हुयी थी—वे बीमा-एजेन्ट महोदय, ज्यों दीवाल से खड़े बातें कर रहे हैं और बीच-बीच में अपने गालों पर अपने आप थप्पड़ भी लगाते जाते हैं। मालवीय तो उन्हें देखकर हँस दिया और उसके हँसते ही 'खट्ट' का स्वर करते हुये उन महाशय का चमड़े का बैग नीचे भूमि पर आ गिरा। वेदन गम्भीर बना रहा।

तभी मालवीय बोला—"यह सचमुच सनकी है।"

"बदमाश है।" वेदन ने उत्तर दिया।

"अच्छा ठहरो।" कहते हुये मालवीय वेदन को एक स्थान पर खड़ा करके उस ओर बढ़ गया। उसके निकट जाकर मालवीय दो मिनट खड़ा रहा किन्तु वह अपने में इतना खोया हुआ था कि बिना इधर-उधर देखे बड़बड़ाता रहा।

संकेत से वेदन को बुलाते हुये मालवीय ने सुना—"तुम अकेली कहाँ जा रही हो! इधर चलो न मेरे साथ.........तुम अकेली कहाँ जा रही हो। इधर चलो न मेरे साथ।"

कौतूहल में वेदन व मालवीय वहाँ पाँच मिनट खड़े रहे। वह कहता

गया—"अच्छा मत चलो। मैं खुद चला जाऊँगा तब फिर लौट कर नहीं आऊँगा······ कभी नहीं आऊँगा······ हाँ, अच्छा, अच्छा······ हाँ, सुनती हो······साथ चलती हो······कि नहीं······।"

"नमस्ते जनाब।" तपाक् से मालवीय ने उस अर्ध-विक्षिप्त का ध्यान भंग किया।

वह घूमा और मालवीय को तत्काल पहचानते हुये बोला—"ऐ साहब, चले जाइये मेरे सामने से। क्या और गालियाँ दोगे मुझे······ नालायक कहीं के।" कहते हुये उसने अपने ओठ बिचकाये और फिर दीवाल की ओर घूम गया।

नकर एक बार मालवीय को क्रोध भी आया किन्तु अपने को रोककर पूर्ण शान्ति में उसने उससे प्रश्न किया—"आप पागल हैं क्या?"

'आप उल्लू हैं, सनकी हैं, पाजी हैं, पागल हैं······चले जाइये मेरे सामने से।" उसने दीवाल की ओर मुँह किये हुये ही कह डाला।

मालवीय तब भी शान्त रहा किन्तु वेदन से न रहा गया। उसने तड़ाक से उस व्यक्ति के एक थप्पड़ मार दिया—"साला बदमाश। गाली क्यों देता है?"

वेदन और भी हाथ चलाता किन्तु मालवीय ने उसे सँभाला। वह व्यक्ति घूमा। उसने उन दोनों पर एक तीक्ष्ण दृष्टिपात किया और बिना बोले वहाँ से हट गया।

वेदन व मालवीय भी वहाँ से चले और वेटिंग-रूम आ पहुँचे। प्रतीक्षा में बैठी प्रमदा मुस्कराई और कह गयी—"इतनी देर?"

"हम लोग जल्दी तो आ गये हैं, भाभी!" मालवीय एकदम बोल पड़ा ज्यों तत्काल के बादल का कोहरा छँट गया और उसके स्थान पर पूर्व का स्वच्छ नील गगन चमक आया हो।

"वह तो है ही। यहाँ बैठे बैठे सिक गये और तमाशे देखते-देखते थक गये और आप लोग हैं कि घंटों लगा दिये।" प्रमदा बोली और तब

वेदन को सम्बोधन कर कह गयी—"कहाँ रहे जी इतनी देर ?"

"कहीं नहीं भाभी जी, एक आदमी की मरम्मत कर रहे थे।" मालवीय मुस्कराता हुआ कह गया।

"आदमी की मरम्मत ? किसकी ?"

"उसी की जिसके लिये तुमने कहा था कि रास्ते चलते उसने तुमसे छेड़छाड़ की थी।" मालवीय बोला।

"वह मिल कहाँ गया ? और उसे क्यों पीटा आप लोगों ने ?" कहते-कहते ज्यों प्रमदा के नेत्र कातर हो उठे।

"अब मिल ही गया।" मालवीय बोला।

"किन्तु अब मुझे खेद हो रहा है, मालवीय। उसके मस्तिष्क में सचमुच कहीं कोई दोष आ गया है।" वेदन किंचित खिन्न होते हुये कह गया।

"हुआ क्या ?" प्रमदा ने विस्मय सहित पूछा।

तभी मालवीय ने वह घटना कह सुनायी और अन्त में जोर से हँस पड़ा। इस पर न प्रमदा कुछ बोली न ही वेदन। दोनों ही गम्भीर बने बैठे रहे।

तभी थोड़ी देर मौन होने के अनन्तर प्रमदा बोली—"अब हमारी सुनिये।"

"सुनाइये!" प्रमदा की ओर झुकते हुये वेदन कह गया।

"वे जो चकमक देवी जी वहाँ बैठी थी न······।"

"कौन सी······?" बीच में टोकते हुये मालवीय ने प्रश्न किया।

"अरे वे ही बड़ी सी सुन्दर सी जिनके पीछे तुम भी बड़े व्याकुल थे···।"

"हाँ तो क्या हुआ ?" वेदन ने दीवाल पर पीठ टेकते हुये प्रश्न किया।

"बड़ा झंझट······।"

"वह क्या ?"

"उन्हें किसी का इन्तज़ार तो था ही। आप लोगों के जाने के बाद

ही कोई एक साहब पूरे एक दल के साथ आये। उस दल में चार-पाँच लड़कियाँ व दो-तीन युवक तथा दो अधेड़ व्यक्ति थे। मुझे यहाँ बैठे-बैठे ही इन्होंने—(निकटवर्ती एक महिला की ओर संकेत कर) बताया कि यह पूरी पार्टी किसी कार्यक्रम में देहली रेडियो स्टेशन आयी है। वह समूचा दल तो नहा-निबट कर आध घंटे बाद ही यहाँ से चला गया, किन्तु वे साहब जो थोड़े सुन्दर भी थे तथा देखने में एक बड़े कलाकार दिखते थे—बड़े-बड़े बाल, घुटनों से नीचे तक का कुर्ता, दूधिया सलवार, कामदानी का चोंचदार जूता······।"

"तुम तस्वीर अच्छी उतार लेती हो; यह तो मुझे आज ही ज्ञात हुआ।" वेदन बोला।

"अजी, अभी न मालूम क्या-क्या ज्ञात होगा।" कह कर प्रमदा मुस्करा दी।

वेदन गम्भीर हो गया और मालवीय एक ओर देखते हुये कुछ सोचता रहा। इधर वेदन में प्रातःकाल से ही एक विचित्र सी उदासी छा रही थी जिसका कारण उसे अज्ञात था। प्रमदा की अथवा मालवीय की प्रत्येक बात पर वह कई मिनट तक सोचता था और तब बहुत पीछे तक की बातें सोच जाता था। पीछे तक सोचने में उसे कहीं कुछ मिल नहीं रहा था—अतः वर्तमान में ही डूब कर वह गम्भीर हो जाता था।

तभी प्रमदा ने प्रारम्भ किया—"हाँ, तो वे कलाकार महोदय अपना तानपूरा लिये उन देवी जी से बातचीत कर ही रहे थे कि दो व्यक्तियों ने उधर द्वार से सामने से प्रवेश किया। उनको देखते ही वे देवी जी तो बेतहाशा भागीं और देखते-देखते कमरे के बाहर हो गयीं। उन दोनों व्यक्तियों ने उन देवी जी का पीछा किया। और तब हुआ क्या, मालूम है?

"क्या?" कौतूहल में वेदन ने प्रश्न किया।

"देखते-सुनते वह इस सामने वाली बाल्कनी से नीचे फाँद गयी और

तत्काल मर गयीं। अब आये हो! यहाँ न जाने कितनी पुलिस और नीचे हजारों आदमी इकट्ठा हो गये थे।

"तब?"

"उन कलाकार महोदय को भी फाँदते हुये उन दोनों व्यक्तियों ने पकड़ा और साथ ले गये। वे जब लौटे तो पुलिस उनके साथ थी...।"

वेदन ने प्रश्नात्मक मुद्रा में मालवीय को देखा।

"भाभी जी! तब वह मर गयी?" मालवीय ने पूछा जैसे उसे उस कथन पर विश्वास ही न हो रहा था। वह सोच रहा था ऐसी सुन्दर नारी इस संसार से विलीन हो गयी।

"हाँ-हाँ-हाँ।"

"कुछ पता चला मामला क्या था?" वेदन ने प्रश्न किया।

"कुछ नहीं।"

"मालवीय! क्या हो सकता है?" वेदन ने मालवीय को सम्बोधित कर प्रश्न किया।

"लव-स्टोरी।"

"वह तो है लेकिन यह फाँद-कूद क्यों हुयी?"

"उसका पता भी चल सकता है।" मालवीय बोला।

"कब? जब हम चले जायेंगे?"

"नहीं, अभी।"

और देखते-देखते पुलिस के अधिकारियों के एक दल ने प्रतीक्षालय घेर लिया। इनके साथ वे ही वृद्ध महाशय थे जिनके नेत्रों में आँसू छलछला रहे थे।

"वेदन! वह इनकी ही पत्नी थी।" मालवीय ने तत्काल कह दिया।

"तुम उल्लू हो। वो माला फेर रहे थे जब वह यहाँ आयी थी।" वेदन ने उत्तर दिया।

"तो इससे क्या होता है?"

"और उन्हें दिखाई नहीं दिया ?" वेदन ने पूर्णतः अविश्वास की मुद्रा में कहा।

"घबड़ाओ मत, अभी पता चलता है।" मालवीय ने उत्तर दिया और उठकर उन वृद्ध महाशय की ओर बढ़ चला।

"ऐ मालवीय! उधर मत जाओ। न जाने क्या किस्सा है? तुम क्यों परेशानी मोल लेते हो?" वेदन ने कहा।

"तब पता कैसे चलेगा?"

"हमें पता नहीं चलाना।"

"मैं अभी आया।" कह कर मालवीय आगे बढ़ गया।

× × ×

"क्या हुआ, समझे?" मालवीय ने लौट कर उत्तर दिया।

"क्या?" प्रमदा ने अत्यधिक उद्विग्नता की भंगिमा में प्रश्न किया।

"उन वृद्ध महाशय का कहना है कि वही उनकी पत्नी थी और वह युवक ही प्रोफेसर ····।"

"वह कैसे?"

"वही युवक बता रहा है। देख आओ न! दो तीन पुलिस-कांस्टेबिल के बीच में, बाहर गैलरी में खड़ा है।" मालवीय ने ज्यों उस बात की तह तक जान कर सन्तोष कर लिया था।

"हाँ तो फिर?"

"ये बुढ़ऊ और वो देवी जी एक साथ यहीं रहे और ये उसे, न वह इन्हें देख पायी। कभी ऐसा होता भी है। चकाचौंध में सामने से आदमी निकल जाता है और हम नहीं देख पाते। सामने वस्तु रखी है और हम अपने में ऐसे खो जाते हैं कि वह दिखायी नहीं देती। कभी ऐसा होता है कि यह विश्वास ही नहीं होता कि अमुक वस्तु की वहाँ सम्भावना भी है। नही बात उन दोनों के साथ थी। वे सोच ही नहीं रहे थे कि कोई भी यहाँ प्रतीक्षालय में हो भी सकता है······।"

"तब, आगे ?" वेदन ने विस्मयातुर होकर प्रश्न किया।

"वह युवक यह नहीं बताता है कि ये दोनों कहाँ जा रहे थे। बस इतना कहता है, "साथ चला था। साथ लौट नहीं पाया।"—ये दोनों इलाहबाद से वे साथ ही चले थे और उसके पाँचवें दिन ये वृद्ध महोदय। तब ये एक बार दिल्ली होकर लौट गये थे, अब दुबारा आये हैं। सब मिलाकर इन लोगों को इलाहबाद छोड़े आज ग्यारह दिन हो गये हैं।" मालवीय कह गया।

"तब बीच में ये लोग वहाँ रुक गये और कैसे फिर यह युवक रेडियो के कलाकारों के साथ कैसे आया ?

"इलाहबाद से ये लोग लखनऊ गये। वहाँ से इनका कोई परिचित इस कार्यक्रम में देहली आ रहा था। वह युवक बहुत अच्छा तानपूरा बजा लेता है। देख आओ। हाथ में लिये है अपने तानपूरे को......। हाँ, तब रेडियो का कार्यक्रम कल संध्या को था। वह समाप्त हो गया। वह समूचा दल बिड़ला मंदिर की धर्मशाला में ठहरा था तथा ये दोनों कहीं अन्यत्र। जहाँ ये लोग ठहरे थे वहाँ प्रातःकाल ही युवक ने कहा—"जैसा कार्यक्रम है तुम स्टेशन चलो। वेटिङ्ग रूम में प्रतीक्षा करना मैं उन लोगों के साथ आता हूँ।उसका कहना है कि बिड़ला मन्दिर वाली धर्मशाला में भीड़-भाड़ बहुत थी और इन लोगों को प्रातःकाल ही गाड़ी से जाना था। अतः नहाने-धोने का कार्यक्रम उन लोगों ने वेटिङ्ग-रूम का बनाया...... और उन रेडियो वालों के साथ ये दोनों थोड़े ही जा रहे थे। बेचारी अपनी किसी सहेली को "सी आफ" करने आयीं थी......।"

प्रमदा बड़ी कातर सी, शून्य में लीन, जड़वत् कोच पर बैठी थी और कभी-कभी पुलिस अधिकारियों की सतर्कता को देख लेती थी जो उस समय प्रतीक्षालय के अन्य यात्रियों से पूछ-ताछ कर रहे थे। वेदन सोच रहा था कि ऐसी क्या बात थी कि उन दो व्यक्तियों के देखते ही वह लड़की नीचे कूद गयी।

"लेकिन वह नीचे क्यों कूदी······?"

"अपने बचाव के लिये। जो वे दो आये थे उनसे बचना चाहती होगी। उनको पहचानती होगी······।"

तत्काल ही लोक सभा के सदस्य महोदय ने वेटिङ्ग रूम में प्रवेश किया। वेदन को अत्यधिक विस्मय हो रहा था कि अभी थोड़ी देर हुयी वह इनके यहाँ से आरहा है और कह आया है कि वह शाम को आयेगा तब वे यहाँ क्यों आये? तभी उसे ध्यान आया—ओह, ये वृद्ध महाशय भी तो इनके परिचित हैं। तब उसने देखा कि वे संसद-सदस्य-महोदय पुलिस अधिकारियों से बातचीत में संलग्न हो गये। वेदन भी वहीं पहुँच गया। वह उनके पीछे खड़ा होगया और सुनने लगा। संसद-सदस्य महोदय कह रहे थे—"जी हाँ, ये मेरे बहुत परिचित हैं। यह तो आप भी जानते हैं कि ये आप के संगी-साथी हैं और इलाहबाद में सी० आई० डी० के डी० वाई० एस० पी० हैं। लेकिन अपने ऊपर जब बीती है तो देखिये कितने परेशान हैं। रोते हैं। ये बेचारे इसी प्रसंग को लेकर दो बार इलाहबाद से भाग कर मेरे पास आयें कि मैं इनकी कुछ सहायता करूँ। कल संध्या ही पता चला था कि इनकी पत्नी उस प्रोफ़ेसर लड़के के साथ होटल एम्बेसेडर में ठहरी थी। ठहरे तो थे ही इसलिये रात्रि में छेड़ छाड़ करना मैंने भी उचित नहीं समझा और सुबह जब खोज की तो होटल से पता चला कि वे लोग स्टेशन वेटिङ्ग-रूम में मिलेंगे। मैं अनेक बार इलाहबाद जाता रहता था। इनके यहाँ ही ठहरता था, अतः इनसे घर के से सम्बन्ध हैं। उन दो व्यक्तियों को—जिन्हें देख कर इनकी पत्नी घबड़ा गयी उन्हें मैंने ही भेजा था। उनमें एक तो उस लड़की का भाई था दूसरा उसी ही का एक साथी। सम्भवतः अपने भाई को देखकर घबड़ा गयी हो कि आगे क्या होगा······या जो भी हो।"

उन्होंने इतना कहा और वे पुलिस अधिकारियों के साथ प्रतीक्षालय के बाहर चले गये। वेदन ने सब बातें सुन ही ली थीं और उस समय

उसके परिचित वे संसद-सदस्य इतने व्यस्त थे कि उसने उनको टोक कर कुछ बात करना उचित नहीं समझा।

उनके पास से लौट कर वेदन ने समूचा वृतान्त मालवीय को तथा प्रमदा को सुनाया। जिस समय वेदन, सामने उन संसद-सदस्य के निकट खड़ा था मालवीय प्रमदा के निकट बैठा रह गया था। प्रमदा उस स्त्री की मृत्यु से अधिक दुःखी हो रही थी अतः बड़ी शान्त बैठी थी। तभी प्रमदा को विषादयुक्त देखकर उसका ध्यान बदलने के अभिप्राय से मालवीय ने कहा—"भाभी जी, यह प्रेम क्या है?"

एक निःश्वास फेंक कर प्रमदा ने मालवीय को देखा और उसकी आकृति में एक शुष्क मुस्कान खिंच आयी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

"हाँ, तो मैंने आपसे कुछ पूछा था······!" मालवीय ने दोहराया।

तत्क्षण ही वेदन वहाँ लौट आया और वह सब हाल सुनाने लगा। सब-कुछ सुना जाने के अनन्तर वहाँ एक निस्तब्धता छा गयी। वेदन ध्यान करने लगा—जब वह वहाँ आकर खड़ा हुआ था तब मालवीय व प्रमदा कुछ बात कर रहे थे और यकायक रुक गये थे। उनकी बातें उसे देख कर ही बन्द हो गयीं। वह मौत की उस उदासी में विलम्ब तक, घुमा-फिरा कर वही बात सोचता रहा। प्रमदा व मालवीय भी अपने में कुछ न कुछ सोचते गुम-सुम बैठे रहे। तभी मालवीय बोला—"अन्ततः हम लोग यहाँ कब तक बैठे रहेंगे? अब यहाँ से हम को कहीं चलना चाहिये। हम लोग कल रात्रि में आये थे। यहाँ चौदह घन्टे से अधिक हो गये हैं। यह तो प्रतीक्षालय के नियमों के विरुद्ध भी होगा? न जाने यहाँ के 'वेटर' इतना क्यों रुकने देते हैं और पता नहीं कोई चेकिंग होती है कि नहीं। हमें इतना समय हो गया, हमारे सामने तो चेकिंग हुयी नहीं·········फिर यह अन्याय भी है। हम दूसरों का स्थान घेरे हुये हैं······।"

"ऐसा बहुत बार होता है मालवीय।" वेदन तुरन्त कह गया।

"कैसा?"

"कि हम दूसरों का स्थान घेरे रहते हैं··· ।"

मालवीय ने एक बार वेदन को गौर से देखा। उसकी बात में कहीं कोई कर्कशता नहीं प्रतीत हुयी और बात वहीं समाप्त हो गयी।

"तब यहाँ से चलिये। मैं तो बैठे-बैठे ऊब गयी। अच्छी दिल्ली घुमायी। ऊपर से यह मरी मौत और देखने को मिली······ ।" प्रमदा ने अपने शरीर की टूटन को अंगड़ाई में झटकते हुये कहा।

इसके पूर्व अनेक बार मालवीय के सामने प्रमदा ने अंगड़ाई ली होगी किन्तु आज प्रमदा की अंगड़ाई में उसे विशेष आकर्षण हो रहा था और उन सुगोल बाहु-लताओं को जब प्रमदा ने झटक कर आगे फेंका तो मालवीय ज्यों पीछे हट गया। अंगड़ाई के साथ ही प्रमदा के नयनों में रस भर आया जिसे उसने अपनी पतली उंगलियों से मींड़ कर सुखा लिया।

तभी मालवीय भी बोला—"हाँ साहब, चलिये।"

× × ×

प्रमदा, वेदन तथा मालवीय फतेहपुरी के एक होटल में आ टिके। इस होटल का जो कमरा इन लोगों को मिला था वह कुछ बड़ा तो नहीं किन्तु डबल-बेड का था और उसकी तीन खिड़कियाँ फतेहपुरी की मुख्य सड़क के सम्मुख थीं। तभी स्वर गूँजा—

तन मन में आग लगी, दिल को पड़ा थामना,
राम जाने कब होगा, सैयां जी का सामना······"

स्वर किसी जलपान-गृह के ध्वनि-प्रसारक से आ रहा था। उसने एक बार, उस होटल सहित वायुमण्डल में एक गुदगुदी भर दी। उसके साथ ही प्रमदा भी, जो ड्रेसिंग-टेबिल पर शृंगार सामग्री को अपनी व वेदन की अटेचियों से निकाल-निकाल कर व्यवस्थित कर रही थी, कुछ गुनगुनाने लगी।

वेदन, जो स्वभावतः गुमसुम रहता था इस समय भी टेढ़ी-बाँकी

शक्ल बनाये पलंग पर बैठा अखबार पढ़ता रहा और मालवीय बीच की मेज के सामने पड़ी एक कुर्सी पर बैठा मुस्करा दिया। उससे रहा न गया—"भाभी जी, यहाँ रिकार्ड सुनने का तो बहुत आराम है।"

प्रमदा कुछ उत्तर दे उसके पूर्व ही उपदेशक की सी करकराहट में वेदन कह गया—"वह भी कैसे रिकार्ड ? 'तन मन में आग लगी'—और सुनिये। यह संगीत है। यह हमारी पीढ़ी के युवक-युवतियों का चरित्र-निर्माण कर रहा है।"

प्रमदा को वह व्याख्यान कुछ भला नहीं लगा और वह पूर्ववत् शृंगार मेज पर व्यस्त बनी रही। मालवीय भी सोच गया—क्या नीरस आदमी पल्ले पड़ा है। तभी दूसरा रिकार्ड गूँजा और वायु सहित स्वर-लहरी कमरे में आकर मुस्कराने लगी—

······हो गयी आधी रात अब घर जाने दो,

······ले लो वचन कल शाम का·······

"वाह साहब, वाह, क्या बात है ? वाहरे गाने······।" अनायास ही वेदन पुकार उठा।

प्रमदा ने मुस्कराते हुये वेदन की ओर देखा। मालवीय भी कनखियों से हँस रहा था। इस समय वेदन की हँसी भी न रुक सकी किन्तु ओठों पर हँसी भींच कर वह बोला—"प्रमदा, बाँधो सामान। मैं इस कमरे में नहीं ठहर सकता। यहाँ तो मेरे कान दो गानों में ही पक गये।"

१२

प्रमदा, वेदन तथा मालवीय दो दिन देहली में ठहरे। जिस कमरे में वे ठहरे थे उसमें दो पलंग पड़े हुये थे। मालवीय ने अपने लिये एक चारपाई और ले ली थी। यों होटल में अच्छी सुविधायें थीं। साथ ही नहाने-निबटने की जगहें थीं। कमरे में भी आवश्यकता के लिये एक बड़ी शृंगार मेज, दो छोटी-छोटी मेजें, बीच में एक गोल मेज व चार कुर्सियाँ तथा एक दीवाल के सहारे दो गद्देदार कुर्सियाँ पड़ी हुयी थीं। कमरे में पूर्व दिशा की ओर वे ही तीन खिड़कियाँ थी जिनके द्वारा फतेहपुरी-सड़क की चहल-पहल सुनायी देती थी। दो ओर की दीवारों में बने दरवाजे दूसरों के कमरों को मिलाते थे, जो बन्द थे। दरवाजों व खिड़कियों में हरे पर्दे पड़े हुये थे। पश्चिम दिशा की ओर के तीन द्वारों में केवल एक द्वार आने-जाने के काम में आ रहा था। दो द्वारों के बराबर प्रमदा का पलंग पड़ा हुआ था। खिड़कियों के सहारे वेदन का पलंग था तथा बायीं ओर की दीवार के सहारे मालवीय की चारपाई थी जिसका सिरहाना प्रमदा के पलंग की ओर तथा पायताना वेदन की ओर था। अनेक बार तकिये पर सर रख कर अथवा अपने गालों को तकिये में भींचता हुआ मालवीय कनखियों में प्रमदा के रूप-रस का पान करता रहता था। प्रमदा को भी उसमें कोई आपत्ति नहीं होती थी और वेदन की दृष्टियों के ओझल हो जाने पर अथवा वेदन के स्नानागार आदि चले जाने पर प्रमदा मालवीय

को तथा मालवीय प्रमदा को आकुल-व्याकुल हो कर देखते रहते थे। संयम पूर्ववत् जकड़ा हुआ था किन्तु एक खलबली सी मची हुयी थी। इस पर भी मालवीय मर्यादा में, संकोच में, मैत्री-आस्था में मौन था। प्रमदा परिस्थितियों का अवलोकन कर रही थी। उचित-अनुचित का तर्क उसके अन्तराल को झकझोर रहा था, अतः अनिर्णीत प्रमदा अपने नेत्रों को वश में न रख पा रही थी। शेष, हृदय व मस्तिष्क में वह दृढ़ थी।

वेदन के हृदय में भी एक प्रतिक्रिया बनी हुयी थी। कमरे में मालवीय व प्रमदा को अकेले छोड़ आना उसे भला नही लगता था किन्तु विवश हो उसे आना पड़ता था। जीवन में कभी ऐसा प्रसंग नहीं आया था कि प्रमदा अथवा किसी नारी के विश्वास-अविश्वास की तर्क-संज्ञा पर उसने ध्यान दिया हो। प्रमदा के प्रति अनायास उस भ्रमात्मक संदेह के उत्पीड़न में वह प्रथम बार ही घिर रहा था। यों ही, देहली-यात्रा और अब देहली प्रवास से वह ऊब रहा था।

इधर प्रथम बार ही मालवीय ने प्रमदा की रूप-मद-गागर वैसी भरी हुयी देख पायी थी। इधर प्रमदा उसे परम-परम रूपवती और अगाध यौवन भार से दबी हुयी प्रतीत हुयी थी। विवाह के अनन्तर कई वर्षों तक निःसंतान नारी को देखते रहकर भी इधर प्रथम बार वह उसमें कुमारिल-यौवन का रस पा रहा था। यों, वह कभी-कभी सोचता था—हम विवाहित हैं; किन्तु जब भी प्रमदा की मूर्ति पलकों में उतरती वह सुध-बुध खो बैठता।

प्रमदा में बस इतना हो रहा था कि मालवीय को वह देखती भर रहे। कोई कुछ बोले नहीं। कोई हिले-डुले नहीं। ओठ बन्द रहें। नेत्र बन्द रहें। खाने पीने के लिये भी न उठा जाय और बस वह पलक मूँदे-पलक खोले मालवीय को देखती रहे। मालवीय को इसके पूर्व उसने अनगिन बार देखा था किन्तु इधर वह अधिक स्वस्थ, सुन्दर व आकर्षक प्रतीत हो रहा था।

दो दिन पूर्व वह देहली घूमने की रट लगाये हुये थी किन्तु इन दो दिनों में ही न जाने क्या परिवर्तन हुआ कि उसका मन कहीं जाने को ही न होता था। यों वेदन के कहने पर, विवश प्रमदा को देहली के दर्शनीय स्थान देखने जाना पड़ा। मालवीय भी साथ गया किन्तु न जाने क्यों न मालवीय का न प्रमदा का ही मन होता था कि वे होटल के कमरे के बाहर जावें। किन्तु इतने पर भी यह ध्यान अपने-अपने तक ही सीमित था। कोई एक दूसरे की भावनाओं को नहीं जानता था।

इस पर भी मालवीय की तर्क-बुद्धि निरन्तर कार्यशील थी। वह सोचता जा रहा था—ऐसा ध्यान भी अनुचित है। अनेकों के प्रति अन्याय है। सर्वाधिक अपने प्रति अन्याय है और तत्काल ही उसे ध्यान आया मधुर व बच्चों का। भावी सन्तान का ध्यान कर वह असंतुलित हो उठा और संध्या समय घूम कर लौटने पर उसने वेदन से कहा—"परसों हम लोगों की छुट्टियाँ भी समाप्त हो रही हैं। हम लोगों को आगरा चलना चाहिये। मुझे मधुर को देखना है। अनायास न जाने मेरा मन कैसा-कैसा हो रहा है।"

"मैं भी यही सोच रहा हूँ।" वेदन बोला। वह तो स्टेशन से ही आगरा लौट जाना चाहता था किन्तु सब लोग देहली, घूमने के लिये आये थे न कि स्टेशन की ड्योढ़ी चूमने।

"तब रात की ट्रेन ठीक रहेगी या कल सुबह…।" मालवीय ने यों ही कह डाला।

वेदन इसका कुछ उत्तर दे उसके पूर्व ही प्रमदा ने कहा—"रात बेकार करने से क्या लाभ ? अब सुबह ही निकल चलेंगे।"

और बात तय हो गयी।

× × ×

मध्यान्तर में घूमते-घूमते चांदनी चौक में वेदन के एक परिचित मिल गये जो सैक्रेट्रियेट में काम करते थे। उन्होंने वेदन को संध्या को भोजन का

निमंत्रण दे दिया। अत्यधिक सकुचाते हुये वेदन ने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। मालवीय उन मित्र से अपरिचित था किन्तु फिर भी साथ के कारण व्यवहारवश मालवीय को भी निमन्त्रण मिला जिसको उसने "हाँ, हाँ" कह कर स्वीकार कर लिया! वस्तुतः, उन मित्र के यहाँ परिवार में कोई स्त्री सदस्या न थी। वे रहते न्यू देहली में फाच-स्क्वायर नामक स्थान में थे किन्तु बोर्डिंग-हाउस की भाँति। कई मित्रों ने मिल कर वह क्वार्टर ले रखा था और एक खाना बनाने वाला रख छोड़ा था। अतः प्रमदा के जाने या निमन्त्रण का प्रश्न ही नहीं उठा।

उन मित्र ने कहा अवश्य—"अपनी मिसेज को भी लाइये······।"

किन्तु वेदन ने अपने मित्र की व्यवस्था को जान लेने के अनन्तर स्पष्टतः कह दिया—"मैं ही आऊँगा। इन्हें क्या कीजियेगा।"

"इन्हें क्या कीजियेगा से क्या मतलब? खाना खिलाऊँगा!" उन मित्र ने तत्परता पूर्वक कह डाला।

"अपनी श्रीमती जी को जब देहली ले आना तब मुझे लिख देना मैं दुबारा आ जाऊँगा। वेदन ने उत्तर दिया। सभी ने विदा ली।

× × ×

रात्रि को लगभग आठ बजे जब वेदन के वहाँ जाने का समय हुआ तो वह अनखनाने लगा किन्तु मित्र के निमन्त्रण का स्मरण दिलाकर प्रमदा ने वेदन से कहा—"वहाँ जाना चाहिये।"

"और तुम लोग?"

"हम लोग क्या?"

सुनकर वेदन चुप हो रहा तब एक दो मिनट बाद फिर बोला—"तुम लोग पिक्चर देख आओ।"

"मालवीय चलोगे?" प्रमदा ने मुस्कराते हुये शीशे में देखकर अपने नेत्रों की कगारें रूमाल से साफ करते हुये प्रश्न किया।

"चलिये।" मालवीय ने उसी तत्परता में उत्तर दिया।

"तब ठीक है। हम लोग सिनेमा जाते हैं। अभी तो आठ बजा है आपको अभी जाना होगा। हम लोग नौ बजे के लगभग जायेंगे। ताली बैरा को दे जायेंगे। ठीक रहेगा, न!" प्रमदा ने वेदन से पूछा।

"हाँ-हाँ।" वेदन ने उत्तर दिया किन्तु सोचता रहा—प्रमदा यहाँ अकेली रहेगी। किन्तु उससे क्या? उसका यह सोचना कितना अनुचित है? वह वैसा क्यों सोचता है? प्रमदा के जीवन में उसने आज तक ऐसा क्या देखा, सुना या समझा है जिसके आधार पर उसके मन में अविश्वास का शत्रु पैठ रहा है। उसका वैसा सोचना अपने व प्रमदा दोनों के प्रति अन्याय है किन्तु उसकी एक धारणा भी थी—भगवान्! कभी कोई······। किन्तु सब सोचते हुये भी उसे जाना था, एक सन्तोष के साथ कि एक घंटे में प्रमदा व मालवीय सिनेमा चले जायेंगे।

"इस समय तो यह जाना अखर रहा है। बोलो, यहाँ से नई-दिल्ली जाओ। दो रुपये जाने-आने में खर्च करो और तीन घंटे का समय नष्ट करो।" वेदन कुनमुनाते हुये कह गया।

"वेदन तुम किसी के मित्र होने योग्य नहीं हो।" मालवीय ने किंचित झल्लाहट में कहा।

"अरे बाबा! बिगड़ो मत, मित्रता के नाम पर ही जा रहा हूँ।" कहते हुए वेदन ने कपड़े पहने और—"दो-ढ़ाई घंटे बाद लौट आऊँगा।" कह कर चला गया।

"आप पिक्चर चल रही है?" अनायास मालवीय ने प्रश्न किया।

उस समय तक वेदन को गये लगभग बीस मिनट हो गये थे। मालवीय इधर-उधर कर बाहर बरामदे में जानबूझ कर टहलता रहा और तब अन्दर आकर कुर्सी पर बैठ गया। वहीं प्रमदा को पलंग पर लेटे हुये वह अनिमेष दो मिनट तक देखता रहा और तभी उपर्युक्त प्रश्न कर बैठा।

"चलोगे ?" प्रमदा ने अपना प्रश्न मालवीय के प्रश्न से अधिक भरमाये स्वरों में व्यक्त कर दिया।

मालवीय ने जो प्रमदा के रूप की छलकती मादकता में यौवन की अल्हड़ता को पंलग की अस्त-व्यस्तता में निहारा तो वह सिहर उठा। वह चित लेटी थी। गर्दन उसकी मालवीय की ओर घूमी हुयी थी। उसके वक्ष के नोकीले शैल-शृंग स्वास के साथ दब उभर कर मन की कराह को दाब रहे थे। ब्लाउज व साड़ी के बन्धन के बीच की श्वेत माँसलता पर दृष्टिपात कर मालवीय ने प्रयत्न करके दृष्टि हटाई और तब उसने फिर-फिर कर फिर देखा—साड़ी की चुन्नट जाँघों के बीच से दब कर पिण्डलियों को छू कर फैल रही है।

स्वास गति रोक कर मालवीय बोला—"चलिये।"

"ऐंह······अब कहाँ चलोगे। लेटो न यहीं······।"

"नहीं, वेदन से हम लोगों ने कह दिया है। चलिये, अच्छा है पिक्चर देख आयेंगे। समय कट जायेगा।"

"यहाँ समय नहीं कटेगा ?"

"न। यहाँ समय हमें काटेगा।"

"मालवीय !"

"भाभी जी, चलिये !"

प्रमदा ने एक क्षण को पलक मूँद लिये। तब अनायास वह पलंग पर से उठ खड़ी हुयी—"चलो······।"

प्रमदा की साँस फूल रही थी और वह आवेग में साड़ी बदलने जा रही थी। उसने मालवीय के सामने ही अपनी पूरी साड़ी उतार फेंकी। तब मालवीय ने प्रमदा को केवल पेटीकोट और ब्लाउज में देखा और उसके भरे हुये अंग-सौष्ठव को।

प्रमदा चाहती तो कहीं कोने में साड़ी बदल लेती। वह चाहती तो साड़ी न भी बदलती। जो साड़ी वह पहने थी, वही इतनी आकर्षित थी

कि वह उसे पहने हुये ही सिनेमा जा सकती थी। वह चाहती तो दूसरी साड़ी ट्रंक से निकालने के अनन्तर पहनी हुयी साड़ी उतारती। किन्तु उसने तब विलम्ब तक उसी अवस्था में अपने को रखकर कमरे में अपने आप को घुमाया। वह साड़ी बदल रही है—ऐसा ध्यान कर उसने प्रवेश द्वार की चटखनी भी उसी प्रकार जाकर बन्द करली। तब उसने दूसरी साड़ी की तह खोली और उसी प्रकार मौन, निर्वाक् हो—ज्यों बड़े रोष में नयी साड़ी देखती रही। अपने सर पर कभी वह एक छोर रखकर उतार लेती तो कभी दूसरा।

उस एकान्त कमरे में, उस स्थिति में, एक नारी के अर्ध-नग्न-रूप की वैसी चंचलता देखकर मालवीय चाहता तो कुर्सी पर से फाँद पड़ता। उसने दो मिनट को सोचा भी—सोचता रहा कि उठे और प्रमदा को इन भुजपाशों में कस ले। उसे इसी स्थिति में पलंग पर दाब दे किन्तु वह निश्चल-मौन-शान्त बैठा रहा। वह हिला नहीं।

तभी प्रमदा ने नयी साड़ी की गठरी बनाकर दूर भूमि पर फेंक दी। उसने अपनी पहली साड़ी उठायी और पहन ली।

साड़ी पहनने के अनन्तर प्रमदा ने भर्राये गले से अनायास कह दिया—"मालवीय! तुम इस कमरे के बाहर जाओ। दो घंटे बाद लौट कर आना।"

"मालवीय ने कुछ कहा नहीं। उसने कपड़े पहने और चुपचाप बाहर चला गया।

उसके पीछे प्रमदा ने पलंग पर से उठकर बड़ी जोर से द्वार बन्द कर चटखनी लगा ली और औंधे मुँह पलंग पर आकर, धम्म से पड़ गयी।

१३

मालवीय के चले जाने के अनन्तर प्रमदा पलंग पर से उठी। शृंगार-मेज में लगे शीशे के समक्ष कई मिनट तक खड़ी रही, मुस्कराती रही तभी अपने आप रोष में भर गयी। अपने नेत्र फाड़ कर उसने शीशे में देखा कि वे कैसे लगते हैं? डरावने लग रहे थे, वे। तब वह दर्पण के सामने से हट आयी। थोड़ी देर यों ही कमरे में चक्कर काटती रही। एक बार उसने मालवीय की चारपाई की ओर निहारा और तुरन्त दृष्टि घुमा ली। सामने फर्श की बड़ी दरी पर रेशमी साड़ी उलझी पड़ी थी। उसने उसे उठाया नहीं। वह पुनः पलंग पर धम्म से पड़ रही। तब अनायास किलकारी भर कर वह ज़ोर से रो पड़ी।

इसी क्षण द्वार खटका। वेदन इतनी जल्दी नहीं लौट सकता। मालवीय होगा; उसने सोचा अतः उसने जानबूझ कर द्वार नहीं खोला किन्तु अपने कपोलों पर ढुले मोतियों को उसने आँचल में समेट लिया और तब आवाज आयी—"खोलो, दरवाजा।"

वह स्वर वेदन का था। अन्दर से द्वार बन्द देखकर शंकालु वेदन अस्थिर हो उठा। एक बार उसने ध्यान किया लौट जाय। द्वार न खट-खटाये किन्तु तभी बैरा ने आकर बताया—"दूसरा बाबू बाहर गया है। बीवी अन्दर है।"

अस्तु, वेदन की पुकार पर द्वार खुल गया।

"मालवीय कहाँ गया ?"

"मुझे पता नहीं।"

"तुमसे नहीं कह गया ?"

"नहीं।"

"कितनी देर हो गयी उसे गये ?" प्रश्न करते हुये वेदन की दृष्टि घूमी तो उसने देखा एक साड़ी खुली हुयी भूमि पर पड़ी है। उधर प्रमदा ने कोई उत्तर नहीं दिया। तभी वेदन ने दुबारा प्रश्न किया—"बात क्या है ? तुम लोग सिनेमा नहीं गये ?"

"नहीं ?"

"क्यों ?"

"यों ही।"

इसके आगे वेदन ने कोई प्रश्न नहीं किया और वह कपड़े उतार कर पलंग पर लेट रहा। प्रमदा अपने पलंग पर लेटी और सो गयी। बाहर का द्वार खुला रहा। घंटों बीत गये मालवीय नहीं लौटा।

वेदन के मन की विचित्र दशा थी। वह सब कुछ सोचना चाहता था किन्तु कुछ भी न सोच पा रहा था। प्रमदा में कुछ इतना तेवर था कि वह उससे अधिक प्रश्नोत्तर कभी करता ही न था। अतः मन के आक्रोश में तन दाबे, वह पड़ा रहा। तभी पुनः रिकार्ड बज उठा—

तन मन में आग लगी.........

वेदन ने घूम कर देखा, प्रमदा सो रही थी। उसका मुखर यौवन समक्ष था। उसने द्वार बन्द करना चाहा किन्तु तत्काल सोच गया—प्रमदा का मन ही कब हुआ ? वह चाहती तो क्या मेरे लौट आने पर प्यार भरी दो बातें न करती और तभी वह अपने पलंग पर करवट लेकर लेट गया।

वेदन घंटों नहीं सो पाया और नाना प्रकार की बातें सोचता रहा।

क्या हुआ ? प्रमदा मालवीय से इतना बिगड़ी हुयी क्यों है ? क्या मालवीय ने इसके प्रति अशोभनीय व्यवहार किया ? तब यह साड़ी क्यों खुली पड़ी है ? प्रमदा नींद में इतनी खोई हुई क्यो है ? प्रमदा में ऐसी किस थकन का प्रभाव पैठ गया है कि उसे इतनी नींद आ रही है ? मालवीय इतनी रात गये अकेला कहाँ और क्यों गया है ? ये दोनों पिक्चर क्यों नहीं गये ? ये दोनों उसकी अनुपस्थिति में कितनी देर एकान्त में रहे इत्यादि……

बड़ी रात बीते मालवीय लौटा। वेदन तब तक जाग रहा था। मालवीय आया। उसे ज्ञात था अतः उसका हाथ स्विच पर पहुँच गया। बाहर खिड़कियों से होकर आता हुआ सड़क की बत्तियों का धीमा प्रकाश अब कमरे के प्रकाश में तीव्र हो उठा। तब वेदन ने करवट बदल कर मालवीय को देखा। उनकी आँखें चार हुयीं। मालवीय ने वेदन को अपने ओठों पर उंगली रख कर तथा प्रमदा की ओर संकेत करते हुये—'शी-शी' कर कुछ कहा। ज्यों कहना चाहता हो—शोर मत करो—वह सो रही है। वेदन को उसका वह अभिनय अच्छा नहीं लगा किन्तु मालवीय जिस प्रकार अपनी आँखें फाड़ कर देख रहा था उससे वेदन ने तत्काल समझ लिया कि मालवीय कोई नशा पिये हुये है।

मालवीय आकर धम्म से योंही पलंग पर लेट गया। वह अपने जूते पहने ही रहा। तब उसने अपना सिरहाना प्रमदा की ओर से बदल कर वेदन की ओर कर लिया। एक दो मिनट वह ऐसे ही लेटा रहा तब उठा और चुपचाप जूते उतार आया। द्वार की चटखनी लगाई। बत्ती बुझाई तब फिर कुछ याद करके जला दी। तब अपने कपड़े उतारे, तहमद लपेटा चारपाई पर आ लेटा।

"मालवीय कहाँ गये थे ?"

"शराब पीने।"

"पहले तो कभी भी नहीं।"

"न, जीवन में कभी नहीं।" तकिये में सर भींचते हुये मालवीय ने

उत्तर दिया।

वेदन न जाने क्या-क्या सोचता रहा ? आज बात क्या है ? मालवीय आज कैसा हो रहा है ? इसने आज शराब क्यों पी ?

"और इतनी देर रहे कहाँ ?"

सामने प्रमदा पूर्ववत् खर्राटे ले रही थी।

तभी मालवीय ने अपना सर उठाया और बोला—"इधर सुनो··· ।"

मालवीय के संकेत पर अनिच्छा से वेदन ने अपने कान उसके निकट पहुँचा दिये।

"एक कोठे पर गया था······ ।"

वेदन सन्न रह गया। वह अधिकाधिक आन्दोलित होता चला जा रहा था।

"क्यों, आज बात क्या है ?" वेदन ने प्रश्न किया।

"जीवन नयी दिशायें बदल रहा है······ ।"

"आज ही।"

"हाँ।"

"इसके पहले तो तुम कभी कोठे पर गये नहीं ?"

"उधर झाँका भी नहीं।" कह कर मालवीय ने अपना मस्तक ज़ोर से तकिये पर पटक लिया।

"क्यों बात क्या है ?" वेदन ने बड़ी उद्विग्नता में प्रश्न किया। उसे अपनी पड़ी हुयी थी। वह उस सबका कारण प्रमदा से जोड़ रहा था। वह उस सब कारण का आरोपण प्रमदा में कर रहा था। वह सब सम्बन्ध प्रमदा से मिला रहा था। प्रमदा, बेसुध सो रही थी।

"कुछ नहीं।" जैसे मालवीय के शब्द किसी गुफा से निकल रहे हों।

"अच्छा सो जाओ। सुबह चलना है।" कहते हुये वेदन उठा। उस ने बत्ती बुझाई और पलंग पर आ लेटा। उसे नींद नहीं आयी।

लगभग एक घंटे बाद अनायास प्रमदा की नींद टूटी। कमरे में अँधेरा

था। बाहर सड़क का प्रकाश छन-छन कर कमरे में आ रहा था। उसमें दीख पड़ा कि मालवीय उधर सर किये सो रहा है। वेदन भी दीवाल की ओर मुँह किये बेखबर सो रहा है। प्रमदा पलंग की पाटी पर बैठ गयी। पैर उसने भूमि पर टिका लिये। उस अँधेरे में ही उसने मालवीय को निहारा। उसके प्रति एक घृणा, एक रोष उसमें भर गया। उसने मुँह फेर लिया। तब फिर उसने मालवीय को देखा।

जैसे किसी ने झकझोर कर जगाया हो इस प्रकार मालवीय की नींद टूट गयी। उसने नेत्र खोले। सामने पलंग की पाटी पर प्रमदा को बैठे देखा। तुरन्त उसने गर्दन घुमायी। देखा वेदन दीवाल की ओर मुँह किये सो रहा है। वह उठ बैठा। नशा उसे अभी भी बहुत था।

तब उसने जी भर कर प्रमदा को देखा। प्रमदा के वक्ष पर ब्लाउज उभर रहा था। साड़ी का छोर पलंग पर ही पड़ा था। मालवीय में उत्तेजना भर गयी। उसके रोम-रोम में सिहरन का मादक-संचार पैठता गया। पल भर में वह प्रमदा की ओर सरक गया।

प्रमदा प्रतीक्षा करती रही कि अब आगे वह क्या करता है।

मालवीय ने अपनी दोनों बाहें प्रसार दीं। प्रमदा मौन बैठी मालवीय के अभिनय को देखती रही और अधिकाधिक रोष व घृणा में भरती चली गयी। वह निश्चल बैठी थी। ऊब कर मालवीय ने अपने हाथ पटक लिये। प्रमदा का प्रत्युत्तर न पाकर वह लाज में गड़ गया। वह पीछे हट आया। तब उसमें फिर उत्तेजना भरी। उसने एक बार फिर प्रमदा को देखा। उसने देखा प्रमदा की स्वासगति तीव्रतर हो रही है। उसने देखा उसके वक्ष की माँसलता उस पर टूट पड़ना चाहती है। तभी उसमें प्रोत्साहन जागा। वह अपनी चारपाई पर से उठा। उसने घूमकर देखा—वेदन यथावत् तीव्र निद्रा में निमग्न था। वह प्रमदा की ओर बढ़ा। उस ने अपने ओठ उसकी ओर बढ़ाये।

इस समय भी प्रमदा व मालवीय में पर्याप्त दूरी थी। प्रमदा का जी

चाह रहा था दूर से ही मालवीय के एक लात दे। वह चाह रही थी—अब आगे बढ़े तो एक भरपूर थप्पड़ तोल कर उसके गालों पर रख दे। तब ज़ोर की आवाज़ होगी। तब वेदन जाग जायगा। तब उसका स्वामी जाग जायगा। तब ठीक रहेगा।

किन्तु मालवीय स्थिर हो गया। वह बढ़ा नहीं। वह लौटा और धम्म से चारपाई पर लेट गया।

प्रमदा, अब अपने स्थान से हिली, साड़ी सँभाली। उसने छोटी मेज़ पर रक्खी सुराही से काँच का गिलास भरा और मालवीय की ओर बढ़ा दिया—"लो तुम शराब पीने के योग्य भी नहीं। पानी पियो······।"

मालवीय तिलमिला कर रह गया। वह उस झिझक को झकझोर डालना चाहता था किन्तु प्रमदा के समक्ष सब उपेक्षा, सब अपमान सह कर भी दृढ़ बना रहना चाहता था।

"तुम उठीं क्यों? जाओ सो जाओ।" मालवीय अपने सूखे कंठ से कह गया।

"तुम्हें सुप्त देखकर। अब मैं जाग गयी हूँ। अब नहीं सो पाऊँगी।" कहते हुये प्रमदा अपने पलंग पर ऊर्ध्व लेट गयी।

मालवीय पलक मूँदे लेटा रहा। उसके समक्ष वह नारी-रूप अपनी पूर्ण नग्नावस्था में घूम रहा था जिसके निकट से वह एक-दो घंटे पूर्व ही आया था।

× × ×

प्रातःकाल ही प्रमदा, वेदन व मालवीय ने देहली त्याग दी।

होटल से लेकर स्टेशन, तब आगरा, तब घर पहुँचते-पहुँचते न प्रमदा ने मालवीय को, न मालवीय ने प्रमदा को दृष्टि भर देखा; न वे एक शब्द बोले ही।

वेदन वह सब देख-समझ कर हैरान था। उसकी स्थिति न कुछ बोलने की हो रही थी न वह चुप ही रहना चाहता था किन्तु फिर भी वह मौन ही बना रहा।

१४

मधुर के बच्चा हुआ और वह उसके तीसरे दिन ही काल-कवलित हो गयी। उसकी मृत्यु के दो घंटे के पश्चात् ही नवजात-शिशु भी संसार छोड़ गया।

यह घटना मालवीय के आगरे पहुँचने के एक सप्ताह के अन्दर ही हो गयी। मालवीय गुम गुम सब की सहानुभूति स्वीकार करता रहा। मधुर की मृत्यु आगरे से थोड़ी दूर एक गाँव में हुयी थी किन्तु मालवीय वहाँ नहीं गया। दूसरे दिन ही मालवीय के श्वसुर उसके तीनों नन्हे बच्चों को उस के पास छोड़ गये।

वेदन दिन में कई-कई बार आता और मालवीय को सन्तोष देता रहता। मालवीय पूर्णतः शान्त था। वह आने-जाने वाले व्यक्तियों से बोलता भी बहुत कम था।

वेदन ने बहुत कहा किन्तु प्रमदा मालवीय के यहाँ नहीं गयी। वेदन ने कहा भी कि ऐसी क्या बात है? वह इतने निकटतम व्यक्ति के यहाँ क्यों नहीं जाना चाहती है?

"तुम मेरे इतने निकटतम मित्र की पत्नी की मृत्यु पर सहानुभूति प्रदर्शित करने भी नहीं जाना चाहतीं। जबकि वह मृत-स्त्री तुम्हारी भी अभिन्नतम साथिन थी? तुम क्यों नहीं जाना चाहतीं? बात क्या है?" वेदन ने अनेक बार कहा।

"बात क्या होती ? इसमें आप ज़िद न कीजिये। न ही दुबारा वहाँ जाने को कहियेगा। आपके हाथ जोड़ती हूँ, बस।

"किन्तु यह सब मेरे अन्दर अनेक सन्देहों की आवृत्ति उत्पन्न कर रहा है, यह समझती हो!" वेदन ने कह डाला।

"उसके निवारण के लिये मैं विवश हूँ।" कहते हुये प्रमदा वेदन के सामने से हट आयी।

विवश वेदन भ्रान्तियों में उलझा तब भी अपने मित्र के यहाँ निरन्तर जाता रहा। उसे सान्त्वना देता रहा। अनेक बार उसके मन में आया कि वह मालवीय से बात करे किन्तु उपयुक्त अवसर न जान कर शान्त हो जाता था।

अब मालवीय के घर में वह था, उसके नन्हे तीन बच्चे; दो दिन पूर्व आयी हुयी उसकी माँ व एक दो अन्य नातेदार। दो तीन के अन्तर से वे सब एक-एक करके चले गये। रह गयी मालवीय की माँ, बच्चों की देख-भाल के लिये तथा वे तीन बच्चे।

एक सप्ताह के पश्चात् मालवीय ने कालेज जाना भी प्रारम्भ कर दिया और बच्चों की अधिक देख भाल के लिये उसने एक नौकर भी ढूँढ़ दिया। बूढ़ी माँ सब प्रकार से प्रयत्न करने पर भी बच्चों से खीझ जाती थी। मालवीय को सभी की सँभाल करनी पड़ रही थी।

वेदन मालवीय के प्रति निरन्तर सहानुभूति-पूर्ण बना हुआ था। कभी मालवीय के प्रति किसी प्रतिक्रिया के आने पर भी वह उसे अपने से हटा देता था। इस समय वह प्रमदा पर अत्यधिक रुष्ट था। उसके मालवीय के यहाँ न जाने के कारण वह समस्त दोषारोपण प्रमदा पर कर रहा था। इस प्रसंग को लेकर उसमें व प्रमदा में अनेक बार बहस हुई और धीरे-धीरे इसी एक कारण को लेकर उनमें तीव्र मतभेद होते चले गये, किन्तु प्रमदा ने चिन्ता नहीं की और वह अपने स्थान पर अडिग बनी रही। प्रमदा के स्वभाव में अपनी बात पर अटकने की कुछ इतनी स्थिरता थी कि वह तब किसी की कुछ सुनने को प्रस्तुत न होती थी।

प्रमदा की उस ज़िद पर वेदन अधिकाधिक शंका ग्रस्त साथ ही उग्र होता चला जा रहा था। उस प्रसंग को लेकर दिन में एक-दो बार जब तक घर में चखमख न हो जाती—शान्ति होती ही न थी। और फिर घर में कोई था भी नहीं। एक छोटा सा फ्लैट वेदन ने ले रक्खा था जिसमें वे पति-पत्नी रहते थे। घर में न कोई अन्य सदस्य था न कोई नौकर। एक नौकरानी दिन में दो बार आकर बर्तन माँज जाती थी, झाड़ू-सफ़ाई कर जाती थी और बस, दिन भर प्रमदा अकेली रहती थी। कालेज का समय बीतने पर वेदन सीधा घर चला आवे—ऐसा तो बहुत कम होता था। उसे नित्य ही किसी न किसी मित्र या परिचित के यहाँ जाना; घंटे दो घंटे गप लड़ाना, शतरंज या ब्रिज खेलना और तब घर पहुँचना। सदा से ही वह व प्रमदा केवल रात्रि के साथी थे। सुबह कालेज जाने की हड़बड़ी में निकल जाता था और दिन दूर-दूर!

छुट्टियों में भी वेदन अधिकतर घर न रह कर इधर-उधर निकल जाता था। उसने कभी ध्यान ही नहीं किया कि प्रमदा को कभी अकेला-पन अखरता भी होगा। न ही प्रमदा ने उससे कभी कहा कि उसके पास वह दो पल ठहरे। उनकी एक दूरी की ज़िन्दगी थी। प्रमदा कसक का एक भारी बोझ दाबे या तो पढ़ती-लिखती रहती थी या सहेलियों से सन्तोष पा लेती थी।

इधर पारस्परिक मतभेद के परिणामस्वरूप वेदन अपने में ऐंठा हुआ था व प्रमदा अपनी जगह कुड़कुड़ा रही थी। इस सब के अतिरिक्त प्रमदा के हृदय में इधर एक नयी दहकन सुलग रही थी। वह सदा ही मालवीय के सम्बन्ध में सोचती रहती थी। उस सोच में मालवीय के प्रति न घृणा थी, न अनुराग। एक रोष था जो रह-रह कर उसमें उद्विग्नता भर देता था। अपने मन का वह सब अपने में भरे हुये थी। वेदन को वह क्या बताती। कहीं किसी से कुछ कह देती तो कुछ निकल भी जाता किन्तु स्वयं ही उसने मालवीय से दूरी घसीट ली। आवेश में वह कभी-कभी

अकेले में लाल हो जाती और इतनी अधीर हो जाती कि उसका जी करता अपने या किसी के गालों पर दस-बीस-तीस थप्पड़ लगा ले। चाहे वह मालवीय ही क्यों न हो।

प्रमदा, वेदन से तथा वेदन प्रमदा से खिंचते चले जा रहे थे। वेदन अब और अधिक समय बाहर व्यतीत करने लगा।

× × ×

इन्हीं परिस्थितियों में एक दिन वे अर्ध-विदित महोदय वेदन को मिल गये। किनारी बाजार में सामने पड़ते ही वेदन ने अपनी ओर से उन्हें नमस्कार किया। वे उस समय भी अपने ओठ फड़फड़ाते चले जा रहे थे। पहले तो वेदन को देखकर उन्होंने विचित्र प्रकार से अपनी नाक-भौंह सिकोड़ी किन्तु वेदन के विशेष आग्रह पर उन्होने उसकी बात सुनना स्वीकार कर लिया। बाज़ार से हटकर वेदन व वे सज्जन फव्वारे की ओर बढ़ आये।

मार्ग में वेदन बोला—"मैं आप से माफी माँगना चाहता हूँ। उस दिन देहली में मुझसे बड़ा अपराध बन पड़ा······।"

"कोई बात नहीं। आप करते क्या हैं?" उन्होंने ज्यों ललचाई-भरमाई दृष्टियों में वेदन को तोलते हुये प्रश्न किया।

"मैं तो एक कालेज में प्रोफेसर हूँ।"

"तब आपको कम से कम ढाई सौ रुपया वेतन तो मिलता ही होगा?"

"लगभग······।"

"तब आप अपना बीमा करा लीजिये। अपनी पत्नी का भी······ सुनिये, आप मुझसे घबड़ाइये मत। यह बड़बड़ाने की मेरी आदत है। इसके पीछे मेरा इतिहास है। किन्तु मैं क्या करूँ? न जाने कितनी बार सड़क पर चलते हुये पिटते-पिटते बच चुका हूँ, किन्तु क्या करूँ········· मेरी यह बात सर्व विदित है।"

"कोई बात नहीं......।" वेदन ने भी उसी के स्वर में कहा—"आप मेरे घर आइये।"

"कहाँ?"

वेदन ने अपने नाम का कार्ड उसे दे दिया।

× × ×

दूसरे दिन ही वे महोदय वेदन के घर पहुँचे। उस दिन रविवार था। अतः वेदन ने कहकर उन्हें प्रातःकाल बुलाया था। उनके आने पर उसने प्रमदा को उन महोदय से मिलाया और उनकी उस बड़बड़ाहट की कहानी बताई कि इस बड़बड़ाहट के पीछे उनका कोई इतिहास है।

"हाँ, क्षमा कीजियेगा। आपका नाम अभी तक ज्ञात नहीं हुआ।" वेदन ने उनसे कहा।

"हाँ, मेरा नाम सुन्दरलाल है। और इस बड़बड़ाहट के पीछे इतिहास क्या है; वह भी सुन लीजिये। बस, एक याद है जो मन में दबी हुयी है। क्या करूँ वह तो मर गयी किन्तु मुझे आधा पागल बना कर छोड़ गयी......।" कहते हुये तत्काल सुन्दरलाल के नेत्रों से अश्रु-धार बह चली।

"अरे, अरे! आप रोते क्यों हैं? तो वे थीं कौन?"

"अजी, सब पूछ कर मुझे और दुःख मत दीजिये। अब मैं दिन भर रोऊँगा। घर, सड़क दफ्तर में रोना ही रोना बना रहेगा।" सुन्दरलाल ने कहा।

प्रमदा सामने स्टूल पर बैठी-बैठी मुस्करा रही थी। वह वेदन को सम्बोधित कर बोली—"बेचारे बड़े कष्ट में हैं। इन्हें अपना बीमा दे दीजिये।"

"और अपना भी दीजिये, साहब!" तत्काल सुन्दरलाल बोल पड़े।

"मैं तो नहीं।" प्रमदा ने कहा।

"क्यों, क्या हानि है?" वेदन प्रमदा से प्रश्न किया।

"नहीं मैं अपना बीमा नहीं दूँगी।"

वेदन ने अपने लिये 'प्रपोजल-फार्म' भर दिया। उसकी इच्छा थी कि प्रमदा भी फार्म भर देवे किन्तु प्रमदा ने स्पष्टतः मना कर दिया।

सुन्दरलाल चले गये और अब निरन्तर आते रहने का वचन दे गये।

बीमे के फार्म के प्रसंग को लेकर ही प्रमदा व वेदन में दो दिन तक विवाद होता रहा, किन्तु प्रमदा ने वेदन की बात स्वीकार नहीं की।

उधर समय पाकर धीरे-धीरे वेदन व सुन्दरलाल में घनिष्ठता बढ़ती गयी। अब सुन्दरलाल नित्य संध्या समय वेदन के यहाँ जम जाते। वेदन भी घूम-फिर कर सुन्दरलाल के समय से घर पहुँच जाता। प्रमदा कभी-कभी सोचती—चलो सुन्दरलाल जी के आने से एक लाभ तो हुआ कि प्रोफेसर साहब समय से घर आने लगे।

सुन्दरलाल की इतनी भेंटों के अनन्तर एक दिन उन्होंने वेदन को अपने यहाँ भोजन पर निमन्त्रित किया।

वेदन उस दिन उनके यहाँ भोजन करने गया और तब अगले दिन से सुन्दरलाल के वेदन के यहाँ आने के स्थान पर वेदन सुन्दरलाल के यहाँ जाने लगा। वह अब नित्य वहीं पहुँचता और उनके घर कई-कई घंटे बैठता।

इधर वेदन ने सुन्दरलाल को अत्यधिक प्रोत्साहित किया तथा अपने सभी मित्रों के बीमे प्रयत्न करके उसे दिलवाये। बीमा-एजेन्ट को क्या चाहिये? बीमा। और वह हो गया वेदन का दासानुदास।

इतने पर भी सुन्दरलाल की बड़बड़ाहट कम न हुयी। अनेक लोग उनसे सहानुभूति रखते थे। कुछ अनेक बार यह भी कहते थे—"बदमाश है, बड़बड़ाहट का नाम लेकर काम चमकाता है। इसी बहाने सहानुभूति में लोग बीमा दे देते हैं।"

मालवीय इधर एक प्रकार से संसार से विरक्त हो गया था। उसका हँसना-बोलना बन्द हो गया। उसने कहीं जाना-आना बन्द कर दिया। वेदन ही उसका निकटतम मित्र था। प्रमदा से मतभेद के अनन्तर वह मालवीय की ओर से भी उदासीन हो गया। जब वह दूर हो गया तो मालवीय दुनिया से और अधिक खिंचता गया। कालेज में दूसरे-चौथे नमस्ते होकर व्यवहार-पूर्ति हो जाती थी।

इधर सुन्दरलाल से सम्पर्क हो जाने पर वेदन केवल सुन्दरलाल में केन्द्रित हो गया। वेदन क्या करता है—इसकी किंचित भी चिन्ता प्रमदा को तो थी नहीं। हाँ, कभी-कभी वेदन की मित्र-मण्डली में चर्चा हो जाती थी। "इस प्रोफेसर ने भी क्या सनकी साथी ढूँढा है।"

तब वेदन उत्तर देता—"सनकी ही सही। किन्तु है सच्चा और ईमानदार।"

"अब तुम भी सनकी हुये।"

"यह तो पहले ही से है।" कहते हुये मित्र ठहाका मारकर हँस पड़ते।

इस प्रकार वेदन का जीवन-क्रम किसी सन्तोष की खोज में सुन्दरलाल बीमा-एजेन्ट सदृश अर्ध-विक्षिप्त व्यक्ति पर आश्रित हो गया। वेदन व सुन्दरलाल की मैत्री सर्वत्र एक चर्चा का विषय बन गयी।

अब इधर, वस्तुतः, न प्रमदा के हृदय से मालवीय का न मालवीय के हृदय से प्रमदा का ध्यान हटता था किन्तु दोनों ही दूर थे, एक दूसरे से बहुत दूर। आगरा लौटने के अनन्तर इधर लगभग तीन सप्ताह हो रहे थे; किसी ने एक दूसरे को देखा तक नहीं। छटपटाहट थी किन्तु प्रमदा में एक ग्लानी, एक घृणा, एक रोष सहित और मालवीय में एक दुःख, एक विश्वास, एक दृढ़ता के साथ।

इधर जब से मधुर की मृत्यु हुई थी तब से उसने एक और धारणा मन में बना ली थी। वह सोचता था देहली में किन्हीं विशेष स्थितियों में पड़कर उसने कुछ पाप कर डाला है। उसने शराब पी। उसने वेश्या से सम्बन्ध किया। वह मित्र-पत्नी की ओर अग्रसर हुआ। यही कारण है कि

उसे इस प्रकार दैविक-आपदाओं का सामना करना पड़ा है।

अनेक प्रसंगों पर इस प्रकार के विचार मनुष्य में आना बड़ा स्वाभाविक हो जाता है। भले ही उनमें भावना श्मशान-वैराग्य सी ही हो। सम्भव है उसमें आन्तरिक सत्यता ही भरी पड़ी हो किन्तु उसके स्थायित्व अथवा उसके अनस्थायित्व में विवशता, समय व परिस्थितियों की बन पड़ी है।

प्रमदा मालवीय से दूर दिख रही थी किन्तु उसके रूप व यौवन के जो चिर-अतृप्त दर्शन वह कर चुका था उसमें वह दिन-रात घुल रहा था। जहाँ तक वह अपने को खींच लाया था आगे अवसर आने पर वह अपने को रोक नहीं सकता था। यही कारण है कि वह प्रयत्न करके प्रमदा से कोसों दूर रहना चाहता था। अन्यथा ऐसी कोई विवशता नहीं थी। परस्पर ऐसी कोई कटुता, कुण्ठा अथवा अनाचार की भावना भी नहीं थी कि वह उससे मिलता ही नहीं।

और उस रात्रि क्या हुआ? वह मानव प्रकृति की पुकार थी। वह अतृप्ति की चीत्कार थी। यह हृदय की मान्यता का तोष था जो प्रमदा बावली हो रही थी। जो मालवीय अन्धा हो गया था। उसे कहीं टकराना था। उसने एक स्थान पर अपने संयम की चरम सीमा प्राप्त कर दूसरी ओर अपने आप को एक नर्क कुण्ड में ढकेल दिया। उसने अपने को नहीं, प्रमदा को बचाया। उसके साथ उपकार किया।

किन्तु प्रमदा स्वयं से मान कर बच जाती तो मालवीय पर इतना आवेशपूर्ण न हो जाती। उसने माना कि मालवीय मूर्ख है। उसने निष्कर्ष निकाला कि मालवीय खोखला है। नारी का अहंकार जागा कि उसकी मांग पर बलि क्यों न हुयी? कोई उस हुंकार पर स्वीकारोक्ति क्यों न दे पाया?

किन्तु बात बीत चुकी थी।

अब, दोनों ओर लालसा बढ़ रही थी। मालवीय अपने से दृढ़ था किन्तु प्रमदा अवसर की खोज में थी कि वह मालवीय को देखे, उससे मिले। वह उसका अहं था जो पल-पल रोक रहा था, वैसे वह क्षण-क्षण हिल रही थी।

वेदन कहीं दूसरी दुनिया की ओर भागा चला जा रहा था।

१५

वेदन एक दिन कालेज से आकर कपड़े उतार रहा था कि बाहर से आवाज़ आई—"प्रोफेसर साहब हैं?"

"कौन साहब?" वेदन ने ऊपर से पुकारा।

"इधर देखिये......!"

"ओह, मिस्टर जैन! आइये आइये!! इधर ज़ीने से चले आइये।"

तत्काल ही मिस्टर जैन ने ऊपर आकर वेदन से हाथ मिलाया।

"कहिये, कब आना हुआ?" वेदन ने प्रश्न किया।

"मैं आज ही सुबह आया हूँ।"

"कैसे आना हुआ?"

"वही डाकू-काण्ड। मुझे कल इलाहबाद में तार मिला था। कुछ आदमी कल यहाँ पकड़े गये हैं जो किनारी बाजार में एक सर्राफ के यहाँ ज़ेवर बेच रहे थे। उनमें जैसी मुझे सूचना मिली है, उस परिवार का ज़ेवर भी है जो उस दिन मेरे साथ लुटा था......।"

"उस डकैती का पता लग गया? कमाल हुआ साहब!" वेदन ने विस्मय सहित पूछा।

"जी हाँ, मेरे साथ इलाहबाद के खुफिया विभाग के एक उच्च कर्मचारी भी आये हैं जो इस काण्ड में मेरे कारण विशेष दिलचस्पी ले रहे हैं। उन्होंने प्रयत्न करके इस घटना में सब ओर के लोगों को सचेष्ट

किया । उन्हीं के कारण इस डकैती का इतनी तत्परता से पता भी चल गया।"

"यह तो बड़ा अच्छा हुआ, किन्तु मिस्टर जैन! आपका तो कोई सामान था नहीं?"

"जी नहीं। किन्तु इस दुष्कर्म का पूरा पता लगे, इसके लिये तो मैं अत्यधिक प्रयत्नशील था।...... यह सही है कि जो लोग पकड़े गये हैं वे ठीक हैं। उनमें से जो एक व्यक्ति ग्रामीण-वेश पहने था उसे तो मैंने आज जेल में पहचाना भी है। आपको ध्यान होगा—जब वे बदमाश टार्च जलाते थे तो उनकी शक्लें भी झलक जाती थीं।"

"यदि आप इसके लिये इतने कटिबद्ध हैं तो आपको अवश्य सफलता मिलेगी...... प्रमदा! मिस्टर जैन को चाय तो पिलाओ।"

"तैयार है।" प्रमदा ने तत्काल उत्तर दिया।

वेदन के फ्लैट में ज़ीने के बराबर एक दरवाज़ा था जो अन्दर एक छोटे से आँगन में खुलता था। आँगन के पीछे एक कमरा था तथा इस कमरे के दाहिनी ओर दो छोटे-छोटे कमरे! इन छोटे कमरों के निकट आगे आँगन की ओर टिन-शेड पड़ा हुआ था जो रसोई बनाने के काम में आता था। इस समय प्रमदा यहीं अँगीठी के निकट बैठी थी। वेदन व मिस्टर जैन कमरे के आगे आँगन में पड़ी दो बेंत की कुर्सियों पर बैठे थे।

"आइये, अन्दर चलिये।" कहते हुये वेदन मिस्टर जैन को कमरे के अन्दर लिवा ले गया और वहाँ उन्हें बैठाल कर स्वयं चाय की ट्रे लाने चला गया। वस्तुतः वेदन ने कोई नौकर नहीं रख छोड़ा था; अतः सब काम स्वयं कर लेने में उसे हिचक नहीं होती थी और प्रमदा कभी किसी नौकर की माँग न करे—इसीलिये उपदेश रूप में कभी-कभी सुना भी देता था—"अपना सब काम अपने हाथ से करना चाहिये।"

कुछ ऐसी गड़बड़ी थी कि आवश्यकता की तीन दिनों की अनिवार्य छुट्टी भी प्रमदा को नहीं लेनी पड़ती थी, अतः वह तीसों दिन घर के काम-

धन्धे व भोजन में लगी रहती थी। उसके मायके में बुढ़िया माँ थी केवल। अतः वह मायके भी कभी नहीं जाती थी। जब कभी उसका ममत्व जागता था तो वह माँ को अपने पास ही बुला लेती थी जिसे उसका चचेरा भाई छोड़ जाता था।

जब कभी चचेरा भाई माँ को छोड़ने आता था; वह दो-तीन दिन रुक कर ही लौटता था। वह नयी अवस्था का छरहरा जवान था। देखने में सुघर-सलोना और जैसे उसकी बातचीत में तो बतासे घुले रहते थे। अवस्था उसकी होगी लगभग तेईस वर्ष की। इन्टर करके उसने पढ़ना छोड़ दिया था और अपने पिता की एक छोटी-सी किराने-बिसातखाने की दूकान की देखभाल किया करता था।

अस्तु, जब कभी प्रमदा का भाई चिन्तामणि आगरे आता था तब उसके जाने के पश्चात् दो दिन तक तर्क-वितर्क पूर्ण वातावरण बना रहता था। प्रमदा कहती—"इस बेचारे को यहीं किसी काम में लगा लीजिये।"

वेदन गुर्राता—"ऐसे उल्लू-उद्दण्ड आदमी को कौन काम देगा जो दिन भर हँसता ही हँसता है।"

इस पर प्रमदा व वेदन में वाक्-युद्ध प्रारम्भ हो जाता। इस प्रकार सब मिला कर प्रमदा व वेदन के पारस्परिक सम्बन्धों में कुण्ठायें अधिक और उदार व्यवस्थायें न्यूनतम थी।

मिस्टर जैन के समक्ष चाय की ट्रे लाने में इस समय वेदन को संकोच हो रहा था किन्तु वह विवश था। करता भी क्या? चाह कर भी यह तो कर नहीं सकता था कि प्रमदा को ट्रे लाने का आदेश दे देवे।

अस्तु, ट्रे आई। अन्दर कमरे में पड़े एक छोटे तख्त पर बैठ कर वेदन व मिस्टर जैन ने चाय पी। प्रोफेसर होने के नाते उसमें विचारों की इतनी आधुनिकता होना स्वाभाविक हो सकती थी कि अपने यहाँ आये किसी व्यक्ति या परिचित के साथ बैठ कर चाय पीने की अनुमति वह

प्रमदा को भी देता क्योंकि उस घर में केवल दो ही प्राणी थे वेदन और प्रमदा। कोई बच्चा भी नहीं था कि प्रमदा का मन लगा रहता, अथवा खाने-पीने में वह उसी का साथ देती। अब कुछ विशेप इच्छा नहीं लग रहा था कि दो व्यक्ति अन्दर कमरे में बैठे चाय पी रहे थे और प्रमदा रसोई में एक पटरे पर घुटनों के बीच अपना सर रक्खे किसी ध्यान में लीन थी। एक प्रोफेसर की पत्नी और वह भी बी० ए०—इतनी कामना तो कर ही सकती थी कि कभी भी ऐसे प्रसंगों पर वह भी सहयोग करे। वेदन सदृश व्यवहार-शुष्क व्यक्ति ने उस ओर कभी ध्यान भी नहीं दिया। प्रमदा को यह सब कंचोटता था किन्तु उसने कभी कुछ कहा नहीं।

इस समय वह ध्यान कर रही थी—इसी प्रकार एक दिन वह मालवीय के यहाँ गयी हुयी थी तब उसके यहाँ दो परिचित बैठे चाय पी रहे थे। उनके साथ मधुर भी निःसंकोच चाय में सम्मिलित थी।

"अरे, आइये-आइये भाभी जी।" कह कर मालवीय ने उसे भी मेज़ पर बैठाल लिया।

उन अपरिचितों के समक्ष, पूर्व-परिचित-पति की व्यवस्था का स्मरण कर पहले तो उसने मना किया किन्तु मालवीय के अधिक आग्रह पर वह भी चाय पीने बैठ गयी। तभी घूमते फिरते कहीं से वेदन आ गया उसने भी साथ ही चाय पी किन्तु घर लौट कर उससे बिना कहे न रहा गया—"उन अपरिचितों के साथ ही चाय पीने बैठ गयीं!"

वेदन की ऐसी बातों पर, सदा ही, प्रमदा ऐंठ कर रह जाती थी किन्तु मन की बात कभी बाहर न निकलती थी। इस क्षण उसे वह प्रसंग स्मरण हो आया था। वह तुलना कर रही थी वेदन व मालवीय के रीति-व्यवहारों की।

तभी कमरे से स्वर गूँजा—"अच्छा, अब मैं चलूँगा। मैं कैन्ट में अमुक होटल में ठहरा हूँ। आप कल सुबह की चाय मेरे साथ पीजिये!" कहते हुये मिस्टर जैन कमरे से आँगन में निकल आये और तब आँगन में खड़े-खड़े ही वेदन व वे वार्तालाप करते रहे।

"कल सुबह भाभी जी को भी लाइये।" मिस्टर जैन ने कहा।

"हाँ, इनकी इच्छा की बात है। जा सकती हैं।"

"इसमें हर्ज ही क्या है? आइयेगा भाभी जी!"

प्रमदा सुन रही थी और कान लगाये थी कि वस्तुतः पति देवता रूपी उसका सामाजिक स्वामी उत्तर क्या देता है और तभी वेदन के मुँह के शब्द आँगन में फैल गये—"अब आप अकेले तो हैं नहीं मिस्टर जैन, आपके साथ सी० आई० डी० के सज्जन भी हैं......।"

"तो क्या हुआ? वे बेचारे तो बूढ़े आदमी हैं।"

"प्रश्न बूढ़े-जवान का नहीं है......।" वेदन की बात आधी ही रह गयी।

"तब किसका है......?" चाहती तो प्रमदा जोड़ देती तभी मिस्टर जैन ने अनायास कह डाला, "अच्छा, आप की अनिच्छा है तो जाने दीजिये...... किन्तु हाँ, यह तो बताइये। वे दूसरे प्रोफेसर मालवीय कहाँ हैं? उनसे कब कहाँ भेंट हो सकेगी?"

वेदन ने तत्काल कनखियों से प्रमदा की ओर देखा। वह पटरे पर बैठी अपने पैर के दाहिने अँगूठे से भूमि कुरेद रही थी।

"हैं तो यहीं। बेचारे की पत्नी का देहान्त हो गया तब से बाहर कम निकलता-बैठता है।" वेदन ने बड़ी मार्मिकता भरे शब्दों में कह दिया।

"अरे, कब?"

"देहली से आने के एक सप्ताह के अन्दर ही।"

"तब तो आप उनका पता दीजिये। मैं उनके पास अवश्य जाऊँगा।"

वेदन ने मालवीय के घर का पता मिस्टर जैन को बता दिया। मालवीय का प्रसंग आने पर प्रमदा का मन न जाने कैसा-कैसा होने लगा।

× × ×

दूसरे दिन वेदन मिस्टर जैन से मिलने कैन्ट गया। वहाँ उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने उनके साथ उन वृद्ध सज्जन को

(१४३)

देखा जिनकी पत्नी देहली में प्रतीक्षालय की बालकनी से फाँद गयी थी।

"कहिये!"

"कहिये?"

"आप कैसे?"

"आप कैसे?"

"मेरा तो आगरा घर है।"

"और मैं आगरे के बदमाशों का पता लगाने आया हूँ।"

"धन्यवाद।...... आपकी पत्नी का कुछ पता लगा? वे कैसे...?"

वेदन का वाक्य पूरा हो, तो इसके पूर्व ही बेचारे वृद्ध की आकृति में सफेदी खेल गयी।

"प्रोफेसर साहब, छोड़िये इस प्रसंग को।" मिस्टर जैन ने धीरे से वेदन से कहा।

वेदन ने ध्यान किया उस बात से सचमुच वृद्ध को बहुत कष्ट हुआ है। इसलिये वह चुप हो गया। तभी मिस्टर जैन, उन वृद्ध महाशय तथा वेदन ने साथ-साथ चाय पी। मिस्टर जैन देहली के उस काण्ड को जानते थे और यह भी कि वह घटना उसी दिन हुयी थी जिस दिन उन्होंने इलाहबाद के लिये प्रस्थान किया था। वे भी उसी प्रतीक्षालय में थे और उन्होंने उन वृद्ध महाशय को वहाँ देखा भी था किन्तु उनकी घंटों की माला के कारण वे उनसे बात न कर सके थे।

वेदन व उनका परिचय देखकर इस समय मिस्टर जैन ने यह अनुमान लगा ही लिया कि इन्होंने एक दूसरे को पहले देखा है और सम्भवतः उसी प्रसंग में देखा हो क्योंकि अपने पीछे वह वेदन व मालवीय को प्रतीक्षालय में छोड़ ही आया था। यही कारण था कि मिस्टर जैन ने वेदन व अपने साथी महोदय का न परिचय कराया न ही विशेष वार्तालाप होने दिया। चाय समाप्त करते ही मिस्टर जैन ने कहा—"प्रोफेसर साहब, न हो चलिये। इस समय आपके साथ ही प्रोफेसर मालवीय के यहाँ हो आयें।"

"मुझे कालेज......।"

"तो क्या बात है ? थोड़ी देर ही लगेगी हम लोगों को।"

"चलिये।"

× × ×

व्यवहारिक खेद-प्रदर्शन के अनन्तर कुछ सरस वार्तालाप चलने लगा। इतने दिन बाद मिस्टर जैन के आने पर मालवीय के चेहरे पर पहली बार मुस्कान तैर गयी। वह कुछ आश्वस्त हुआ। इधर उसकी मनः स्थिति बड़ी अस्त-व्यस्त हो रही थी। उसके साथ नन्हे बच्चों का भार लगा हुआ था अन्यथा वह इधर एक मास के जीवन से ऊब चुका था। एक तो प्रमदा के नेत्रों के तेज़ धार वाले नाखून उसे हर समय कँरोचते थे। दूसरे संसार से विरक्ति के उन क्षणों में उसे मधुर बहुत याद आती थी।

"क्या बात है, इधर आप प्रोफेसर वेदन के यहाँ नहीं जाते हैं ?"

मालवीय ने वेदन तब मिस्टर जैन को गौर से देखा और सोचता रहा—जैन ने यह बात क्यों कही ? उसे यह आशा तो न थी कि वेदन ने उसके आगे भी कुछ कहा होगा क्योंकि वेदन कुछ कह सकता है—इतना मसाला उसके पास है और व्यक्ति को अनर्गल बात बनाते देर कितनी लगती है। किन्तु इस बात के उत्तर में मालवीय मौन होगया।

"चलिये, आज आपको इनके यहाँ चलना पड़ेगा।"

"अवश्य। आज शाम का खाना, मिस्टर जैन आप इनके साथ मेरे यहाँ खाइयेगा।......मालवीय ! मिस्टर जैन से समय तय कर लो। इन्हें इनके होटल से साथ लेकर आना।"

मालवीय 'न'...... कहने की सोचते-सोचते न 'न' कह पाया न 'हाँ'।

× × ×

मालवीय ने दिन में अनेक बार सोचा कि वह कालेज में वेदन से मना कर देवे कि वह शाम के खाने पर नहीं आ पावेगा-नहीं आ पावेगा।

उसके बच्चे अकेले रह जायेंगे। उसे कहीं अन्यत्र जाना है। उसे ·····
किन्तु वह वेदन से कुछ भी न कह पाया। वह न चाहते भी चाहता था कि इसी बहाने वह वेदन के यहाँ जाय। किन्तु वह नहीं ही चाहता था और सोचता था कि प्रमदा उसे देखेगी—इतने समय के अन्तर से देखेगी तो न जाने कैसे देखेगी? वह उसे देखेगा तो न जाने कैसे देखेगा। यों वह पलक मूँद कर अपने एकान्त कमरे में—प्रमदा का देहली के होटल वाला वह चित्र हज़ारों बार ही देख चुका था। यों कहा जाये—प्रतिक्षण देखता था।

संध्या होते-होते उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वह वेदन के यहाँ नहीं जावेगा।

मिस्टर जैन सांध्य-भोजन दिन में ही करते थे इसलिये उनकी सब व्यवस्था भी उसी प्रकार की गयी थी। वेदन दिन में ही प्रतीक्षा कर रहा था। मिस्टर जैन भी मालवीय की प्रतीक्षा दिन में ही कर रहे थे। क्योंकि यह निश्चित हो चुका था कि मालवीय उन्हें होटल से लेकर वेदन के घर जायेगा। किन्तु मालवीय आया ही नहीं। संकोच में मिस्टर जैन अपने आप नहीं गये और उनका शाम का भोजन इस खींचतान में रह गया।

दिन छिपने के पश्चात् मालवीय मिस्टर जैन के होटल पहुँचा। उस समय वे कहीं जाने की तैयारी में थे। उनके साथ वे ही सी० आई० डी० वाले वृद्ध महाशय थे—जिन्हें देखते ही मालवीय पहचान गया किन्तु वह बात मालवीय को पहले ही बतायी जा चुकी थी और यह भी कि वह उनसे देहली की घटना के सम्बन्ध में कोई चर्चा न करे। इसलिये मालवीय ने उनसे नमस्कार करने के अनन्तर एक शब्द नहीं कहा।

"माफ कीजियेगा मिस्टर जैन, मुझे कुछ देर हो गयी।" मालवीय ने एक कुर्सी पर बैठते हुये कहा।

"जी हाँ, ये तो शाम से ही आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं और आपकी

प्रतीक्षा में ही आज इनके दिन का खाना रह गया……।" वृद्ध सज्जन ने मालवीय से कहा ।

"ओ…" अनायास मालवीय के मुँह से निकल गया । "मैं भूल ही गया मिस्टर जैन कि आपको रात्रि-भोजन का निषेध है । अब……?"

"आप इतने परेशान मत होइये । ऐसी क्या बात है !" मिस्टर जैन ने कहा ।

"तब वेदन भी दिन से ही प्रतीक्षा कर रहा होगा !" मालवीय ने मिस्टर जैन से प्रश्न किया ।

"सम्भवतः……।"

और प्रमदा भी—वह सोच गया ।

"तब तो बड़ा अनर्थ हुआ मिस्टर जैन……।"

"नहीं, ऐसी बात है किन्तु फिर भी वहाँ चल कर कह तो देना ही चाहिये……चलिये ।"

मालवीय मूक-पशु सा मिस्टर जैन के साथ हो लिया । मिस्टर जैन को नहीं अपितु मिस्टर जैन उसको वेदन के घर लिये जा रहे थे । परिस्थिति ऐसी बन पड़ी कि उस दशा में मना करना उसने उपयुक्त नहीं माना ।

१६

१६०

वेदन ने प्रमदा से यह नहीं बताया था कि मिस्टर जैन के साथ मालवीय भी आ रहा है। सम्भव था यह जान लेने पर कि मालवीय भी आ रहा है या तो प्रमदा संध्या-भोजन के लिये ही मनाकर देती अथवा जो खाना उसने बनाया था, उससे अधिक सुरुचि से वह बनाती। वह संध्या-भोजन को ही मना कर देती इसकी सम्भावना अधिक थी क्योंकि वह उसी प्रकार की अक्खड़ नारी थी। तब वेदन चाहे जितना भींकता उसे यह कहने जाना पड़ता—"मिस्टर जैन आज विवश हूँ। दो-तीन दिन मुझे स्वयं खाने की छुट्टी है। चलिये, बाजार चलें।"

इस प्रकार उसे कई बार बाज़ार जाना पड़ जाता था। किसी ऐंठने पर जब प्रमदा भोजन न बनाती तो वेदन किरकिरा कर रह जाता। वह प्रोफेसर था। इतना जाहिल तो था नहीं कि प्रमदा को पीटने लगता। किंतु वह चुपचाप कपड़े पहनता और बाहर निकल जाता। बाज़ार में भोजन करता और थोड़ा-सा प्रमदा के लिये ले आता। उसमें यह बुद्धि कभी जागती ही न थी कि बाज़ार से वह अपने व प्रमदा दोनों के लिये सामान खरीदे और तब प्यार सहित साथ बैठ कर—घर पर ही खावें। परिणाम यह होता कि वह तो थक कर आ जाता और प्रमदा ऐंठ में तब कुछ खाती ही नहीं और खाने का सामान रक्खा ही रह जाता।

यही नहीं, जब से देहली में, उस रात उसने मालवीय के मुँह से उसके कोठे पर जाने की बात सुन ली थी तब से उसे भी ललक हो रही थी वह भी प्रयोग कर देखे और उसने यथार्थ रूप में वह प्रयोग कर देखा। उसका नया साथी सुन्दरलाल हरफन मौला आदमी था। ऊपर से देखने में वह झाग की तरह बुझता दिखाई दे रहा था किन्तु उसमें राख की कालिमा की और गन्ध विद्यमान थी। सुन्दरलाल ने ही उसे बढ़ावा दिया और वेदन ने बाज़ार की मोल-खरीद प्रारम्भ कर दी। अब तक कई अवसर हो चुके थे। इस रूप में भी वेदन को बाज़ार का ज़ायका मिल गया था। सभी प्रकार से वेदन और प्रमदा के बीच में मतभेद की चीनी-दीवाल अपनी मोटाई-लम्बाई में दृढ़ हो गयी थी।

अस्तु, मिस्टर जैन आये और बड़े कमरे में जाकर बैठे। प्रमदा किसी आवश्यक सामग्री को ढूँढने आँगन से उठकर तत्काल ही छोटे कमरे में गयी हुयी थी; अतः मालवीय भीगी बिल्ली की भाँति आँगन पार करके कमरे में जा बैठा। प्रमदा अपना खाना लिये न जाने कब से बैठी थी। वह प्रतीक्षा में थक रही थी। वेदन भी बारम्बार छज्जे पर झाँक आता था और सोचता था—यह सब हुआ क्या ?

तभी उसने पूछा—"मालवीय ! आखिर हुआ क्या ?"

नाम सुनते ही जैसे प्रमदा के चूल्हे के पास की धरती खसक गयी। उसका पटरा उलट गया। वह आँगन से उछल कर सड़क पर जा गिरी। कमरे की दीवारें बड़े बगीचे की चौहद्दी सी प्रतीत होने लगीं। सामने कटोरदान में रक्खी पूड़ियाँ—तन्दूर की रूखी रोटियाँ दिखने लगीं। सामने आँगन के कोने में लगा पाइप मोटा बम्बा दिखाई देने लगा। सर-चकरा गया। गर्दन घूम गयी और उसने सुना—"मैं क्या बताऊँ। मैं देर से पहुँचा। मुझे ध्यान ही न रहा कि मिस्टर जैन दिन में ही भोजन करते हैं······मुझे बहुत खेद हो रहा है। मैं आता भी नहीं। मिस्टर जैन ने ही कहा—'चलिये कह तो आवें।'"

तो मालवीय के आने का कार्य-क्रम पहले ही से था। तो, यह आया क्यों ? मालवीय क्यों आया, उसके घर—निकम्मा कहीं का—प्रमदा ने सोचा। अब यह यहाँ बैठा क्यों है ? यहाँ से जाता क्यों नहीं ? इसका यहाँ क्या काम है—सोचते हुये प्रमदा के नथुने फूलने लगे।

"तब मिस्टर जैन आज आप भूखे रह गये······आप दूध पीजिये। कुछ मेवे की—मावे की मिठाई खाइये !" वेदन ने कहा।

मिस्टर जैन के रोकते-रोकते वेदन कमीज पहन कर सीढ़ियों से उतर गया। यों, मिस्टर जैन सामने बैठे एक पत्रिका के पन्ने उलट रहे थे। वे तख्त पर बैठे थे तथा मालवीय सामने पड़ी एक आराम कुर्सी पर। वह उन्हें देखता जा रहा था किन्तु बोल नहीं रहा था। उसकी स्वास-गति तीव्रतर हो रही थी। इसके पूर्व कोई अन्य अवसर होता तो वह उछल कर आँगन में जा पहुँचता—"भाभी, यह बात। भाभी, वह बात। भाभी, क्या बात ?"

किन्तु, इस समय उसे वहाँ बैठे न जाने कैसा लग रहा था। प्रमदा भी कुछ वैसा ही सोच रही थी। मिस्टर जैन भी कुछ-कुछ ध्यान कर रहे थे, मालवीय तो बड़ा बोलने वाला व्यक्ति था किन्तु उन्होंने यह सोचकर भी संतोष कर लिया कि पत्नी की मृत्यु के अनन्तर वैसा स्वाभाविक है।

वेदन के फ्लैट से बाज़ार कम से कम दो फर्लांग दूर था। वह बाजार जहाँ ठीक सामान मिल सके। इस समय प्रमदा का मन हो रहा था, वह मालवीय को देख ले। अन्ततः वह अपने आप को न रोक सकी। वह उठी। उसे कोई संकोच तो था नहीं; अतः वह बड़े कमरे में गयी।

उसके कमरे में प्रवेश करते ही मिस्टर जैन तो कह उठे—"आइये-आइये !" और व्यवस्था में तख्त पर सँभल कर बैठ गये। अपने फैले पैर समेट लिये।

मालवीय नीची दृष्टि किये बैठा रहा।

प्रमदा जानबूझ कर मालवीय की कुर्सी के पीछे जा खड़ी हुयी। केवल खड़ी ही नहीं हुयी उसने अपने दोनों हाथों से उस कुर्सी की लकड़ी

पकड़ ली। अब मालवीय की साँस और तीव्र हो गयी। कुछ देर यों ही खड़े रहने के अनन्तर प्रमदा ने न जाने क्या सोचा और तब वह सामने आ गयी और उसी प्रकार की दूसरी आराम कुर्सी पर बैठ गयी। अब मालवीय व प्रमदा आमने-सामने थे। मिस्टर जैन कुछ कहना चाहते थे किन्तु अनायास यों कोई बात ढूँढे नहीं मिल रही थी। कमरे में विचित्र सी नीरवता छायी हुयी थी।

आमने-सामने की दो दीवारों पर दो बत्तियाँ जल रही थीं जिन पर लगे शेड प्रकाश को नीचे ही फेंक रहे थे। मालवीय व प्रमदा भी नीचे भूमि पर ही दृष्टि टेके हुये थे, अतः वह प्रकाश अधिक तीव्र प्रतीत हो रहा था। मालवीय तो निःसंदेह निश्चल बैठा था किन्तु प्रमदा के ओठों तक न जाने क्या-क्या आकर लौट जाता था। वह कहते-कहते रुक गयी— बाहर आँगन में चलो, किनारे के छोटे कमरे में चलो, कल सिनेमा चलो, यहाँ चलो, वहाँ चलो। फिर दिल्ली चलो······वह सब कुछ कह देना चाहती थी किन्तु कुछ नहीं कह पायी। तभी वेदन के सीढ़ियों पर चढ़ने की आहट सुनायी दी।

"मालवीय! कल दोपहर में आना, काम है।" स्वर का झंझा कमरे की दीवारों से टकरा गया और प्रमदा बाहर आँगन में चली गयी। वह चुपचाप, पूर्ववत् पटरे पर आ बैठी। वेदन मिठाई, पान व दूध हाथ में लिये हुये आँगन से होकर सीधे कमरे में चला गया। जैसे आँगन में कोई बैठा ही नहीं था। जैसे वह सामान उसके पास नहीं रखना चाहिये था कि वह उसे प्लेटों में ठीक से लगा देती। कमरे में आकर वेदन ने सब सामान एक छोटी गोल मेज़ पर पटक दिया।

तब कमरे में जाकर वेदन ने पुकारा—"प्रमदा! यह सामग्री 'प्लेटस्' में लगा दो।"

प्रमदा यकावत् बैठी रही। उसने ध्यान किया—कितनी मूर्खता है। यहीं सामने से गये किन्तु यहाँ न दे, जा कर अब वहाँ से पुकार रहे हैं।

प्रमदा की उतनी बात से मालवीय का साहस तो खुलना ही था।

तत्काल ही उसने कुछ सोच लिया। अब उसे अपना व्यवहार बदलना है। अब उसे ऐसा प्रदर्शित करना है कि कहीं कुछ नहीं। है क्या ?

तुरन्त ही मालवीय उठा। उसने छोटी मेज़ का सामान उठाया और बाहर आँगन में बैठी प्रमदा के सामने जाकर रख दिया। प्रमदा के नेत्र ऊपर उठे। मालवीय की दृष्टि सामने आयी और प्रमदा में लिपट गयी। प्रमदा तड़प कर रह गयी। मालवीय कराह कर रह गया।

बेदन भी मालवीय के पीछे-पीछे उठ कर आँगन में आ गया था। अतः प्रमदा की वह दृष्टि—प्रमदा मालवीय का वह नेत्रोन्मीलन, उससे छिपा न रह सका।

वह मन में एक चोट लेकर बिलबिलाता हुआ कमरे में लौट आया। मालवीय अब भी आँगन में था। तभी प्रमदा ने कह डाला—"इतने नाराज़ हो।"

"नाराज़ ? तुम कि मैं ?"

"............।"

"बोलिये !"

"कल किस वक्त......।"

"आ जाऊँगा।"

"जाओ, नहीं तो ऐंठ जायगा......।"

"ऐं......" कहते-कहते मालवीय रुक गया और तत्काल सोच गया— जायेंगे नहीं, जायगा।

तब तक प्रमदा ने नमकीन व मीठा प्लेटों में लगा दिया। मालवीय ने दोनों प्लेटें उठायीं और कमरे में चला गया। सब मिलाकर पाँच प्लेटें थीं, अतः मालवीय को उन्हें लेने के लिये तीन बार आँगन में आना पड़ा। प्रमदा सोच रही थी उसने गलती की। प्लेटें आँगन में नहीं—छोटे कमरे में लगानी चाहियें थीं।

मिस्टर जैन ने थोड़ा सा मीठा खाया और दूध पिया। मालवीय ने छककर जलपान किया। बेदन कुछ खा नहीं पाया। केवल टूँगता ही

रहा और मालवीय को रह-रह कर देखता रहा।

वेदन चाहता था—ये लोग जल्दी चले जावें। उसने अपने को इतना गुम-सुम बना लिया कि मिस्टर जैन व मालवीय ने जलपान के पश्चात् शीघ्र ही वेदन से विदा माँग ली।

× × ×

उस रात वेदन प्रमदा से बिलकुल नहीं बोला। उसने यह भी नहीं पूछा कि प्रमदा ने कुछ खाया-पिया भी है या नहीं और वास्तव में प्रमदा ने कुछ भी खाया-पिया नहीं था किन्तु वह इतनी मगन थी कि बिना इस बात की चिन्ता किये कि वेदन के बातचीत न करने का कारण जाने; वह पलंग पर लेटी और पलकें मूँद कर मालवीय में खो गयी।

इधर वेदन के अन्तराल में भी एक नया चित्र उतरा था जिसे वह सतरंगों में देख-देख कर विक्षुब्ध होता था। उसकी वह विशेषता थी कि उसने अपने जीवन के उस नवीन स्वर्ग-लोक को, बड़े यत्न से, छिपा कर रख छोड़ा था। उसे अब तक कोई न जान पाया था। आज प्रमदा के नेत्रों में मालवीय की तस्वीर देख कर और अपनी तस्वीर खो कर वेदन अपनी उस सतरंगी भावना मूर्ति को, पलंग पर पड़ा-पड़ा—मन मानस में उतारता रहा।

वेदन व प्रमदा पृथक-पृथक अपने आकाशलोक में मूक विचरण कर रहे थे।

मालवीय ने मिस्टर जैन के साथ चाय का कार्यक्रम निर्धारित कर लिया था। वह उनसे विदा लेकर घर गया और प्रमदा के उस निमन्त्रण में खो गया। उसने पास-पास छोटी चारपाइयों पर पड़े बच्चों को एक बार निहारा। सबसे छोटे बच्चे को—जो पुत्र था, उसने चूमा और अपनी चारपाई पर जा लेटा। और तब उसकी कल्पना में भी वही प्रमदा की तस्वीर।

इस मन का भी विचित्र खेल है। अद्‌भुत लीलायें हैं, आश्चर्य-जनक क्रिया कलाप हैं। सोचा जाय तो सब सम है यों सब असम है।

वहीं कुछ प्राकृतिक है—वही अप्राकृतिक भी; वही सामाजिक है वही असामाजिक भी। वही कहीं शोभन है तो अशोभन भी। सब एक ही सा सोचते हैं। सब विपरीत सोचते हैं। सब सहयोग में भी सोचते हैं।

मालवीय भी कुछ सोच रहा था। उसकी विचित्र गति थी। उसका मन कह रहा था कल दोपहर में उसे जाना चाहिये। दोपहर के समय वेदन कालेज में होगा। तब वह जायगा। तब वह चाहता तो कितनी ही बार वैसे जा सकता था, किन्तु वह कभी आज तक वेदन के यहाँ उस समय नहीं गया जब वह घर पर न हो। आज वह वैसी अनुपस्थिति में ही जाने को तत्पर है। आज उसे प्रमदा ने बुलाया है। प्रमदा उसे पहले भी बुला सकती थी किन्तु उसने कभी बुलाया नहीं। तब परिस्थितियों के, मान्यताओं के, मन के वैसे से परिवर्तन में नैतिकता के बाँध टूट गये तो क्या होगा? माँसलता की बाढ़ वह न सँभाल पाया तो क्या होगा? वह सँभाल भी नहीं पावेगा। कोई भी नहीं सँभाल पावेगा। तब—तब व्यक्ति के हित में, समाज के हित में, नीति-रीति के हित में कैसा अनर्थ हो जायगा—कैसा अपघात। किन्तु इस रोक में एक अपघात तो वह कर रहा है—प्रमदा को तो वह पीस रहा है। प्रमदा उद्यत है। प्रमदा को कोई रोक नहीं सकता। उसमें अतृप्ति हुँकार रही है। यह मूर्खता है कि कोई सोचे कि मुझ में महान पुंसत्व विद्यमान है। मैं कामदेव हूँ। मैं तृप्ति हूँ......मैं सब कुछ हूँ। किन्तु वह कुछ नहीं है। तृप्ति क्या है, कहाँ है वह जानता ही नहीं है। तन की तृप्ति में मन के सन्तोष की अनिवार्यता को न जानने न मानने की मूर्खता......अज्ञानता जो करते जाते हैं; वस्तुतः वे पशु-प्राणी हैं, वे व्यक्ति के योग्य नहीं। वे समाज के भी योग्य नहीं।

अस्तु, मालवीय मान रहा था कि वेदन भी कुछ वैसा सा ही जीवधारी पुरुष है जो अधिकार का पोषक है। जो मनस्तोष को अधिकार के पलड़े से दाबना चाहता है। जो अज्ञानता में स्वामित्व की लौह-शृंखला की खनखनाहट का आनन्द लूटना चाहता है।

किन्तु वह लूटेगा कैसे? वह मन से मान ले किन्तु उस दम्भ में वह

अपने आपको ही पीस रहा है। तब नारी की उदार-चेतना कब तक पिसती रहेगी ? तब प्रमदा की ज्वलन को शान्ति चाहिये ? तब प्रमदा की विभी-पिका को तृप्ति चाहिये। वह पाकर रहेगी। वह······वह लेकर रहेगी। यदि वेदन में अधिकार का लौह अंकुश है तो प्रमदा भी मनस्तोष के अधिकार को लौहवत् प्राप्त करेगी ही।

तब—तब प्रमदा के केन्द्र-बिन्दु के अदृश्य होने पर उसका लक्ष्य कुछ तो बनाना ही है—कोई बन कर रहेगा। तब ·····वह जायगा।

किन्तु इससे नैतिकता मिट जायगी। तब तृप्ति की अतृप्ति जो उभरेगी तो विनाश सम्मुख आवेगा। किन्तु कुछ भी हो—जो प्रेरणा है, वर्तमान में उसकी रोक असम्भव है।

मालवीय के मस्तक में पीड़ा होने लगी। उस थकन और अनिश्चियता में वह सो गया।

× × ×

प्रातःकाल उठ कर भी मालवीय सोचता रहा—इस समय न जाने यह जैन कहाँ से आ टपका। इसका आना उचित नहीं हुआ। सोये मन जाग गये।

मिस्टर जैन के साथ मालवीय को सुबह की चाय पीनी थी, अतः वह शीघ्र ही निवृत होकर मिस्टर जैन के होटल की ओर चल दिया।

मिस्टर जैन, उनके साथ वाले वृद्ध महोदय एवं मालवीय होटल से उठ आये और निश्चित करने लगे कि होटल के अतिरिक्त किसी अन्य जलपान गृह में नाश्ता किया जाय।

वे लोग कैंट से ताँगे में राजामण्डी आये। यहाँ वे जलपान-गृह के एक चेम्बर में बैठे थे कि अनायास मालवीय बोला—"यह स्वर वेदन का प्रतीत होता है।"

मिस्टर जैन ने भी पहले ध्यान किया, तदनन्तर स्वीकारोक्ति में सर हिला दिया। किन्तु······इस समय जलपान गृह में ? जबकि उसने आवश्यक कार्य कह कर कल ही मना कर दिया था। और इसके साथ

कोई स्त्री। आवाज़ प्रमदा की तो थी नहीं। प्रमदा यों ही रेस्ट्राँ के नाम से ऐंठ पड़ती है। तब ·····और यह साथ का व्यक्ति।

तभी निकटवर्ती के चेम्बर की बातचीत से यह आभास मिला कि वे लोग जा रहे हैं। मालवीय ने तत्परतापूर्वक अपने चेम्बर के पर्दे घसीट दिये। मालवीय ने आज तक वेदन के सम्बन्ध में न कभी कुछ सुना था न जाना था किन्तु अनायास ही न जाने क्यों उसे संदेह हो रहा था।

उसका संदेह सत्य निकला। निकटवर्ती चेम्बर से जाने वालों में एक वेदन था, दूसरा वही अर्ध-विक्षिप्त सुन्दरलाल तथा तीसरी एक तरुणी।

मालवीय ठिठक कर रह गया। साथ ही उसने दोपहर को प्रमदा के पास जाने का संकल्प और दृढ़ कर लिया।

"हाँ, तो मिस्टर जैन आप क्या कह रहे थे?" प्रसंग बदलते हुये मालवीय ने प्रश्न किया।

"अजी कह क्या रहा था। अपनी परशवता व्यक्त कर रहा था। वह जो मेरा पार्कर था उसे मैं डाकुओं से तो बचा लाया किन्तु एक जानवर ने उसको विनष्ट कर दिया।"

"कैसे?"

"जानवर ने कैसे······? क्या किसी बन्दर ने चाब दिया।"

"अजी वह एक बार बन्दर से भी बच चुका है। जानवर तो बन्दर से कहीं अधिक जानवर होते हैं—खूंख्वार। वह एक वनमानुस था जिसने मेरी उस निधि को······।"

"तो उसका सोच क्या, और ले लीजियेगा।"

"वह तो है ही। लेखनी कहीं नष्ट होती है या रुकती है। किन्तु, कहना पड़ता है ईश्वर ने मनुष्य के लिये अभिशाप-रूप कुछ जानवरों की भी सृष्टि की है। मैं पूछता हूँ क्यों की है? और यदि की है तो उन्हें समुद्री घोड़े के साथ रक्खे, व्हेल मछली के साथ रक्खे, जंगल में रक्खे। मनुष्य-समाज के बीच ऐसे जानवरों का क्या काम?"

"बन्दर तो पकड़ कर अमेरिका भेजे जा रहे हैं।"

"ये बनमानुस पकड़ कर कहीं नहीं भेजे जा रहे। यदि मेरा वश चलेगा, वह कभी मिल भर जायगा तो साले को गोली मार दूँगा, साले की गर्दन अपने सामने उतरवा दूँगा······।"

"वाह मिस्टर जैन—आप और यह हिंसा-भावना! छोड़िये भी। आप भी क्या बनमानुस की बात लेकर बैठ गये। अजी आदमियों की बात कीजिये, आदमियों की······!" मालवीय ने मिस्टर जैन के उग्र रूप को शान्त किया।

"हाँ, तो यह मिस्टर वेदन का क्या मामला है?" किंचित उत्सुकता में मिस्टर जैन ने पूछा।

"मुझे पता नहीं। मैं ही पहली बार देख रहा हूँ।"

"आपके मित्र हैं। मित्र का कर्तव्य है मित्र को सुमार्ग पर लगाना।"

"पहले पता तो लगायें कि मामला क्या है?"

"अवश्य। इन कार्यों में हमारे ये सी० आई० डी० मित्र बड़े काम के हैं······।"

मालवीय ने सोचा—कह दे कि ये वेकार हैं; किन्तु वह बोला नहीं।

"मैं आपकी बात समझ रहा हूँ, प्रोफेसर मालवीय! व्यक्ति कभी-कभी दूसरों के काम अधिक सुन्दरता से सम्पन्न करता है।"

"यह ठीक है।"

१७

नैतिकता की कसौटी पर मालवीय ने अपने को बारम्बार घिसा, रगड़ा, कसा। मस्तिष्क केवल एक बात में उलझा रहा—प्रमदा ने बुलाया है। कालेज में पढ़ाने में मन नहीं लगा। स्टाफ-रूम में बैठकर वह केवल एक ही चित्र खींचता रहा—एक शरीर से दूसरे का भिंचन। एक ही कल्पना करता रहा—मन से मन का मिलन······

और समाज बना ही इसलिये है कि अनैतिक शब्द का प्रयोग हो, वह चिल्लावे तब नियम की पुकार पर पुकार करता जाय किन्तु कर कुछ न सके। यह रीति जन्म-जन्मान्तर की है।

और फिर. व्यक्ति जो सोचे वही इस जगतीतल में होता जाय तो संसार मिट जाय—बन भी जाय। तब अन्त में मालवीय के मन का भी वही सन्तोष था--जो हो, होने दो। घटनाचक्र में डाल दो अपनी निरीह नौका को। वस्तुतः उसके जीवन में भी अब शेष क्या है? वह दूसरे विवाह के लिये अब बैंड नहीं बजवा सकता। इन बच्चों को किन्हीं कर्कश हाथों में नहीं सौंप सकता। तन की चाह वह मिटायेगा जहाँ तक मिटा सकेगा, किन्तु मन—वह तो निर्विकार है। उसको तो पुजने दो। उससे तो पूजने दो।

जाड़े की धूप थी। लगभग एक बजे मालवीय ने स्टाफ-रूम छोड़ दिया। उसने प्रिंसिपिल से तीन घंटे की छुट्टी ले ली। उसने चलते-

चलते यह भी ज्ञात कर लिया कि वेदन के तीनों घंटे लगे हुये हैं।

वह झपट कर प्रमदा की ओर बढ़ा।

प्रमदा, प्रतीक्षा में बेसुध बड़े कमरे में पड़े तखत पर औंधी लेटी हुयी थी। पैर के अंगूठे से लेकर फैले हाथों की बीच की उँगली की नोक तक तखत पर वह सीधी हो रही थी। सर उसका बायें गाल पर टिका हुआ था। उसने पलक मूँद रक्खे थे। सफेद इकलायी, पैरों को घुटने तक मोड़ कर फिर पटकने के कारण सरक कर घुटनों के पास आ गयी थी। पैरों का भरापन, उनका चिकना गोरापन, माँसल पिंडलियाँ नग्न चेतना का आह्वान कर रही थीं। वक्ष के उन माँसल गोलार्धों से तखत पर बिछी चादर दब रही थी और उसमें गोल चुन्नट सी बन रही थी। तभी पैरों की आहट का आभास पाकर उसने अपने नेत्र खोले। उस तखत से आँगन तक का प्रवेश-द्वार स्पष्ट दिखायी देता था।

सामने द्वार पर मालवीय की झलक देख कर उसने पुनः पलक मूँद लिये। मालवीय कमरे में चला आया। आज मालवीय की युवावस्था में बालपन भर आया था। वह भी, अपने मादक नेत्र उछाल कर, उस नारी-रूप को निहार कर, हठात्, चंचल हो रहा था। सामने आने के दूसरे ही क्षण, प्रमदा को उस प्रकार लेटे देखकर मालवीय की रक्त वाहिनी शिरायें उद्विग्न हो उठीं। उसमें उत्तेजना भरती चली गयी। उसके समक्ष एक लावण्यमयी नारी का सम्पूर्ण समर्पण नर्तन कर रहा था। वह कमरे से लौटा। प्रमदा ने पुनः पलक खोले। उसने समझा मालवीय लौट गया।

किन्तु मालवीय ने प्रवेश द्वार की कुंडी चढ़ाई थी।

मालवीय इस समय समूचे तर्क-वितर्क, सारी झिझक, सारी लाज बाहर सड़क पर पटक कर ज़ीने पर चढ़ा था। कुंडी बन्द कर आने के अनन्तर वह कुर्सी पर न बैठकर प्रमदा से सटकर तखत पर बैठ गया। ज्यों नींद से जागने का सा अभिनय करती हुयी प्रमदा सीधी होकर लेट गयी।

मालवीय उत्पीड़न में बावला हो रहा था।

"तो तुम आ गये······।"

" ·········।"

"मालवीय।"

"···हाँ···।"

"प्रमदा।"

"हाँ।"

"बोलो······।"

और प्रमदा ने अपनी भुजायें सामने पसार दीं। बाहों के उन दो कूलों के बीच मालवीय जकड़ा हुआ था। तब मालवीय ने प्रमदा को उठा कर बैठा दिया और तब उस जकड़न में उसके ओठ अनेक बार लौटें, फिर पड़े, फिर लौटे।

मालवीय व प्रमदा देर तक उस स्थिति में तख़त पर गेंद बने झूलते रहे। तभी मालवीय उठा और उसने कमरे के सब द्वार बन्द कर दिये।

प्रमदा अथाह तृप्ति में साँस खींच कर पड़ रही।

× × ×

यही प्रारम्भ था जो अन्त तक पहुँच गया। यही तृप्ति थी जो अतृप्ति की भावी कामनाओं में पिस गयी। रति की समस्त लीलाओं को समाप्त कर प्रमदा व मालवीय कुछ पल यों ही बन्धनों में कसे, मौन शान्त पड़े रहे।

अनायास द्वार खटका। मन-प्राण काँप गये। किन्तु प्रमदा घबड़ाई नहीं। बहुत शान्त भाव से उसने मालवीय को उसके समस्त सरंजाम को ठीक करते हुये बड़े कमरे से छोटे कमरे को जाने वाले द्वार की ओर निर्दिष्ट कर दिया। वह द्वार प्रमदा ने पहले से ही खुला रक्खा था। संकेत से उसने अन्दर की कुण्डी बन्द कर लेने को कहा। वह छोटा कमरा भंडार था जिसका ताला उस दूसरे छोटे कमरे में खुलने वाले द्वार पर बन्द हो रहा था।

एक बार को धरती काँप गयी। वेदन के द्वार खोलते ही प्रमदा की साँस फूल गयी। वेदन निश्चिन्त भाव से अन्दर आया। आते ही उसने एक गिलास जल माँगा और बोला—"मैं इसी ट्रेन से ग्वालियर जा रहा हूँ। परसों लौटूँगा। मेरी अटैची में दो कमीज, दो पेन्ट, एक तौलिया, साबुन-ब्रुश इत्यादि जल्दी से रख दो।"

प्रमदा ने हवा में वेदन की तैयारी कर दी।

"तुम्हारे पास कुछ रुपये हैं?" वेदन ने प्रश्न किया।

"कितने?"

"यही सौ।"

"होंगे।"

"निकाल दो।"

रुपये उसी भंडार वाले छोटे कमरे में रक्खे ट्रंक में थे। प्रमदा घबड़ाई—ऐसा न हो रुपये निकालते-निकालते वेदन कमरे में पहुँच जाय। वहाँ, तब मालवीय के छिपाव का कोई स्थान भी न था। किन्तु साहस कर प्रमदा कमरे में गयी और मालवीय के अनेक चुम्बनों के बीच उसने शीघ्र ही सौ रुपये निकाले, उस कमरे का ताला बन्द किया, और रुपये वेदन के हाथ में रख दिये।

वेदन तत्काल चला गया। प्रमदा ने बाहर की कुंडी फिर लगा ली।

मालवीय भी बाहर आया और आते ही बोला—"मैं अभी आता हूँ।"

"क्यों?"

"वेदन को देखने जा रहा हूँ।"

"क्या बात है?"

"लौट कर बताऊँगा।" कहते हुये मालवीय चला गया।

१८

● ● ●

"ऐ ! ताँगे वाले, यहाँ शहर में जो सबसे बढ़िया होटल हो वहाँ ले चलो।"

"जी, अच्छा। बहुत बढ़िया हुजूर—बहुत बढ़िया; वहाँ पहले कभी अंगरेज़ ठहरा करते थे हुजूर।"

"ठीक है। वहीं ले चलो।"

"जी हाँ, हुजूर। अब क्या रखा है। पहले महाराजा का वक्त था जब रियासत में अंगरेज आया करते थे। तब इस होटल के ठाठ देखते आप ! अब तो, महाराजा के ठाठ खुद ही ढीले हैं। गान्धी बाबा ने सब मिल्कियत रियासत छीन ली। सुनते हैं हुजूर, अब महाराजा के पास कुछ नहीं रह गया, सरकार······।"

ताँगे वाला अपना राग अलापता जा रहा था किन्तु ताँगे में बैठी सवारी उसका ध्यान नहीं कर रही थी।

ताँगे में एक लड़की बैठी थी जिसकी अवस्था सतरह-अट्ठारह साल की होगी। लड़की गहरे तरबूजी रंग की क्रेप की साड़ी पहने थी और उससे कुछ हल्के रंग का लेडी-मिल्टन कपड़े का बहुत कसा ब्लाउज़ जिसकी बाहों का कपड़ा जहाँ समाप्त होता था उसके आगे की माँस की भरन ऊपर उठ रही थी। उसी प्रकार आधे खुले पेट के बाद साड़ी बाँधी गई थी। लड़की का रंग साफ गेहुँआ था और यों उसके चेहरे की बनत

बड़ी लुभावनी थी। एक विचित्र सी शोखी को, उसकी आँखें झलका देती थीं। ताँगे में वह अपने साथ के व्यक्ति के साथ बहुत सटी बैठी थी और दूर से देखने से प्रतीत होता था कि या तो पुरुष उस लड़की को गोद में बैठाले है या वह लड़की स्वयं पुरुष की गोद में सिमटती चली जा रही है।

ताँगा यों तो शहर की सड़क पर दौड़ लगा रहा था किन्तु इस समय जिस स्थान पर था वह एक प्रकार से एकान्तिक था और शहर का बाहिरी हिस्सा दिखाई देता था। लड़की के साथ जो पुरुष था वह आयु में लड़की से कम से कम दस वर्ष अधिक प्रतीत हो रहा था और उसके सर के झूमने के ढंग से ऐसा लग रहा था जैसे कोई नशा किये हो।

ताँगे वाला जब अपनी बहुत सी बात उगल चुका तो अपने आप उसकी बातो का पिटारा रिक्त होता दिखाई दिया। तभी उसने अपने घोड़े को कस कर एक चाबुक मारी। घोड़ा भागने लगा। तभी ताँगे वाले की दृष्टि जो घूमी तो उसने साधारण शीघ्रता से अधिक शीघ्रता में अपनी दृष्टि को घुमा लिया। लगा जैसे अपनी उस उम्र में वह उस दृश्य की धमक सहन न कर सका। सामने उस समय दोनों ओर के ओठ जुड़े हुये थे जिन्हें यह संकोच न था कि ताँगे वाला भी ताँगे में बैठा है।

आवेश में ताँगे वाले ने घोड़े के एक चाबुक और घसीट दी। ताँगा दौड़ते-दौड़ते पक्की से कच्ची में उतरते-उतरते बच गया। तभी हड़बड़ाहट में ताँगे में बैठे पुरुष महाशय कह गये—"ऐ। क्या करते हो?"

ताँगे वाले का जी चाहा कि वह भी कह दे—"ऐ! क्या करते हो?"

किन्तु उसका साहस ग्यारह आने पैसों में बिका हुआ था। उसमें पैसा देने की धमक नहीं पैसा पाने का भय जो व्याप्त था। तब ताँगे वाला आगे कुछ बोला नहीं। वह चुपचाप ताँगा दौड़ाता रहा। बहुत देर में, कई सड़कें इधर-उधर घुमाने के बाद वह एक भव्य होटल के सामने आ खड़ा हुआ। ऊपरी दिखावे में होटल राजमहल का एक टुकड़ा सा दिखाई देता था। ताँगा पोर्टिको से थोड़ा हटकर खड़ा हो गया क्योंकि पोर्टिको में

आगे पीछे दो मोटरें खड़ी थीं।

अस्तु होटल के दो बैरे ताँगे के निकट बढ़ आये और ताँगे का संक्षिप्त सामान—दो चमड़े की अटैचियाँ और एक दरी में खुला लिपटा, सम्भवतः एक तकिये सहित बिस्तर लेकर बैरे कमरों की ओर चल दिये।

लड़की अपने साथी के संकेत पर बैरों के साथ चल दी और साथी रुपये का नोट देकर पाँच आने लौटाने के हेतु दो मिनट खड़ा रह गया। ये महाशय अन्य नहीं—प्रोफेसर वेदन थे।

तत्काल ही पैसे देकर जब प्रोफेसर वेदन कमरे में पहुँचे तो उन्होंने देखा दरी पर चादर बिछायी जा रही है, और तकिया सरहाने रख दिया गया है। तभी वह बोला—"क्यों जब इन पलंगों पर गद्दे-चादरें बिछे हैं तब दरी न बिछवातीं।

एक कुर्सी का हत्था पकड़े खड़ी लड़की कुछ बोली नहीं। केवल मुस्करा दी।

एक बैरा ने एक बोतल व दो खाली गिलास लेकर कमरे में प्रवेश किया और निकट आकर लड़की को 'रेफ्रीजेटर' का ठंडा पानी गिलास में डाल कर देने लगा। दूसरा गिलास भर कर उसने साहब की ओर बढ़ा दिया।

तुरन्त दोनों बैरों ने कमरा खाली कर दिया। तब प्रोफेसर वेदन अपनी अटैची की ओर बढ़े और उसमें से उन्होंने अपने लिये एक पाजामा निकाला। लड़की तब तक ऐसे झिझकी खड़ी रही जैसे बलपूर्वक कहीं से पकड़कर लायी गयी हो तभी कमरे में स्वर गूँजा—"साड़ी बदलो न!"

"हाँ" कहते हुये लड़की पुनः मुस्करा दी और कमरे से संलग्न बाथरूम में घुस गयी। बाथरूम भी कमरे की ही भाँति भव्यता व्यक्त कर रहा था। पूरे बाथरूम में चीनी के टाइल लगे थे। दीवाल में दाहिनी ओर बहुत बड़ा शीशा था और उसके आगे निकिल का हैंगर। इसके ठीक नीचे हाथ धोने का बेसिन लगा था। हैंगर पर एक छोटा तौलिया

तथा वेसिन में बायीं ओर लाइफब्वाय साबुन का एक घिसा टुकड़ा रक्खा था।

बाथरूम दो भागों में बँटा हुआ था। पीछे के भाग में फ्लश लगा हुआ था। लड़की जब बाथरूम से लौटी तो उसने देखा प्रोफेसर साहब पलंग पर लेट चुके हैं। बाहर के द्वार की सटकनी चढ़ा दी गयी है और वे अपनी दोनों बाहें फैलाये हुये हैं।

"आओ!"

और लड़की उसी प्रकार प्रोफेसर की बाहों में कूद गयी।

"देखिये! वह सुन्दरलाल ऐसे कब तक स्टेशन पर टहलता रहेगा?" लड़की ने अपनी भिंची साँस को प्रयत्न कर बाहर निकालते हुये कहा।

"जब तक हम न लौटें।"

तब उसे साथ क्यों लाये?"

"वहाँ छोड़ आने में खतरा था……।"

"क्या?"

"उस पर मैं बहुत अधिक विश्वास नहीं करता हूँ……।"

प्रोफेसर की सतर्कता तथा दूरदर्शिता पर लड़की मुस्करा दी और उसी समय प्रोफेसर ने उसे अपनी बाहों से भींचना कसना प्रारम्भ कर दिया।

लड़की की साँस खिंचती जा रही थी किन्तु उसकी नस-नस में वासना की जलन भरती जा रही थी। वह जीवन में प्रथम बार इस प्रकार किसी पुरुष के इतने निकट सम्पर्क में लायी गयी थी। ऐसा नहीं था; लायी क्यों गयी थी? आयी थी, क्योंकि उसमें वह सब कुछ जानने की उमंग इधर अनेक प्रकार से भर रही थी कि आखिर परमात्मा ने उसे किस कार्य के हेतु गढ़ा है और वह लड़की क्यों कही जाती है।

प्रोफेसर वेदन से उसका सम्पर्क इधर एक-डेढ़ दो सप्ताह से अधिक का नहीं था। सुन्दरलाल उसके पिता के यहाँ बीमे के सिलसिले में आता जाता था। उसीने किसी प्रकार रीता का परिचय प्रोफेसर से करा दिया।

रीता जिस प्रकार की चंचल व शोख लड़की थी उस रूप में वह प्रोफेसर से अपनी शिक्षा के सम्बन्ध में प्रारम्भ में प्रश्नोत्तर करती रहती थी। उसके पिता ने भी समझा कि प्रोफेसर से उनकी पुत्री को अच्छा लाभ प्राप्त होगा और उसके लिये वे बहुत बार प्रोफेसर वेदन साथ ही सुन्दरलाल को उनकी भेंट कराने के लिये धन्यवाद दिया करते थे। किन्तु, आज इन भले कपड़ों में कितने पाजी और धूर्त लिपटे हुये हैं; यह रीता के पिता नहीं जानते थे। यही नहीं आज चौदह-सोलह की अवस्था पार कर घर की लड़कियाँ किस हवा में उड़ती हैं—यह माँ बाप जानते हुये भी जानने की चेष्टा नहीं करते हैं। और लड़कियाँ भी क्या करें ? उनमें जब यौवन-रस फूटता है। उनमें जब कामदेव का उन्माद घिर आता है। आयु पाकर उनमें जब सिहरन की उत्तेजना आग सी धधकती है तो उन्हें कहीं बरफ सी शान्ति मिलनी ही चाहिये। उनकी नसों में दौड़ता हुआ रक्त यथास्थान लौटना ही चाहिये। और जब उनकी कोई साथ की समवयस्का लौटकर आती है—किसी पहाड़ी नगर से 'हनीमून' मना कर। तो वे सुन-सुन कर चाहती हैं उसी की भाँति कहीं दूर जाना। वैसे ही किसी एकान्त कमरे में डूब जाना। और आज के समाज की वह अर्थ व्यवस्था जिसमें पुत्री के पिता को होने वाली कठिनाईयाँ। एक युग था जब विवाह की माँग बेपढ़े लिखे अथवा अधिक पैसे वाले मूर्ख किया करते थे किन्तु आज शिक्षा में हुये अधिक व्यय को पुनः प्राप्त करने का एक ही माध्यम जो है—विवाह।

किन्तु रीता के साथ ये सब पारिवारिक कारण कुछ नहीं थे। वस्तुतः उसका जिन लड़कियों का संग-साथ था वे समय से और आगे भाग रही थीं। उन्होंने अपने में ऐसे दुर्गुण भर लिये थे कि उनको छू लेने मात्र से वातावरण कलुषमय दुर्गन्धिमय हो जाता था। उसी के अनुसार वे सब मिलकर अथवा पृथक-पृथक जो मौन-आकर्षण रीता में भर रही थीं अथवा भर चुकी थीं उस आधार पर रीता को अब कहीं शान्ति नहीं थी। वह किसी भी प्रकार पुरुष की छाया में सिमट जाना चाहती थी। उस

सब में सुन्दरलाल ने सहयोग दिया। उसने अपने एक-दो 'क्लाइन्टों' को बीमानुरागियों को रीता का सुनहला रंग दिखा दिया था। रीता ने भी पुरुष का वह पुरुषत्व प्राप्त कर लिया था। अब वह निर्बन्ध—स्वच्छन्द थी। वह सुन्दरलाल के सहगमन में धीरे-धीरे सोसाइटी-गर्ल बन चुकी थी।

तभी प्रोफेसर वेदन की झलक से रीता अधिक कुलबुला रही थी। प्रोफेसर वेदन भी रीता के मादक नेत्रों में आकंठ डूब जाना चाहते थे।

और वे चल दिये।

इधर वेदन भी प्रमदा से भाग रहा था। वह उससे ऊब कर भाग खड़ा हुआ। उसका मन हार रहा था। किसी दूसरे आश्रय में वह जीतना चाहता था। उसका मन कहीं जीत जाय इसी उधेड़-बुन में वह रीता को लेकर चला तो आगरे से दूर हो लिया।

ग्वालियर स्टेशन पर उसने सुन्दरलाल को संकेत किया—तुम फर्स्ट क्लास वेटिंग रूम में रुको। मैं होटल ठीक करके तुम्हें ले जाऊँगा।"

परम दीन सुन्दरलाल ग्वालियर स्टेशन की पटरियाँ गिनता रहा और प्रोफेसर वेदन रीता के साथ उसके गेसुओं में झूम गया। तब उसने रीता के यौवन के एक-एक पर्त खोल डाले। रीता ने भी ललक में अपने सितार के तार बजने दिये। उस लय-तान में वेदन व रीता बेहोश हो गये। न उन्हें अपने वस्त्रों का ध्यान रहा न अपने आप का।

प्यास से जब भी गला सूखा तो वेदन ने रीता के मुँह में एक लेमन ड्राप टपका दिया और तब स्वयं भी मिल्की लाइमचूस ओठों से पपोलता रहा।

यों घंटों बीत गये। रीता के हाथ-पैर ढीले पड़ गये थे। वह थकन में सो गयी। वेदन भी हल्के नशे की झोंक सँभालते-सँभालते सो गया।

× × ×

"गफूर! बेटा आज वह सवारी मिली थी कि क्या बताऊँ। अबे क्या तितली थी?......और वह कम्बख्त रास्ते भर ओठ चूसता चला गया।

भई ! आजकल के पढ़े-लिखे कुछ ज्यादा शरमदार हो गये हैं गफूर !...
क्या कभी हमारा तुम्हारा जमाना ही नहीं था ?"

फट-फट-भट.........गफूर ने अपने घोड़े की मालिश करते-करते उसकी पीठ पर थापें दी और बोला—"क्यों नहीं, क्यों नहीं ? तुम्हारी वह दिलरुबा तो आज भी क्या कम है ?"

"बस गफूर ! उसका नाम न लेना। बड़ी बदज़ात है। औरतजात जो गठरी। मन की मलका है। अब तक जो छोड़े से छोड़े अब जो मेरे पास आई है बस मेरी ही होकर रह गयी है, गफूर ! मैंने भी उसकी कितनी खातिर की है ?"

"इस घोड़े की सब कमाई खिला दी।" गफूर ने कह कर अपने घोड़े के आगे का पैर उसके पेट तक लाकर मोड़ दिया।

"ऐ तांगे वाले !.......उस सवारी को तुमने कहाँ छोड़ा।" अनायास ही एक व्यक्ति ने ताँगे वाले से प्रश्न कर दिया। उस व्यक्ति के साथ दो व्यक्ति और थे जिनमें एक व्यक्ति पूरे सूट पर हैट धारण किये हुये था।

यों ताँगे वाला न बताता किन्तु वह एक दम सकपका गया और उसने कह दिया—"महाराजा होटल।"

"तुम चल सकते हो ?"

"जी हाँ। तीन रुपये लूँगा।"

"तीन रुपये ? अच्छा देंगे।" कहकर सवारियाँ ताँगे पर बैठ गयीं।

दस आने के तीन रुपये मिलते देखकर साथ का ताँगे वाला गफूर चौंका, किन्तु विवश था। उसे संतोष करना पड़ा। वह जानता था कि दुनियाँ कितनी मूर्ख है। जरूरत पर ही सब कुछ दे मरती है। यों किसी से एक धेला ले तो लो। वह भी कभी आठ आने के स्थान पर दो-दो और चार-चार रुपये झटक लेता है।

× × ×

द्वार पर थाप पड़ी तो वेदन हड़बड़ा कर पलंग पर से उठ खड़ा

हुआ। उसका पहला ध्यान गया सुन्दरलाल पर। सम्भवतः सुन्दरलाल हो किन्तु जब उसने द्वार खोला तो वह धक से रह गया—सुन्दरलाल, रीता का भाई तथा एक सज्जन और द्वार पर खड़े थे।

उन सबके समक्ष ही रीता ने अपना पेटीकोट सँभाला, साड़ी पहनी और नीची गर्दन करके खड़ी हो गयी।

"हुआ क्या"—यह किसी की समझ में नहीं आ रहा था।

१६

प्रमदा को छोड़कर मालवीय लपका तो सीधा आगरा कैण्ट पहुँचा। ट्रेन आ चुकी थी। उसने दूर से देखा एक फर्स्ट क्लास में—वेदन, सुन्दरलाल व वहि उस दिन की रेस्ट्रां वाली लड़की—बैठे थे। उसने उस लड़की को पहचाना। उस दिन रेस्ट्रां में नहीं आज कम्पार्टमेंट में बैठे हुये उसने उसे ठीक से देखा। वह उस लड़की के पिता तथा भाई से भली प्रकार परिचित था।

मालवीय ने, उस समय वेदन के सामने आने का, पहले विचार किया। उसने सोचा बाद में कहने से बात ही बात रह जावेगी। भले ही सत्यता स्थिर हो जावे तब भी तर्क-कुतर्क का समय शेष रह जायेगा किन्तु सामने पड़ जाने से जो सकपकाहट सबके चेहरों पर झूम जावेगी उससे सब कुछ सुनिश्चित हो जावेगा। तब वाद-विवाद का कोई प्रसंग शेष न रह जावेगा। किन्तु यों सामने आना भी उपयुक्त नहीं है। वेदन को घिरने दो—जितना घिर सके। वेदन को उस सब छिपाव में लिप्त होने दो जिस के लिये उसे आगरे में स्थान नहीं मिला। वेदन अपनी सत्य परिस्थितियों से जितना भागेगा वह—मालवीय—उसके उतना ही निकट आता जावेगा। जहाँ वेदन प्रमदा से दूर भागेगा। वहाँ वह—मालवीय—प्रमदा के निकट पहुँचता जावेगा।······यों प्रमदा के निकट पहुँचने में कुछ भी

शेष नहीं है। और वह पहुँचा भी कब ? उसे तो बुलाया गया है किन्तु अब जहाँ वह पहुँच चुका है उस पहुँच में अब यही आवश्यक है कि वेदन की पहुँच को अधिकाधिक दूर होने दिया जावे।······किन्तु यह भी ठीक नहीं है—वेदन को उसके अनाधिकार कृत्य पर तिरस्कार मिलना ही चाहिये। इस लड़की को अपने जीवन की उच्छृंखलता पर प्रताड़ना ही नहीं—दण्ड मिलना चाहिये। तब उचित है कि तुरन्त ही लड़की के घर सूचना पहुँचा दी जावे कि तुम्हारे कुल की मर्यादा घर से सड़क और अब सड़क से ट्रेन की राह नगर-नगर की अनुभूतियाँ प्राप्त करने गयी हुयी है। घर वालो—दौड़ो। उन नये ज़ायकों की चटकार में परिवार अथवा समाजगत जीवन की नैतिक मिठास में जो खट्टापन भर रहा है उससे उत्पन्न कड़वाहट को रोक सको तो रोको। दौड़ो······!

और मालवी स्वयं इस क्षण कहाँ है उसे भुला कर, परोपकारार्थ, वह उस लड़की के घर चल दिया। उसका ध्येय था कि वह समाज के इस तथानाम यौन-कलुष को समाप्त करे। उसका कर्तव्य है कि वह इन दुराचारों की रोक में सहयोगी बने।······किन्तु वह स्वयं ? उसके हेतु वह इस तर्क सहित सन्तुष्ट था कि उसको तो उसके लिये बरबस खींचा गया है। अब से कुछ घंटे पूर्व वह सुरक्षित था। उससे व्यवहार, नीति, रीति, धर्म, मान्यता, पाप-पुण्य सब सुरक्षित थे। किन्तु अब वह क्या करे। उसने तो बहुत चाहा। उसने तो बहुत बचाया किन्तु उस नारी के प्रति करुणा में वह भर गया। उस नारी के प्रति स्नेह-आकर्षण में वह विवश हो गया। तब दो की सहमति में उसने कुछ अनुचित नहीं किया है।···किन्तु वेदन व वह लड़की अनुचित कर रही है। क्यों ? इसका उत्तर प्रोफेसर मालवीय के पास नहीं था। और वह लड़की के घर की ओर चलता चला जा रहा था।

वह निरन्तर ध्यान करता चल रहा था—इस जीवन का क्रियात्मक रूप यदि मानव के मस्तिष्क पर केन्द्रित है तो उसका बहुत कुछ अंश मन

पर भी अवलम्बित है। और वह अपने अनुसार मस्तिष्क को मन नहीं मानता है। वह मन का स्थान हृदय ही मानता है। और हृदय का आरोपण—मन की हार—वह न्योछावर—वह आत्मार्पण न जाने प्रमदा को क्या हो गया ? न जाने क्यों प्रमदा ने उसे इतना खींचा। यहाँ तक खींचा। और वह खिंचता चला गया। इसके पूर्व वह भाग रहा था; दूर, बहुत दूर। उसका मन कहता था कि वह अपने मित्र के प्रति विश्वास का हनन नहीं करेगा। वह मैत्री सम्बन्धों में कहीं दरार नहीं आने देगा किन्तु वह भ्रम में था। आज वेदन को स्वयं गिरावट की ओर लपकते देखकर उसे लग रहा था कि अब तक उसने प्रमदा के प्रति अन्याय किया है। वस्तुतः प्रमदा अपने स्थान पर न्यायोचित थी। किन्तु वह न्याय क्या है ? जो मन से मान लिया जाय—जो आत्म-तुष्टि है, वास्तव में न्याय वही है। सामाजिक न्याय में और व्यक्तिगत न्याय में जो अन्तर है आज वही अन्तर उसके—मालवीय के—तथा प्रमदा के सम्बन्धों तथा समाज में प्रचलित न्याय में है। किन्तु जो भी हो वेदन उस न्याय का हनन कर रहा है। वह लड़की उस न्याय को नष्ट कर रही है। क्यों ? इसका कुछ भी तार्किक उत्तर प्रोफेसर मालवीय के पास नहीं था और वह उस लड़की के घर पहुँच गया।

घर के सामने जाकर उसने पुकार लगाई—"लाला जी हैं ?"

अन्दर से कोई उत्तर नहीं मिला।

तब उसने पुनः पुकारा—"लाला जी हैं ?"

घर के अन्दर से ज्यों ध्वनित हुआ—"नहीं, लाला जी काल-कवलित हो गये। क्यों ? क्योंकि उनकी लड़की ने उन्हें मार डाला।"

मालवीय लौटने को प्रस्तुत हुआ। तत्काल ही एक पहचाना सा स्वर सामने आया—"नहीं बाबू जी ! लाला जी नहीं हैं।"

"कहाँ गये ?"

"कुछ पता नहीं।"

"और उनके लड़के।"

"वो भी गये हैं।"

"कुछ पता है, कहाँ गये हैं?"

घर का पुराना नौकर चन्दू सकपकाया। उसे देखकर मालवीय ने कुछ अनुभव किया कि इस समय घर की स्थिति डाँवाडोल है तभी उसने पुनः प्रश्न किया—"क्यों, क्या बात है? कोई परेशानी? लाला जी कहाँ हैं और उनके साहबजादे······?"

"बाबू क्या बतावें? लाला जी पुलिस-स्टेशन गये हैं और छोटे बाबू स्टेशन गये हैं······।" घर का पुराना नौकर कह गया।

मालवीय सोच गया—क्या यहाँ कोई सूचना पहले ही आ गयी? वह समझ रहा था खबर यहाँ तक आ चुकी है।

तभी उसने नौकर से पुनः प्रश्न किया—"क्यों? लाला जी पुलिस-स्टेशन क्यों गये हैं?"

"बाबू, अब हम अपने मुँह से नहीं बतावेंगे।"

"फिर भी बात क्या है?" मालवीय निरन्तर समझता जा रहा था किन्तु नौकर से पुष्टि कराना चाहता था।

"बड़ी लड़की कहीं चली गयी है।" घर के पुराने नौकर ने कह दिया। उसने यह ध्यान नहीं किया कि वह उस घर का पुराना नौकर है। उसने घर का नमक खाया है। उसे वह बात प्रकट नहीं करनी चाहिये थी। वह कुल की मर्यादा की बात थी। वह घर की इज्ज़त की बात थी। किन्तु जब घर की इज्ज़त ने ही घर की इज्ज़त नहीं की तो वह तो एक साधारण नौकर था। किन्तु वह सब हुआ क्यों? वह सब होता क्यों है? वह सब चीख़ते हैं। सदा-सदा से चीख़ते चले आये हैं। सदा-सदा चीख़ते रहेंगे किन्तु रोक नहीं पाते। रोक नहीं पावेंगे। तब कुछ कमी है। कुछ दोष है। कहाँ है। पता नहीं। क्या निवारण है। पता नहीं। वह बुरा है—इतना सब कहते रहेंगे। क्यों बुरा है—बुरा है तो रोक क्या है;

किस व्यवस्था में कमी है—किसी के पास कोई उत्तर नहीं।

तत्काल ही, सोचते-सोचते, मालवीय ने उत्तर दिया—"तो इसमें इतनी घबड़ाहट की क्या बात थी? लड़की कहीं चली गयी है तो आ जायेगी। उसमें पुलिस-स्टेशन जाने की क्या बात पैदा हो गयी, चन्दू!"

"बाबू जी, एक टैक्सी वाला आया था। वह उस लड़की की किताबें लाला जी को दे गया और कह गया कि आपकी लड़की को स्टेशन छोड़ कर आया हूँ। सुनकर लाला जी की तो धरती धँस गयी। तब लाला जी ने जी तोड़ कर चीखते हुये कहा भी—'क्या कहा?'—तो उस टैक्सी वाले ने जवाब दिया—'बाबू! एक आदमी के साथ गयी है। रास्ते में ग्वालियर जाने की बातें हो रही थीं।'—तभी लाला जी पुलिस-स्टेशन गये और छोटे बाबू, शायद ग्वालियर की तरफ गये हैं।······तब बाद में मैंने टैक्सी वाले से पूछा भी कि किस्सा क्या है? तो वह उस आदमी को गाली दे रहा था कि पाँच रुपये के काम के दो रुपये ही टिका गया। उसी झल्लाहट में वह न जाने कहाँ से यहाँ घर का पता पा गया।" चन्दू ने अपनी बात समाप्त कर दी किन्तु मालवीय निरन्तर विचार मग्न बना रहा। उसने ध्यान किया यदि सचमुच पुलिस इत्यादि में रिपोर्ट हो गयी तो वेदन की क्या गति होगी? तब उसमें वेदन की ही नहीं सबकी बदनामी होगी। उसकी—मालवीय की—भी एक मित्र होने के नाते टीका-टिप्पणी होगी। साथी होने के कारण वह उस बदनामी से बच न सकेगा। यहीं नहीं एक प्रोफेसर—शिक्षा-संस्था से सम्बन्धित एक सदस्य के कारण उस कालेज की बदनामी होगी। कालेज ही नहीं आज की शिक्षा बदनाम होगी। उस बदनामी से प्रमदा भी न बच सकेगी······तब प्रमदा का ध्यान आते ही वह सोच गया—अच्छा है। प्रमदा में उसके—वेदन के—प्रति अधिकाधिक घृणा-तिरस्कार बढ़ता जावेगा। वह उसके लाभ की बात होगी। किन्तु इस सब से कुछ नहीं। प्रमदा का उसके प्रति आकर्षण-मोह तो बड़ा सहज, बड़ा सुलभ है। अब उसमें किसी ऊपरी प्रयत्न की आवश्यकता

नहीं है। अस्तु, किसी भी मूल्य पर मालवीय को यह पुलिस-प्रसंग समाप्त करना चाहिये। तभी वह बोल पड़ा—"लेकिन क्या लाला जी के बुद्धि नहीं है। उसमें और किसी की क्या हानि होगी। यदि उनकी लड़की की बदनामी हुयी तो उनकी तो पहले होगी। मैं लाला जी को इस अल्प-बुद्धि के लिये जाकर अभी रोकता हूँ।" कहते हुये मालवीय वहाँ से चल दिया।

× × ×

"लालाजी! आपको क्या हो गया है? थोड़ा समझदारी से काम लीजिये। इतनी अक्ल आपको नहीं आई कि······।"

"अजी मेरा कलेजा जल रहा है। ऐसी लड़की तो मर जाय······।"

"लेकिन पुलिस में रिपोर्ट करने से क्या बनेगा?"

"बनेगा क्या? वह पकड़ी जायगी। लौट आयेगी।"

"वाह लालाजी! वैसे वह लौट आकर भी क्या करेगी और वैसे लौट आने पर आप उसका क्या करेंगे? छुरी खरबूजे पर गिरे या खरबूजा छुरी पर—बदनामी आपकी ही होगी।" कांस्टेबिल को रिपोर्ट लिखाते-लिखाते रोक कर मालवीय लालाजी को थाने के आँगन के जामुन के पेड़ के नीचे लाकर धीरे-धीरे कह गया।

इस बार लालाजी की तेजी कुछ कम हुयी और वे मौन हो रहे। तभी मालवीय ने बात और आगे बढ़ायी—"अजी! यह क्या पता है कि वह बदमाश टैक्सी वाला सच ही कह रहा था।"

"किन्तु बाबू जी! किताबें तो उसी की थीं।"

"हो सकती हैं। थोड़ा धैर्य से काम लीजिये। ऐसा ही है, तो जैसा चन्दू कह रहा था, साहबजादे स्टेशन गये हैं उनको लौट आने दीजिये।"

"तो आप मेरे घर गये थे।"

"वहीं तो मुझे इस घटना का पता लगा।"

"तब उस चन्दू साले ने आप से वह सब कह दिया। अभी उस नमकहराम को निकालता हूँ।"

मालवीय को लाला जी की दयनीय आकृति देखकर करुणा उत्पन्न हो रही थी। वह लाला जी को और मधुर शब्दों में शान्त करता हुआ बोला—"देखिये ! आप स्वयं देख लीजिये। उस बेचारे नौकर ने मुझे आपका शुभचिन्तक जानकर मुझ से वह घटना बता दी। उसने मुझे आपके साथ बहुत बार देखा था। अब आप क्या सोचते हैं कि पुलिस में रिपोर्ट करने से आपके या उस कांस्टेबिल के अतिरिक्त और कोई नहीं जानेगा। आप को शायद पता नहीं है—ये जो दर्जनों अखबार शहर में हैं इनके एजेन्ट कहिये या सम्वाददाता—कोई साइकिल पर, कोई 'पिक अप' पर या कोई पैदल ही, एक के बाद एक, अभी आता होगा और शहर की सबसे चटपटी, आज की ताज़ी खबर अपने कागज़ के बन्डल में साथ बाँध ले जावेगा। थाने—कचहरियों में घूमने से ही तो उन्हें गरमागरम मसाले मिलते हैं। तब कल प्रातःकाल ही सर्वत्र चर्चा होगी कि······।"

"आप चुप रहिये।" कहते हुये लाला जी थाने के बाहर हो गये।

बाहर आकर उन्होंने मालवीय से बात भी नहीं की। मालवीय भी अपने उद्देश्य की पूर्ति सहित दूसरी ओर मुड़ गया। तभी लाला जी कुछ सोचकर घूमे और बोल पड़े—"बाबू जी, सुनिये ! आप मेरे साथ चलिये।"

"मुझे आवश्यक कार्य से जाना है लाला जी। फिर भी आप मुझे कहाँ ले जाना चाहते हैं ?"

"मुझे एक आदमी पर शक है। आपकी बड़ी कृपा होगी। इस काम में आप मुझे कुछ सहायता कीजिये।"

"आपका शक किस पर है ?"

कुछ सोचकर लाला जी चुप हो गये। विवश, एक पल को मालवीय को भी चुप होना पड़ा। तभी मालवीय ने अपनी ओर से कहा—"आप कहिये तो मैं एक घण्टे के अन्दर-अन्दर लौट आऊँ।"

कहते-कहते मालवीय चाह रहा था कि वह तत्काल प्रमदा के निकट जाकर वह सब सूचना दे आवे।

"ठीक है, आप जाइये।" कहते हुये लाला जी ने अपने घर की ओर प्रस्थान किया।

× × ×

लाला जी से विदा होकर मालवीय ने एक साइकिल-रिक्शा लिया और वह प्रमदा की ओर चल दिया।

सब मिला कर मालवीय को प्रमदा के निकट से आये दो घंटे से अधिक हो गया था जबकि वह कह आया था कि अभी आया। तब वह ध्यान करता गया—उसने प्रमदा को किस स्थिति में छोड़ा था—पूर्ण एकान्तिक। प्रमदा का ध्यान आते ही वह रोमांचित हो उठा। वह वहाँ फिर चले। वहाँ फिर उसी तन के आनन्द में आत्म-विभोर हो जावे। वह मन की हार—वह पूर्णार्पण ही—मन की कितनी बड़ी जीत है जब तन और मन का एकात्म। उस पुलक संचार में जैसे मालवीय के अणु-अणु में पुरुषत्व भरता चला गया। उसने रिक्शे वाले से कहा—"जल्दी चलो।"

रिक्शे वाले ने अपना रिक्शा दौड़ाना प्रारम्भ कर दिया।

तभी मालवीय ने ध्यान किया—वेदन कम से कम कल सुबह तक नहीं लौटेगा और यदि उसे लड़की का भाई न मिला तो वह अभी कल शाम तक नहीं लौटेगा। सम्भवतः परसों सुबह तक। तब परसों सुबह तक वह और प्रमदा; प्रमदा और वह। तभी रिक्शे ने, एक मोड़ पर टर्न लिया और दूसरे ही पल मालवीय एक भारी 'आमनी बस' के नीचे आ गया।

मालवीय को बेहोशी की हालत में हास्पिटल पहुँचाया गया।

२०

प्रमदा को वेदन का तो कोई ध्यान भी न था किन्तु मालवीय को गये इतना विलम्ब हो गया था जबकि वह—"अभी आया" कह कर चला गया था, इससे वह अधीर हो रही थी। कुछ देर तो प्रमदा यों ही तख़त पर औंधे मुँह लेटी रही। उसने अपने दोनों हाथ सीधे डाल रक्खे थे। ऐसे ही लेटने की उसकी आदत थी। ऐसे में कभी-कभी वह अपने समूचे शरीर को गद्दे पर दाब लेती थी। उससे उसे एक आनन्द प्राप्त होता था। उसमें रोमांच भरता था और इस क्षण मालवीय का ध्यान कर उसमें न जाने कितना अतिरेक बढ़ रहा था। वैसा उसके जीवन में पहले कभी नहीं हुआ। वह अतिरेक का जैसे एक उफान था, बवंडर। तभी वह ध्यान करती चली गयी—ऐसा आनन्द तो उसे कभी नहीं मिला। वह शादी के बाद वेदन के यहाँ आयी। तब प्रथम रात्रि से लेकर इस क्षण तक वेदन के साथ वह जब-जब भी तन के खेल खेलती रही—जब भी वेदन ने उसे विवश किया तभी उसके अनन्तर उसे जैसे एक आत्मग्लानि सी होती थी। ज्यों उसे उस सब में कोई विशेष आनन्द नहीं मिलता था। वह एक प्राकृतिक शारीरिक क्रिया सम्पूर्ण हो लेती थी। उसे उसमें भाग भी लेना पड़ता था। अतिरेक भी स्वाभाविक था। किन्तु सदा ही एक अभाव सा बना रहता था। ज्यों तृप्ति के नाम से उसे एक

अशान्ति प्राप्त होती थी। आनन्द की सम्पूर्ति में वेदन तो मोद सहित सुख-निद्रा में निमग्न हो जाता किन्तु प्रमदा घंटों-घंटों करवटें बदल कर किसी उद्रेक में अव्यवस्थित बनी रहती। वैसा चाहें किसी अन्य अवसर पर न भी होता किन्तु जब वेदन उसे सताता था तो वह कई-कई दिन तक जैसे सताई सी बनी रहती थी। वेदन से कुछ उसे ऐसा निर्मोह था कि अपनी उस उत्पीड़न को वह उससे कभी प्रकट ही नहीं करती थी किन्तु उस सब में वह सदा से भिंची चली आयी थी।

और जैसे आज उसे उन्मुक्त हर्ष प्राप्त हुआ था। जैसे उसे जीवन का सब सुख मिल गया था। जैसे कोई खोई वस्तु प्राप्त हो गयी थी। जैसे उसे सब कुछ मिल गया था।

उसे सन्तोष था कि वह उसका छिपाव का आनन्द नहीं—वास्तविक उन्माद है। सहज आनन्द है जिसे वह सदा-सदा प्राप्त करेगी। अब करेगी। करती रहेगी। ज्यों उसे कुछ नया मिल गया है जिसे अब वह खोवेगी नहीं। कहीं जाने न देगी।

इसी प्रकार वह विलम्ब तक पड़ी रही। तब उठी। एक बार द्वार तक झाँक आयी। कहीं मालवीय सड़क पर आता हो। तब पुनः लौटी। अब आज वह अकेले के लिये क्या भोजन बनावे अतः वह पड़ी ही रही। उसने ध्यान किया, वेदन पता नहीं कब आवे। हाँ, मालवीय आवेगा तो संध्या बीते उसके साथ वह घूमने जावेगी। तभी किसी रेस्ट्राँ में बैठकर वह जलपान कर आवेगी। किन्तु इतनी देर होती चली जा रही है—मालवीय आया क्यों नहीं?

शाम हो गयी। रात के घंटे बीतते चले गये। मालवीय नहीं आया। तब वह फिर घबड़ा कर दूर भाग गया कायर कहीं का। वह कायर है। भगोड़ा। अब तक भागता रहा। अब फिर भाग गया—दुष्ट। निर्मोही।

इसी प्रकार आधी रात चली गयी और प्रमदा की छटपटाहट बढ़ती गयी। वह चाह रही थी—स्वयं जाये। मालवीय को उसके घर से बुला

लावे । उसे वह समझावे । किन्तु वह उसे समझावेगी क्या ? नारी कब मुँह से कुछ कहती है । तब वह उसे देखकर स्वयं ही साथ हो लेगा । तब फिर वह घर आकर—यहीं, उसी प्रकार । सोचते-सोचते उसके शरीर भर में एक कँपकँपी सी भर गयी ।

और उसी उत्तेजना में प्रमदा ने घर का ताला बन्द किया और चल दी । आधी रात बीत चुकी थी । किन्तु प्रमदा उठी नहीं । उसे मालवीय का घर भी ज्ञात था । उसने एक ताँगा लिया और मालवीय के घर की ओर चल दी ।

मालवीय के घर आकर उसने मालवीय के बड़े लड़के का नाम लेकर पुकारा । वह दो-तीन-चार आवाजें देती रही । कोई उत्तर न पाकर वह कुछ चिंतित हुयी । उस रात्रि के समय में यों अधिक पुकारना अनुचित समझ कर प्रमदा चलने को प्रस्तुत हुयी और वह ताँगे पर बैठने लगी तभी मालवीय के नौकर ने ऊपर से ही पुकारा—"कौन है ?"

प्रमदा ताँगे से पुनः उतरी ।

प्रमदा को देखकर नौकर सड़क पर आया । उसके साथ ही मालवीय का बड़ा लड़का था । लड़के को देखकर प्रमदा के हृदय में न जाने कैसे-कैसे भाव उत्पन्न होने लगे । काश ! वह उसकी माँ होती । तब उसे अनायास ही अपनी अन्यतम परिचिता मधुर का ध्यान हो आया ।

प्रमदा कुछ कहे उसके पूर्व ही नौकर ने प्रारम्भ किया—"बाबू जी आज अभी तक नहीं आये हैं !"

"बाबू जी अभी तक नहीं आये हैं ?" प्रमदा ने चौंकते हुये दोहराया ।

"हाँ" मालवीय का लड़का राजीव कह गया ।

राजीव का 'हाँ' सुनकर पुनः प्रमदा के हृदय में एक विचित्र सा ममत्व भर गया ।

"तब तुम्हारे बाबूजी गये कहाँ ?" कहते हुये प्रमदा सोचती गयी—आखिर मालवीय गया कहाँ । तभी उसने प्रश्न किया—"तुम्हारे बाबू जी कब से घर नहीं आये ?"

"सुबह कालेज गये थे, तब से······।"

"तब से नहीं आये!" प्रमदा ने दोहराया और ध्यान करने लगी तब उसके घर से मालवीय गया कहाँ? अचानक ही प्रमदा घबड़ा गयी। उसके हृदय में अनेक प्रकार की दुःशंकाये उत्पन्न होने लगीं। क्या मालवीय को किसी आत्मग्लानि ने प्रताड़ित किया जो वह······किन्तु उस पुरुष-नारी के सहवास में आत्मग्लानि का क्या प्रश्न है? तब मालवीय गया कहाँ! कहीं वह अब घर न पहुँचा हो; यह ध्यान कर प्रमदा ने राजीव से कहा—"अच्छा, तुम चिन्ता न करो। मैं तुम्हारे बाबू जी का पता लगा कर अभी लौट कर आती हूँ।" कहते हुये प्रमदा वहाँ से चल दी।

ताँगे में प्रमदा की गति विचित्र थी। वह नाना प्रकार की दुर्घटनाओं का आरोपण मालवीय से जोड़ने लगी। अब उसे वेदन का ध्यान आया। वह सोचने लगी—वेदन होता तो यत्र-तत्र मालवीय को ढूँढ़ता। अब इस रात्रि में वह कहाँ जावे? तब इस रात्रि में पुरुष जा सकता है। नारी अकेली कहीं नहीं जा सकती। तब नारी में यह निर्बलता क्यों है? इसमें कहाँ कितना प्रकृति काम करती है; कहाँ कितना समाज—यह सब विचारते-विचारते प्रमदा घर पहुँची। इस समय प्रमदा अत्यधिक व्यथित हो रही थी। घर पहुँचने पर उसके विस्मय का ठिकाना न रहा। उसने देखा—वेदन ज़ीने से उतर कर सड़क पर खड़ा है।

वेदन व प्रमदा दोनों ही एक दूसरे के सामने खड़े प्रश्नों में डूब रहे थे। तभी वेदन ने प्रश्न किया—"इतनी रात गये कहाँ गयी थीं?"

"घूमने।"

सुनते ही वेदन तड़प कर रह गया किन्तु कुछ कह न सका। प्रमदा ने ताँगे वाले को पैसे दिये और बिना कुछ आगे कहे ज़ीने पर चढ़ गयी। वेदन भी प्रमदा के पीछे-पीछे ऊपर आ गया। प्रमदा ने ताला खोला, कपड़े बदले और आँगन में पड़ी खाट पर लेट गयी। उसने वेदन से यह

भी नहीं पूछा कि कब आये, कहाँ से आये ! कपड़े बदलोगे ! कुछ खाओगे पियोगे ! इत्यादि। वह केवल मालवीय में लीन थी।

वेदन को प्रमदा के प्रति अविश्वास भरता चला जा रहा था। ग्वालियर से लौटकर द्वार पर ताला बन्द देखते ही उसने सब कुछ—बहुत कुछ सोच डाला था। उसका पहला ध्यान मालवीय पर गया। जिस अप्रत्याशित वातावरण की तीक्ष्णता से अपने को किसी प्रकार वह बचा कर लाया था उसकी पूर्णाहुति जैसे घर आकर हो गयी।

वेदन अटैची तख़त पर रख कर वैसे ही जूते कसे हुये तखत पर बैठा रहा। उसके अन्तर्मन में—आगरे से ग्वालियर, तब ग्वालियर, ग्वालियर से आगरा और अब घर आकर वहाँ का वातावरण चल-चित्र की भाँति नाच रहा था। वह ग्वालियर को भूल कर प्रमदा व मालवीय में डूब गया था। वह सोच रहा था प्रमदा निश्चित ही मालवीय के पास से आ रही है। तब वह प्रमदा का क्या कर दे ? तब वह अपना क्या कर ले ? तब वह मालवीय का क्या कर दे ?

वह किस स्थिति से होकर आ रहा है—इसका लेशमात्र भी ध्यान न था और वह शनैः शनैः रोष में भरता जा रहा था। प्रमदा को यों लेटे देखकर तथा उसके उस अप्रिय व्यवहार से वह और अधिक क्रोधित हो रहा था। वह कुछ कहने ही वाला था कि अनायास प्रमदा खाट पर से उठी और दूसरी ओर मुँह करके बड़ी उपेक्षा सहित बोली—"आज मालवीय अभी तक घर नहीं पहुँचे हैं। देखो, वो कहाँ गये ?"

वेदन चौंका। उसका सब रोष भी तत्काल शान्त हो गया। "मालवीय अभी तक घर नहीं पहुँचा है ?" वेदन बुदबुदा गया। "तब वह कहाँ गया ? वह कब से घर नहीं गया ?" वेदन ने प्रमदा से प्रश्न किया।

"सुबह कालेज आये थे।"

तब वेदन ने ध्यान किया—प्रमदा मालवीय को अब तक 'गया आया' कह कर सम्बोन्धित करती करती थी। आज वह मालवीय को

'पहुँचे हैं' 'वो कहाँ गये' कहकर सम्बोन्धित कर रही है। किन्तु उस विषय पर वह बिना कुछ बोले ही उठा और मालवीय की खोज में चलने को तत्पर हुआ।

इस समय भी प्रमदा ने वेदन की कुशल-क्षेम की ओर ध्यान नहीं दिया न ही वेदन ने यह पूछने की आवश्यकता समझी कि वह पूछे कि इस अर्ध-रात्री के समय प्रमदा को वह सूचना किस प्रकार मिली। मालवीय के यहाँ से कोई आया था अथवा......यह वह कैसे पूछ सकता था कि क्या प्रमदा स्वयं मालवीय की खोज में उसके घर गयी थी।

वेदन तभी पहले मालवीय के घर गया तदनन्तर वह ध्यान कर-कर के इधर-उधर जाने का विचार करने लगा। वह एक-दो मित्रों के यहाँ भी गया किन्तु उस अर्ध-रात्री के बाद यों इधर-उधर खोज करना अनुपयुक्त मान कर वह अपने घर लौट आया।

मालवीय का ध्यान कर प्रमदा अत्यधिक अधीर बैठी थी। उसके नेत्रों में जल भर रहा था तभी वेदन सामने पहुँचा। भर्राये गले से प्रमदा ने प्रश्न किया—"कुछ पता चला ?"

"बहुत परेशान हो।" वेदन ने कर्कश शब्दों में प्रकट किया। "जायेगा कहाँ ? किसी कोठे पर पड़ा होगा।" कहते हुये वेदन ने देहली वाले मालवीय के कथन को ही जैसे दोहरा दिया।

प्रमदा में वेदन के उत्तर से अत्यधिक रोष भर गया और वह उबल पड़ी—"आप की क्या मित्रता है ? उन छोटे-छोटे बच्चों पर भी यह दया नहीं आ रही है कि वे इस रात्रि में कितने दुःखी हो रहे होंगे। बेचारे अकेले पड़े हैं—न माँ है और पिता......।" कहते हुये प्रमदा ने बरबस आये आँसुओं को धोती के छोर से पोंछ लिया।

वेदन ने चाहा कि कह दे—"क्यों अपनी उद्विग्नता बच्चों पर आरोपित कर रही हो।" किन्तु वह कुछ बोला नहीं। एक बार उसने चाहा कि वह पुनः जाकर मालवीय की इधर-उधर खोज करे किन्तु वह ग्वालियर से यों ही थका हुआ आया था। थका ही नहीं—पिटा सा आया था। अतः

उसने कपड़े उतारे और आँगन में पड़ी दूसरी खाट पर-जा लेटा। प्रमदा भूमि पर पैर रक्खे खाट पर बैठी थी। उस समय लग रहा था—उन पति-पत्नी में कोई परिचित ही नहीं है और वेदन तत्काल नींद के खर्राटे भरने लगा।

प्रमदा, अपलक द्वार की ओर निहारती रही। उसे इस समय भय लग रहा था कि इस रात्रि के समय मालवीय कहीं से आकर न पुकार ले जिससे वेदन के मन में और अधिक शक बैठ जावे किन्तु साथ ही वह चाह रही थी—कुछ भी हो। किसी प्रकार मालवीय आ जाय।

प्रमदा को सम्पूर्ण रात्रि नींद नहीं आयी और वह यथावत् खाट पर बैठी रही। वह मालवीय के बच्चों से कह आयी थी कि अभी लौट कर आती है—किन्तु वह अब जावे कैसे ?

वेदन स्वप्न में बड़बड़ा रहा था—"रीता ! मैंने तुम्हारा ख्याल किया ······वर्ना मैं तुम्हारे भाई को !····· वह कम्बख्त सुन्दरलाल········· उससे किसने कहा था कि तू प्लेटफार्म पर टहल। साला ताँगे वाला होटल ले आया।···तो अब कब मिलोगी रीता···रीता···रीता घबड़ाना नहीं।"

प्रमदा खाट पर बैठी वेदन की नींद की वह सब बड़बड़ाहट सुनती रही किन्तु अपना ध्यान मालवीय से न हटा सकी।

× × ×

"ऐ प्रोफेसर, ज़रा सड़क पर तो आ !" एक ज़ोर की आवाज मकान में ही नहीं सारे माहौल में गूँज गयी।

प्रमदा ने बाहर झाँककर देखा—सुबह-सुबह ही दस-बारह आदमी लाठियाँ लिये वेदन के मकान के सामने ही खड़े हैं और आपस में उस मकान की ओर ही संकेत कर रहे हैं।

"देखो तो ये कौन लोग हैं ?" प्रमदा ने वेदन से कहा।

वेदन कमरे की खिड़की से झाँक कर पहले ही सब कुछ समझ चुका था और तभी उसने उत्तर दिया—"पता नहीं। होंगे कोई !"

२१

प्रमदा ने ध्यान किया प्रोफेसर साहब को न अपने मित्र की चिन्ता है न कालेज जाने की ही किसी तैयारी में हैं। मालवीय का पता लगाने के लिये वह अत्यधिक व्यग्र हो रही थी। तभी उसने वेदन से पूछा—"आज कालेज नहीं जाना है, क्या ?"

"मैंने कालेज से दो दिन की छुट्टी ले रक्खी है।"

प्रमदा को ज्ञात नहीं था अन्यथा वह कह देती—"कालेज से छुट्टी तो दो दिन की ले रक्खी थी किन्तु ग्वालियर में काम कुछ घंटों में ही समाप्त हो गया और इस समय वे सामने जो लठैत खड़े हैं·····किन्तु उस अज्ञान में प्रमदा ने कहा—"मैं मालवीय के घर जा रही हूँ।"

और कोई समय होता तो वेदन प्रमदा को रोक देता किन्तु एक तो इधर पति-पत्नी के बीच की खाई गहरी होती जा रही थी। दूसरे इस समय वह चाहता भी था कि कुछ समय के लिये प्रमदा कहीं बाहर घूम आवे। वेदन सोच रहा था कि बाहर खड़े गुण्डे किसी समय कुछ उत्पात तो करेंगे ही।

प्रमदा ने तभी साड़ी बदली और वह मालवीय के घर की ओर चल दी। मालवीय के निकटतम परिचितों में एक वेदन ही ऐसा था जो घर-बाहर, स्त्रियों-बच्चों से भी एक समान मिला हुआ था। मालवीय की पत्नी

मधुर की मृत्यु के अनन्तर वह जो थोड़ा सा परिवर्तन आया था वह इतना था कि मालवीय के बच्चे अब वेदन के यहाँ अधिक नहीं आते थे और अब प्रमदा को चिन्ता मालवीय की पत्नी मधुर की नहीं; अपितु स्वयं मालवीय की हो गयी थी।

अस्तु, प्रमदा को मार्ग में ही मालवीय का नौकर मिला जो एक ताँगे में बच्चों को लेकर वेदन के घर की ओर जा रहा था। एक दूसरे को देख कर दोनों ने ताँगे रोक दिये और तभी अधीर बालकों को देखकर प्रमदा ने प्रश्न किया—"तुम्हारे बाबू जी आये ?"

"अभी नहीं आये।......आप कहाँ जा रही हैं ?" राजीव ने प्रश्न किया।

"मैं तो तुम्हारे यहाँ ही जा रही थी।" कहते हुये प्रमदा की मनः-स्थिति अत्यधिक गम्भीर हो गयी। सब ओर से घूम कर प्रमदा को एक ही ध्यान जाता था—मालवीय ने नहीं प्रमदा ने मालवीय के साथ जबरदस्ती की है। कहीं......मालवीय ने कुछ कर तो नहीं लिया।

तभी राजीव ने एक स्थानीय समाचार-पत्र प्रमदा की ओर बढ़ाते हुये कहा "देखिये ! इसमें एक खबर छपी है कि कल एक रिक्शे में बैठे एक सज्जन को एक बस से बहुत चोट आई है किन्तु उन सज्जन को किसी ने पहचान नहीं पाया है। न ही उनके पास ऐसा कोई चिह्न था जिस के आधार पर उन्हें पहचाना जा सकता।......कहीं बाबू जी ?"

"कैसा सोचते हो राजीव ?" सड़क पर खड़े-खड़े ही प्रमदा ने कहा। किन्तु वह स्वयं सोच गयी—यदि पुत्र अपने पिता के सम्बन्ध में इतना अनर्थ सोच सकता है तो उसने भी तो मालवीय के सम्बन्ध में इससे अधिक अनिष्ट सोच लिया। तब उसने क्यों सोचा ? आज मालवीय उसके लिये क्या है ? जीवन की एकमात्र निधि प्रेम को उसने उस पर आरोपित किया है। तब मालवीय तो उसका सर्वस्व है। किन्तु उसी क्षण प्रथम बार प्रमदा ने ध्यान किया—ये परिस्थितियाँ, यह वातावरण उसके प्रेम को

स्वीकार नहीं करेंगे। उसका अपना पति, मालवीय के ये बच्चे, समाज की मान्यता, विवाहित पति-पत्नी की आस्था······वह सब उसके प्रेम को अस्वीकार ही नहीं करेंगे। मसल डालेंगे। किन्तु प्रेम की मान्यता को कभी कोई मानता कब है? वह संसार के लिये सर्वथा अमान्य वस्तु है······ किन्तु प्रमदा सोचती गयी, इस समय इस सब तर्क-वितर्क का समय कहाँ है· तभी उसने ध्यान किया—राजीव के कथनानुसार हास्पिटल देख लेने में हानि क्या है?

तभी उसने कहा—"बेटे राजीव! तुम मेरे घर चलो। मैं हास्पिटल होकर अभी आती हूँ।"

× × ×

प्रमदा के जाने के अनन्तर वेदन को मालवीय का ध्यान आया। मालवीय ही वेदन का एक ऐसा अभिन्नतम मित्र था जो उसकी उस परिस्थिति में कुछ सहायता कर सकता था। उससे ही वह कुछ प्रकट भी कर सकता था। इस समय वेदन को मालवीय की आवश्यकता थी। किन्तु वह विवश था। घर के बाहर वह नहीं निकल सकता था। निकले तो पता नहीं कि जीवन रहे या जावे। यों उस ग्वालियर के आनन्द में जीवन चला भी जावे किन्तु जीवन बना रहा और सर के टुकड़े हो गये अथवा सब जग जान गया तो क्या होगा—इस भय से वेदन चिन्तित था। तभी उसे एक युक्ति ध्यान में आयी और उसने घर का कोना-कोना छान डाला। वेदन को छोटे कमरे की ताली कहीं नहीं मिली। उसे तत्काल सौ-दौ सौ रुपयों की आवश्यकता उपस्थित हो गयी थीं। रुपये उसके ध्यान में थे नहीं; फिर भी वह सोच रहा था—प्रमदा के सूटकेस में अवश्य ही रुपये होंगे। प्रमदा ने ऐसे आड़े समय में अनेक बार इस प्रकार लुके-छिपे रुपये निकाल कर दिये भी हैं। जब सब ओर ताली ढूँढ कर वह थक गया तब उसने छोटे कमरे का ताला तोड़ने का ध्यान किया।

बहुत प्रयत्न-परिश्रम के अनन्तर उसने छोटे कमरे का ताला तोड़ा।

तब प्रश्न उपस्थित हुआ—प्रमदा के सूटकेस के ताले का। वस्तुतः सब घर की ताली प्रमदा की कमर के गुच्छे में लगी हुयी थी।

तत्क्षण ही राजीव तथा मालवीय के अन्य बच्चे वहाँ पहुँच गये। द्वार की खट-खट से अनायास ही वेदन घबड़ा गया। उसकी स्थिति एक चोर की सी थी। वह ध्यान कर रहा था—धन का स्वामी आ गया। प्रमदा आ गयी। यों प्रमदा के पास जो रुपये थे वे उसके दिये हुये ही तो थे, किन्तु उन रुपयों को इस समय लेने का जो रूप था वह चोरी से कम न था। तभी वेदन को दूसरा ध्यान गया—कहीं कोई बदमाश तो द्वार नहीं खटखटा रहा है। उस समय बाहर खड़े वे लठ्ठधारी उसे बदमाश प्रतीत हो रहे थे किन्तु समाज के लिये वह भी कहाँ कितना बड़ा बदमाश था—इसका ध्यान उसे स्वयं नहीं था। तभी उसने अपने हाथों में हृदय का सब बल समेट कर द्वार पर झाँका। उसने मालवीय के बच्चों को पहचान लिया और तुरन्त द्वार खोल दिया। बच्चों के अन्दर आते ही उसने तत्काल ध्यान किया—ये बच्चे आ गये। कहीं प्रमदा रह तो नहीं गयी। और यदि रह गयी होगी तो मालवीय के पास ही रह गयी होगी। तभी उसने बड़ी व्यग्रता में प्रश्न किया—"राजीव! तुम्हारी चाची जी कहाँ हैं?"

"हास्पिटल गयी हैं।"

"क्यों?"

"बाबू जी का पता लगाने।"

"क्यों, बाबू जी हास्पिटल में हैं?"

"पता नहीं।"

"तब?"

और राजीव ने अखबार की वह खबर दिखादी।

"तुम भी पागल हो राजीव! तुम्हारे बाबू जी वहाँ कहाँ से आये।"

"तब बाबू जी कहाँ गये?"

"कहीं गये होंगे। घबड़ाने की क्या बात है? आ जावेंगे। अच्छा बैठो। खेलो।" कहते हुये वेदन पुनः छोटे कमरे में घुस गया।

किसी प्रकार वेदन प्रमदा का सूटकेस खोलने में सफल हो गया और उसके ब्लाउजों की एक तह में लगभग ढाई सौ रुपये मिल भी गये। बड़ी प्रसन्नता में वेदन कमरे के बाहर आया और मालवीय के नौकर को खिड़की के पास ले जाकर उँगली के संकेत से एक व्यक्ति को दिखाते हुये बोला—"देखो, उसके पास जाओ और कहना प्रोफेसर साहब बुलाते हैं।"

वेदन का सौभाग्य—उसका तीर काम कर गया। नौकर के साथ वह व्यक्ति ज़ीने से ऊपर चला आया। किसी प्रकार उन गुण्डों को वहाँ से हटाने का सौदा तीन सौ रुपये में तय हो गया। दो सौ रुपये वेदन ने उस व्यक्ति को तत्काल दे दिये और सौ रुपये एक दिन बाद चुपचाप आकर ले जाने का वेदन ने वचन दे दिया।

"देखिये, प्रोफेसर साहब! कल सौ रुपये न मिले तो समझिये दो सौ भी गये······और हमारा क्या है? हम कहिये कल फिर यों ही ऊधम मचावें या आप की राजी हो तो और सौ-दो सौ खर्च कीजिये। जहाँ कहिये उस लड़की को पहुँचा जावें······।"

"कोई बात नहीं। कोई बात नहीं। कल तो आप आ ही रहे हैं।" वेदन ने हँसते हुये उस गुण्डे को विदा किया किन्तु उसे 'आप' सम्बोधित कर प्रोफेसर साहब स्वयं लज्जित हो रहे थे किन्तु सोचते जाते थे—वह बात, जिसके आधार पर उन धूर्तों ने रीता के पिता के यहाँ से भी रुपये लिये होंगे और उससे भी ले गये। इस प्रकार के कर्म जो समाज में रात-दिन होते रहते हैं।

तभी वेदन ने देखा वे लट्ठधारी, भयंकर बदमाश वहाँ से चले गये। सन्तोष की एक साँस लेकर वेदन बोला—"राजीव! बेटा तुम यहीं रुकना मैं अभी आता हूँ।"

और वेदन बाहर चला गया।

× × ×

हास्पिटल में मालवीय का पता लगाने में प्रमदा को अधिक देर नहीं लगी। तब प्रमदा ने देखा—मालवीय के दोनों हाथ-पैर तथा माथा पट्टियों में लिपटा हुआ है और वह 'जनरल-वार्ड' के एक पलंग पर बेहोश पड़ा है।

नर्स बोली—"कल रात को इस पेशेन्ट का हालत सीरियस हो गया था। तब डाक्टर ने इसको ब्लड दिया। अभी ज्यादा ठीक नहीं है। कल से इसका किसी ने खबर नहीं लिया······आप अब आया है। इसको कोई पहचान भी नहीं पाया।"

अन्तर्वेदना से प्रमदा मौन-चीत्कार कर उठी। उसने मालवीय के सर पर प्यार का हाथ फेरा। मालवीय ने अपनी उस बेहोशी में भी उस स्नेह का प्रत्युत्तर दिया और एक कराह के साथ गर्दन हिला दी।

नर्स ने प्रमदा को वैसा करने से रोका।

तभी प्रमदा वहाँ से डाक्टर के पास गयी और बोली—"डाक्टर! सत्तरह नम्बर बेड के लिये एक प्राइवेट-वार्ड की व्यवस्था कीजिये, काइन्डली।"

एक नारी के उस साधिकार अनुनय पर डाक्टर ने तत्काल एक प्राइवेट कमरे की व्यवस्था कर दी। डाक्टर ने तदनन्तर विशेष तत्परता भी व्यक्त की। उसने नर्स व वार्ड-ब्वाय को अनेक निर्देश भी दिये और तब मालवीय को स्ट्रेचर पर लाद कर उस कमरे के पलंग पर लिटा दिया गया। मालवीय अब भी अचेत था।

"डाक्टर! कोई डेन्जर तो नहीं?" प्रमदा ने पुनः डाक्टर के पास आकर प्रश्न किया।

"इनको होश में आना चाहिये। मैं शाम के पहले कुछ नहीं कह सकता। क्या केस है? कुछ पता नहीं। आप लोग कहाँ थे?"

"डाक्टर ! हमें क्या पता ? मैं तो यों ही पेपर न्यूज देख कर यहाँ चली आई।"

"वाह, साहब ! घर का आदमी गायब और घर वालों को फिक्र ही नहीं !" डाक्टर ने दूसरे रोगी की ओर ध्यान देते हुये कह दिया।

प्रमदा ने चाहा कह दे—"काश, डाक्टर। इसके घर वालों में वह होती····· किन्तु······

तब उसने पुनः डाक्टर को टोका—"डाक्टर ! क्या मैं कुछ देर को घर जा कर लौट सकती हूँ ?"

"आपकी मर्जी की बात है। जब पेशेन्ट कल से ऐसे ही पड़ा था तब आपके थोड़ी देर को चले जाने पर क्या बिगड़ेगा, किन्तु पेशेन्ट के पास कोई न कोई घर वाला रहना चाहिये। कल रात को ही एक बार हमने डाइंग-डिक्लेरेशन लेने के लिये मैजिस्ट्रेट बुला लिया था। क्या आप अपना जाना रोक नहीं सकतीं ? फोन कर दीजिये !" डाक्टर ने मालवीय की दशा की गम्भीरता शब्दों में व्यक्त कर दी।

डाइंग-डिक्लेरेशन के लिये कल रात को मैजिस्ट्रेट बुला लिया गया था—सुनते ही प्रमदा ज्यों काँप गयी। एक पल को भी वह अब मालवीय से दूर नहीं होना चाहती थी किन्तु अनेक कारण थे। वह किसी के बन्धन में थी। उसे सूचना देनी थी। उससे अनुमति लेनी थी। किन्तु इस समय प्रमदा की दृढ़ता बढ़ रही थी। उसने सोचा—कोई परवाह नहीं। वेतन बिगड़ेगा तो बिगड़ लेगा किन्तु तत्काल कुछ रुपये भी चाहियें। हास्पिटल में खर्च पड़ेगा।

तभी वह ड्यूटी-नर्स को बहुत कुछ समझा कर अनेक प्रकार से अनुनय-विनय करके तत्काल लौटने को कह कर चली गयी।

जाते-जाते प्रमदा ने मालवीय के ओठ चूमे और घर की ओर शीघ्रता में बढ़ गयी।

२२

प्रमदा जब घर पहुँची तो वेदन घर पर नहीं था। मालवीय के बच्चे आँगन में खेल रहे थे। बड़ा लड़का राजीव एवं नौकर चिन्तामग्न स्थिति में निरन्तर खिड़की की राह सड़क पर देख रहे थे। राजीव को अपने पिता की सर्वाधिक चिन्ता थी। आँगन में पहुँचते-पहुँचते जब राजीव ने प्रमदा को देखा तो वह फफक कर रो पड़ा। प्रमदा ने उसे धैर्य बँधाते हुये सूचना दी कि उसके पिता उसके कथनानुसार अस्पताल में ही मिल गये हैं। चिन्तित होने की कोई बात नहीं है। वह अभी पुनः अस्पताल जावेगी तब राजीव को भी साथ ले जावेगी।

इतना कह कर प्रमदा ने एक क्षण भी खोना उपयुक्त नहीं समझा और वह सीधे छोटे कमरे में गयी। उसने देखा—कमरे का ताला टूटा पड़ा है। वह व्यग्रता में द्वार खोल कर अन्दर गयी तो उसने सूटकेस का ताला भी टूटा पाया। हड़बड़ी में उसने अपने ब्लाउजों की तहें लौटना प्रारम्भ कर दीं। तब उसने एक-एक कपड़ा खोल डाला, समूचा सूटकेस खखोल डाला—उसके रक्खे रुपये कहीं नहीं मिले। तत्काल उसे मालवीय का ध्यान आया और व्यग्रता में उसके नेत्रों में आँसू छलछला आये। हताश, वह कमरे के बाहर आयी और अवरुद्ध कंठ से उसने प्रश्न किया—"वो कहाँ गये ?"

"बाहर गये हैं। अभी-आने को कह गये थे।" मालवीय के नौकर ने कहा।

उस नौकर तथा राजीव दोनों ने प्रमदा की व्यग्रता का अनुभव किया और तब राजीव ने ही प्रकट किया कि उनके आने पर चाचाजी उस कमरे में चले गये थे तथा सूटकेस का ताला उन्होंने ही तोड़ा था। रुपये भी उन्होंने ही निकाले थे तथा नौकर ने यह बताया कि बाहर सड़क से एक आदमी को बुला कर बाबूजी ने दो सौ रुपये भी दिये तथा सौ रुपये कल देने का वचन दिया।

वह जीवन में पहला अवसर था जब प्रमदा की इस प्रकार चोरी हुयी थी अथवा विवाह के अनन्तर वह पहला दिवस था जब वह अपने पति के सम्बन्ध में विचित्र सी बातें सुन रही थी। रुपये वेदन ने निकाले इससे उसे कुछ विशेष सन्तोष नहीं हुआ क्योंकि उस समय उसे रुपयों की कितनी आवश्यकता थी; वह उसके अतिरिक्त कौन जान सकता था। उसे मालवीय के इलाज के लिये, प्राइवेट वार्ड के भुगतान के लिये तथा फल-दूध के लिये रुपये चाहियें थे। उसका मालवीय मरणासन्न पड़ा हुआ है। वह मालवीय को किस अवस्था में देख कर आई थी। वह ऊपर से नहीं अन्दर से रो रही थी।

अब उसके पास इतने पैसे भी शेष नहीं थे कि वह हास्पिटल जाकर ताँगे में लौट भी सके।......तब वेदन को, अनायास, रुपयों की क्या आवश्यकता आ गयी। अभी कल ही ग्वालियर जाते-जाते वह रुपये माँग ले गया था तब आज वह कौन व्यक्ति था—वह कैसा कार्य था जिसके हेतु उसे दो सौ रुपये तत्काल देने पड़ गये तथा सौ रुपये कल देने हैं। कालेज के प्रोफेसर तो कुछ ऐसे व्यापार-धन्धे करते नहीं हैं जिसमें उन्हें इस प्रकार की आवश्यकता हो और तब ये, बाहर के, लट्ठ वाले कौन लोग थे? उसे कुछ भ्रम तो प्रातःकाल ही हुआ था किन्तु क्या वेदन का किसी से झगड़ा हो गया है अथवा......। क्योंकि किसी व्यक्ति के पीछे

गुंडे क्यों लगते हैं; उन अनेक कारणों को वह नहीं जानती थी। इस सबके साथ ही वह इस समय उन विभिन्न झंझटों में अपना सर नहीं खपाना चाहती थी। उसे तत्काल हास्पिटल जाना था।

सर्व प्रथम उसने राजीव व मालवीय के नौकर को यह निर्देश किया कि वे किसी से यह न कहें कि उनके बाबूजी हास्पिटल में हैं ·····। इसके पश्चात् प्रमदा की गाड़ी फिर अटक गयी। अब वह क्या करे? कहाँ जावे! उसका किसी से ऐसा सम्बन्ध भी नहीं कि किसी से कुछ रुपये ले लेवे। तब ·····

उसकी इस चिन्ता को राजीव ने कुछ-कुछ समझने की चेष्टा की और पूछा—"चाची जी! क्या चाचाजी ने आपके रुपये निकाल लिये?"

प्रमदा ने राजीव को कोई उत्तर नहीं दिया और वह विचारमग्न-स्थिति में बड़े कमरे में पड़े तखत पर जाकर बैठ गयी।

क्रेप की चप्पलें भूमि पर टेके प्रमदा पाँच-सात मिनट वैसे ही किसी ध्यान में डूब गयी। उसे उस समय रुपये कहाँ से प्राप्त हो सकते हैं—इस सोच में उसने दस-बीस-पचास स्थानों का ध्यान कर लिया। अमुक मिसेज कपूर से रुपये मिल सकते थे किन्तु वह बम्बई गयी है।·········मिसेज मालती इस समय अपने फड़ पर गयी होगी। न भी गयी होती तब भी यों चाहे वह पचासों रुपये ताश में हार आवे किन्तु प्रमदा जानती थी कि वैसे वह किसी को एक धेला नहीं दे सकती। प्रमदा को तो कभी आवश्यकता पड़ी नहीं किन्तु मालती की अन्य परिचिताओं को उसने दो-चार अवसरों पर देखा था कि उसने स्पष्ट 'न' कर दिया। वैसे यदि वह चाहे तो सौ-दो सौ नहीं दो-चार हज़ार निकाल कर दे सकती है। यों भी मिसेज मालती के पति लाखों की सम्पति छोड़कर मरे हैं और फिर उसका अब वह रेस खेलने वाला प्रेमी······उसे नोटों से लादे रहता है। किन्तु, प्रमदा अपने किसी कार्य के लिये उससे एक पाई भी नहीं लेगी। वह उसके जीवन की उस प्रकार की पहली आवश्यकता थी।····· और फिर जब वह वेदन से ही नहीं कह सकती तो कहेगी किससे। किन्तु किसी से

कहेगी नहीं तो करेगी क्या? इस समय मालवीय को देखने वाला है कौन?

तभी, अचानक राजीव ने तख़्त पर बैठते हुये कहा—"चाचीजी! बाबूजी की कपड़ों की आल्मारी में सात आठ सौ रुपये रक्खे हैं। मैंने रात को ही देखे थे। आप वो ले लीजिये।......आपको बाबूजी के पास भी तो जाना होगा।......बाबूजी कैसे हैं?" कहते-कहते वह दस-ग्यारह वर्षीय चतुर बालक रो पड़ा।

प्रमदा ने उसे अपनी छाती से चिपका लिया। इस पर वह और सिसकियाँ भरने लगा। प्रमदा राजीव को वक्ष से लगाये थी और पल-पल मालवीय का ध्यान करती जा रही थी। वह सोच रही थी—उसके रुपये यों लुट गये। जैसे उसका, इस समय सब कुछ चला गया। ऐसे में मालवीय के रक्खे रुपये लेकर मरणासन्न मालवीय पर व्यय करना कैसा अशोभनीय है.....कैसा? किन्तु और उपाय भी क्या है? और हो भी क्या सकता है? सोच-विचार में अधिक समय नष्ट करना भी अनुपयुक्त है—अतः वह तत्काल उठ खड़ी हुयी। उसने मालवीय के नौकर से कहा—"देखो, बाबूजी आवें तो कहना बहू जी आई थीं और राजीव को लेकर कहीं गयी हैं। और कुछ मत कहना......बच्चों को यहीं रखना। चलो राजीव!" कह कर प्रमदा राजीव को लेकर चल दी।

प्रमदा व राजीव मालवीय के घर आये। वहाँ एक समझदार बालक की भाँति राजीव ने अपने पिता की आलमारी खोल कर लगभग आठ सौ रुपये प्रमदा को दे दिये। प्रमदा ने राजीव को चूम लिया।

तब राजीव ने आल्मारी का ताला बन्द करते-करते कहा—"चलिये, चाची जी।"

प्रमदा राजीव को देखकर सोच रही थी—कैसा प्यारा बच्चा है, कितना समझदार। बिना माँ के और अधिक समझदार हो रहा होगा। बेचारा सब में बड़ा है जैसे मालवीय के कालेज चले जाने पर गृहस्थी में

सब में बड़ा। तब घर में देखभाल करता रहता होगा, अपने छोटे भाई-बहन को सँभालता होगा और पढ़ता भी होगा। तभी प्रमदा के हृदय में पहली भावना उत्पन्न हुयी—'काश वह भी एक लड़के की माँ होती······'

तभी अचानक उसका जी घबड़ाने लगा। उसने प्रातः से ही जलपान नहीं किया था और अब ग्यारह बज रहे थे। प्रमदा ने राजीव से एक गिलास पानी माँगा।

"चाची जी! खाली पानी मत पीजिये। कुछ खा लीजिये।······ हमारा नौकर नन्दू बहुत होशियार है। वह बहुत अच्छा खाना बनाता है। हम लोगों के लिये नाश्ता वगैरह वही बनाता है। मैं आपके लिए अभी जलपान लाता हूँ।" कहते हुये राजीव रसोई की ओर बढ़ गया।

"नहीं, नहीं। मैं कुछ खाऊँगी नहीं। इस समय एक-एक क्षण बहुत कीमती है। तत्काल हास्पिटल जाना है। मुझे केवल पानी दे दो।" कहकर प्रमदा राजीव की मीठी बोली और व्यवहार-कौशल को देखकर मुग्ध होती चली जा रही थी। वह एक लड़के की माँ होती—इस क्षण, यह उत्कट इच्छा अपने जीवन में प्रथम बार हो रही थी।

कहते-कहते भी राजीव एक प्लेट में दो मठरी, दो बिस्कुट और नन्दू की बनाई थोड़ी सी मीठी बूंदी ले आया।

"लीजिये, खाइये चाची जी!" राजीव ने अनुरोध सहित कहा।

"राजीव मैं कुछ नहीं खाऊँगी। केवल पानी पिऊँगी······!" कहते हुये प्रमदा ने पानी का गिला राजीव से ले लिया और ध्यान करती रही—वो, मेरे वो—कल से यों ही पड़े हैं। प्रमदा के नेत्र छलछला आये और वह गट-गट कर पानी पी गयी।

"आपको मेरी कसम है, यह खाना पड़ेगा।" कहते-कहते राजीव ने प्रमदा का पल्ला पकड़ लिया।

प्रमदा को लगा राजीव में जैसे उसकी माँ बोल रही है। मधुर भी ऐसे ही अनुरोध करती थी। ऐसे ही कसम दिलाती थी। ऐसे ही बिना

खाये कभी नहीं जाने देती थी और राजीव का स्वर भी अपनी माँ से बिलकुल मिलता है। यह सब सोचकर प्रमदा का हृदय पत्थर से भारी बोझ की भाँति भरता चला जा रहा था।

"चलो राजीव! जल्दी चलो। मैं इस समय कुछ नहीं खाऊँगी।"

"आपको खाना पड़ेगा। तभी मैं खाऊँगा। मैंने सुबह से कुछ नहीं खाया है।

"क्यों? और राकेश तथा रजनी ने?"

"उनको मैंने खिला दिया।"

"तब तुमने क्यों नहीं खाया।

राजीव ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया और बोला—"चलिये, चाची जी। बाबू जी के पास चलिये·········क्या उनके बहुत चोट आयी है?"

'अधिक चोट आयी है'—कहकर क्या प्रमदा उस मीठे-भोले बच्चे का जी तोड़ दे; अतः वह मौन हो रही।

प्रमदा सोचती चली जा रही थी—बिना माँ के बच्चों का जीवन। फिर भी किस भली प्रकार सँभालता रहता है राजीव। मालवीय कैसी स्थिति में है? फिर भी कैसी बनी-चुनी दिख रही है उसकी गृहस्थी—यह घर। इस समय प्रमदा को मधुर की अत्यधिक याद आ रही थी।'······ जाने में शीघ्रता करने पर भी यह सुन कर कि चिन्ता में राजीव ने सुबह से कुछ नहीं खाया है—प्रमदा के पग आगे न बढ़ सके। इतने छोटे बच्चे की जान ही कितनी। तब प्रमदा ने कहा—"अच्छा मैं खाती हूँ। तुम भी खाओ।" कहते हुये उसने बिस्कुट का एक टुकड़ा उठा लिया।

राजीव अन्दर गया और रसोई से अपने लिये एक प्लेट और लगा लाया।

"इसी में खाओ। मैं इतना सब थोड़े ही खाऊँगी।"

"आपको खाना पड़ेगा।" कहते-कहते राजीव अपनी प्लेट से बिस्कुट उठा कर खाता रहा।

× × ×

मकान से नीचे उतर कर प्रमदा ने सामने से जाते हुये एक खाली रिक्शे वाले को पुकारा किन्तु राजीव ने तत्काल रोकते हुये कहा—"चाची जी, रिक्शा नहीं। हम लोग ताँगे में चलेंगे। रिक्शा कोई अच्छी सवारी नहीं है। आप रोज सुनती होंगी—कभी रिक्शा उलट गया। कभी रिक्शे से किसी के चोट आ गयी। देखिये, कल बाबू जी के ही चोट आ गयी। पता नहीं कल बाबू जी रिक्शे में क्यों बैठे। वैसे तो वे रिक्शे के बहुत विरोधी हैं। हम लोगों को भी मना करते हैं। अधिक पैसे देकर मुझे ताँगे में अकेले स्कूल भेज देंगे परन्तु रिक्शे में नहीं भेजेंगे।"

राजीव के कहने पर प्रमदा ने रिक्शे वाले को मना कर दिया किन्तु सोचने लगी ताँगा कहीं निकट मिलेगा नहीं। तब और विलम्ब होगा। और हास्पिटल में मालवीय न जाने किस स्थिति में हो।

सौभाग्य से दस-पाँच पग चलने पर ही एक खाली ताँगा मिल गया और प्रमदा तथा राजीव उसमें बैठकर हास्पिटल चल दिये।

मार्ग में प्रमदा ने राजीव से कहा—"तुम्हारे बाबूजी ठीक कहते हैं। तुम्हें वैसा ही करना चाहिये किन्तु जहाँ तक किसी संकट अथवा घटना का प्रश्न है वह रिक्शा, ताँगा, कार, हवाई जहाज अथवा घर-पर बैठे-बैठे भी हो सकती है......।"

"किन्तु हमें अपनी ओर से सावधानी तो बरतनी ही चाहिये।" राजीव कह गया।

राजीव के उस उत्तर पर मन ही मन प्रमदा ने मुग्ध होकर मौन साध लिया। राजीव भी बाज़ार की दूकानों में उलझ गया।

हास्पिटल पहुँचने पर प्रमदा ने देखा—कमरे में मालवीय का पलंग खाली पड़ा है। वह धक् से रह गयी। क्या हुआ? मालवीय कहाँ है।

तत्काल वह कमरे के बाहर आयी। घबड़ाते हुये वह जनरल-वार्ड की उसी परिचिता नर्स के पास गयी।

नर्स ने कहा—"पेशेन्ट एक्स-रे रूम गया है।"

जैसे प्रमदा का जीवन लौट आया।

"……आपके जाने के बाद पेशेन्ट को होश आ गया था। तभी से उसके पैर में बहुत दर्द था। डाक्डर ने फौरन एक्सरे सजेस्ट किया है।"

"पेशेन्ट को अब होश है ?" प्रमदा ने प्रश्न दोहराया।

"यस।"

"थैंक यू।" कहकर प्रमदा नर्स के पास से लौट आयी। राजीव साथ था। प्रमदा ने सोचा एक्सरे-रूम चले किन्तु इधर-उधर भटकने के स्थान पर उसने कमरे में ही प्रतीक्षा करना उपयुक्त समझा और वह कमरे में जाकर कुर्सी पर बैठ गयी। दूसरी कुर्सी पर राजीव बैठ गया।

"चाची जी ! क्या बाबूजी ऐक्सरे कराने गये हैं ?"

"हाँ।" और प्रमदा ने ध्यान किया कि राजीव ने नर्स की बात समझ ली है।

"देखिये चाची जी ! एक बार मैं स्कूल में सीढ़ी से फिसल गया था तब मेरी इस हाथ की हड्डी टूट गयी थी। तब बाबूजी ने एक्सरे कराया था। लेकिन बाबूजी यहाँ तो नहीं आये थे।……क्या एक्सरे सब डाक्टरों के पास होता है ?"

"नहीं। इसके विशेष डाक्टर होते हैं और यह खास-खास जगहों में ही रहता है।"

"हाँ।" बड़े भोलेपन से राजीव कह गया और कुर्सी पर से उछल कर कमरे के साथ लगे बाथरूम में जा पहुँचा। राजीव इस समय सफेद लट्ठे का पाजामा तथा मलमल का कुर्ता पहने था जिसके कन्धों, गले तथा बदन की जगह पर लखनऊ-चिकन का कढ़ाव हो रहा था। उसकी बाहें भी चुनी हुयी थीं। इस वेश में राजीव बड़ा प्रिय लग रहा था। ऊपर

से जब वह मिठास भरी बोली बोलता था तो प्रमदा का जी चाहता था कि उसे बारबार चूम ले।

प्रमदा का बनाव-चुनाव सादा किन्तु आकर्षक था। वह शरबती रंग की काश्मीरी रेशम की साड़ी पहने थी जिसकी चुन्नट तथा किनारे और पल्ले पर हरे रंग का छापा था। उसके माथे पर की लुभावनी बिन्दी से थोड़ा हटकर एक-दो गेसू घूमे हुये थे जो बड़े भले लग रहे थे। इस समय उसके चिन्ता में भरमाये नेत्रों में भी एक दमक थी किन्तु सुबह से ही आज कई बार उसका जी मिचला चुका था। इससे उसकी नाक व माथे पर कई बार सलवटें पड़ जाती थीं। वह मोटे क्रेप की हरी पट्टियों की चप्पलें पहने थी और एक पैर भूमि पर रक्खे थी तथा दूसरे की चप्पल उतार कर वह पैर घुटने पर रक्खे हुये तथा बायाँ हाथ कुर्सी पर रख कर उसकी गदेली पर अपनी ठोड़ी टिकाये विचारमग्न बैठी हुयी थी।

अनायास ही द्वार खुला और एक स्ट्रेचर अन्दर लाया गया। उस पर लेटे मालवीय को देखकर प्रमदा कुर्सी पर से उठ खड़ी हुयी। राजीव ने भी अपने पिता को देखा। राजीव ने अपने पिता को देख लिया; इतना पर्याप्त था। उनके कहाँ—कितनी, चोट लगी है इसकी उसे विशेष चिन्ता न थी।

किसी प्रकार, बड़ी कठिनाई से, प्रयत्न करके चार व्यक्तियों ने मालवीय को स्ट्रेचर से उतार कर पलंग पर लिटाया।

स्ट्रेचर लाने वाले जा चुके थे और बेहोशी दूर होने के बाद मालवीय अब कराह रहा था। पट्टी से उसकी बाईं आँख बन्द हो रही थी। तभी मुँह घुमा कर उसने प्रमदा को देखा। अनायास ही उसके हाथ ऊपर उठ गये। प्रमदा ने मालवीय के कष्ट को देखा और पलक मूँद लिये। ......कुछ क्षण के अनन्तर जब उसने नेत्र खोले तो राजीव अपने पिता का मुँह चूम रहा था। मालवीय, राजीव को दोनों हाथों से, वक्ष पर चिपकाये था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मालवीय के हाथों पर चोट नहीं थी।

तभी अकुला धीमे से मालवीय ने हाथ के संकेत से बताया कि चोट दोनों पैरों, माथे, पीठ तथा सर में आई है।

प्रमदा ने तत्काल अपनी कुर्सी आगे खींच ली और मालवीय का बायां हाथ लेकर अपनी पलकों पर फेर लिया। तब देर तक वह उसका हाथ अपने हाथ में लिये बैठी रही। कोई एक दूसरे से बोला नहीं। तभी कमरे की निस्तब्धता दूर हुयी—"तुम्हें कब पता लगा ?"

"सुबह......।" प्रमदा ने उत्तर दिया।

"कैसे ?"

"पेपर से।"

"क्या पेपर में छपा था ?"

तभी प्रमदा ने मालवीय को वह सब कुछ कह सुनाया जो सुबह से अब तक बीता था। रुपये की बात उसने जानबूझ कर नहीं बताई।

इसके पश्चात्—"अभी आई।" कहकर प्रमदा कुछ ध्यान करके कमरे के बाहर चली गयी।

बाहर आकर प्रमदा हास्पिटल के आफिस में गयी और आवश्यक रुपये जमा करके लौट आयी। तब तक राजीव अपने पिता को तथा मालवीय राजीव को दुलराते रहे। प्रमदा को लगा मालवीय अब ठीक है। वह ठीक हो जावेगा।

२३

उस दिन प्रमदा शाम तक घर नहीं लौटी। उसने यह चिन्ता भी नहीं की कि उसके तथा मालवीय के अतिरिक्त भी संसार में कोई है। न मालवीय ने ही यह ध्यान किया कि प्रमदा के अतिरिक्त संसार में उसका कोई है। राजीव ने भी न राकेश का ध्यान किया न रजनी का। इस बीच, डाक्टरों तथा नर्सों की व्यस्तता निरन्तर बनी रही। जनरल वार्ड से प्राइवेट वार्ड में आकर वैसे भी अस्पताल-कर्मचारियों के व्यवहार में स्वभावतः परिवर्तन आ जाता है। वह जैसे नियम बना हुआ है। उस पर प्रमदा ने उस कमरे में नियुक्त नर्स से कह दिया था कि वह मरीज़ की आवश्यकता से अधिक देखभाल करे। उसे प्रमदा बहुत प्रसन्न करेगी।

प्रमदा ने डाक्टर से भी कहा—"डाक्टर! कोई भी उपचार—कैसा भी ट्रीटमेन्ट आवश्यक हो, कीजिये।"

तब जब हास्पिटल में धन व्यय हो तो क्या कुछ उपलब्ध नहीं हो सकता। कल से मालवीय की देखभाल हुयी अवश्य थी किन्तु अब क्षण-क्षण पर नर्स-डाक्टर आ रहे थे। यहाँ तक कि मीठे दुलार में भी अब बाधा उपस्थित हो गयी थी। एक नर्स तो निरन्तर बनी रही। वह बार-बार घूम फिर कर आती, मरीज़ से नहीं प्रमदा से अनेक प्रकार के प्रश्नोत्तर करके लौट जाती।

राजीव कभी कमरे में रुकता तो कभी उछल कर हास्पिटल भर में

चक्कर काट आता तब लौट कर प्रमदा का सर खाता। "चाची जी, यह क्या है ?"—"चाची जी, वह क्या है, क्यों है ?"

× × ×

व्यक्ति जब दुराचरण की ओर अग्रसर होता है तो उसमें सब ओर से पैठ जाना चाहता है। तब वह उसमे आकंठ डूब जाने पर भी बचाव के लिये हाथ-पैर पटकने के स्थान पर और गहरे में बढ़ते चले जाना चाहता है। तब अपने कृत्य के प्रति पश्चाताप के स्थान पर वह उसकी पुष्टि के हेतु आतुर हो उठता है। तब अपने दोष की स्वीकृति तो मानव-स्वभाव के बहुत परे की वस्तु है।

वेदन ने उस बला को काटने के लिये, उस समय दो सौ का तीर तो फेंक दिया, किन्तु जब वह अपनी सीढ़ियों से उतरने की स्थिति में आ गया तो सबसे पहले पुलिस-स्टेशन जाकर उसने यह रिपोर्ट लिखायी कि कुछ अन्जान गुण्डे उसके पीछे लगे हुये हैं जो उसे मारने की धमकी देते हैं। उसे अपने जान-माल का खतरा है। शेष तो पुलिस-स्टेशन पर रिपोर्ट लिखने वाला स्वयं ही भाषा-भाव बना देता है तथा इंडियन पेनल-कोड की सब सम्भावित धारायें जोड़ देता है।

पुलिस-स्टेशन से निकलने पर वेदन ने सोचा दिग्विजय हो गयी। सब आपदाओं से मुक्ति मिल गयी। अब वह निर्भय है। किन्तु कुछ दूर आगे बढ़ते ही परम यशस्वी सुन्दरलाल के दर्शन हो गये। उनकी तस्वीर बड़ी पिटी सी हो रही थी और वार्तालाप से तत्काल ज्ञात भी हुआ कि भाई ! भली प्रकार से पीटे भी गये हैं।

रीता के घर वालो ने क्या सोच कर वह सब किया वह तो वे जानें किन्तु रीता के पिता की मृत्यु की सी शान्ति में भी उसके भाई में अत्यधिक रोष भरा हुआ था। उसने ग्वालियर से लौट कर न जाने रात में ही क्या व्यवस्था की कि भोर होते-होते वेदन व सुन्दरलाल दोनों के घरों की ही खबर ली गयी। वेदन के घर पर लठैत तैनात किये गये थे तथा सुन्दर लाल के घर पर जूते फटकारने वाले दो भलेमानुस। और बेचारे गरीब

सुन्दरलाल के घर से पदार्पण करते ही, बीच बाजार में, सुबह-सुबह ही, बीस-तीस-चालीस जूतों से, खोपड़ी, मुँह, कमर, पैर, कनपटी की मरम्मत की गयी। वेदन ने तो अपनी पत्नी के संचित कोष से अपनी आशिक-मिजाजी का सौदा कर लिया, किन्तु बेचारा बीच का एजेन्ट सुन्दरलाल अपनी इस एजेन्टी में ठुक गया। उसका वह सड़क पर चलते-चलते बड़बड़ाना भी बन्द था क्योंकि ओंठ व मुँह सूजा हुआ था और वह ताजा-ताजा पिटा चला आ रहा तथा किसी डाक्टर की खोज में एक बेंत के सहारे लड़खड़ा रहा था।

वेदन ने सुन्दरलाल को देखते ही कुछ तो समझा और कुछ सुन्दरलाल ने समझा दिया।

"वाह ! तुम भी उल्लू हो। किसी भी प्राइवेट डाक्टर के पास नहीं जाना चाहिये। सीधे हास्पिटल जाना चाहिये। वहाँ सांघातिक चोट लिखा कर दस-पाँच दिन के लिये भर्ती हो जाना चाहिये। साथ ही डाक्टर की रिपोर्ट पर ही पुलिस में रिपोर्ट करनी चाहिये और तब डाक्टरी सार्टीफिकेट को अदालत में प्रस्तुत करना चाहिये।"

"मैं ? मैं तो पूरा उल्लू हूँ। पिटा भी और तब उतनी सब परेशानी भी मोल लूँ। हास्पिटल जाऊँ। व्यर्थ दस-पाँच दिन वहाँ भर्ती होऊँ। खर्चा करूँ......!" भर्राये गले से सुन्दरलाल कहता रहा।

"उसकी चिन्ता तुम मत करो। वह मैं करूँगा। यह लो पचास रुपये।......लेकिन मैं कहता हूँ तुम कितने गधे हो। तुमसे किसने कहा था कि तुम ग्वालियर स्टेशन पर बजाय इसके कि आराम से फर्स्ट क्लास वेटिंग रूम में बैठते—प्लेटफार्म पर टहलो। वहीं उस कम्बख्त जीवन के बच्चे ने तुम्हें देख लिया। वर्ना उसका बाप भी पता नहीं लगा पाता। रहा-सहा उस ताँगे वाले के बच्चे ने होटल बता कर सत्यानाश कर दिया......लेकिन सुनो, रीता का क्या हुआ होगा ?"

"हुआ क्या होगा ? हार-मालायें पहनाये जा रहे होंगे। तुम भी क्या

बात करते हो। वह कोई उसका नया धन्धा था। कहो आज पकड़ गयी। तुम्हारे सर हत्या आनी थी—आ गयी। मुझे पिटना था--पिट लिया" घर वाले करेंगे क्या ? घर से तो निकाल नहीं देंगे। अभी तो उसके नाम पर एक दिन सजावट होनी है, बैंड बजने हैं, द्वारचार-मंगलाचार होने हैं। एक दिन कोई वरमाल पहनने को भी तो फँसेगा। इतनी बड़ी दुनिया पड़ी है। आदमी का काम बिना औरत के चलता कहाँ है······।" सुन्दरलाल में आज जीवन की समस्त यथार्थता—सारी दार्शनिकता प्रकट हो रही थी। स्वयं समाज रूपी शतरंज की कौन सी गोट है और कहाँ टिके है उसका उन्हें भी पता नहीं था। वे इस समय यह कहने को तत्पर न थे कि वह वरमाला पहनने वाला भी तो कभी ही कहीं नहीं······सम्भवतः अनेक बार ही न जाने कितनी भुजाओं की माला पहन कर द्वारचार को पहुँचता है। अब यह क्रम है। समाज के कोई नियम, कोई बन्धन, कोई व्यवस्था इस सब को रोक पाने में असमर्थ है।"

"आज तो ज्ञान-वायु में हो, सुन्दरलाल।"

"हाँ, पिट कर हो गया हूँ।" कहते हुये सुन्दरलाल ने अपने बायें हाथ से दाहिना कन्धा दाब लिया और मुँह का अष्टकोण बना डाला।

"बहुत दर्द है, सुन्दरलाल। चलो, जल्दी हास्पिटल चलो······।"

"देखिये। अब आप मुझ पर कृपा कीजिये। अब मैं आप के साथ कहीं नहीं जाऊँगा।"

"सुन्दरलाल!" गुर्राते हुये वेदन बोला।

"क्या है?" ऐंठते हुये सुन्दरलाल ने उत्तर दिया।

"तुम्हें हास्पिटल चलना होगा।"

"वाह अच्छे रहे। अच्छी जगह लिये जा रहे हैं। सुन्दरलाल! तुम्हें हास्पिटल चलना होगा।" सुन्दरलाल ने कहते हुये पुनः उस कन्धे को ही दाब लिया। पीड़ा अधिक थी।

"सुन्दरलाल ! देखो मान जाओ। लापरवाही नहीं करनी चाहिये। आजकल, जरा देर में टेटेनस या सेप्टिक हो जाता है।" वेदन ने मन ही मन मुस्करा कर कहा।

"यह टेटेनस क्या होता है ?" सड़क पर किनारे हटते हुये सुन्दरलाल ने प्रश्न किया।

"हः। भगवान न करे किसी को हो। ज़रा से घाव से बढ़कर टेटेनस हो जाता है। आदमी धनुष की तरह तड़प-तड़प कर दोहरा होते-होते कुछ ही घंटों में मर जाता है......।"

"और यह 'सेप्टिक' तो ज़हरबाद होता है। हे भगवान !" भय में सुन्दरलाल ने आँखें फाड़ लीं।

सुन्दरलाल या तो जानता नहीं था या बन रहा था कि जूतों की बन्द मार में कहाँ का घाव, कहाँ का सेप्टिक और कहाँ का टेटेनस।"

"टेटेनेस के एन्टी टेटेनस-इंजेक्शन लगवा लो, सुन्दरलाल ! कम से कम तीन।"

"सुइयाँ भी भुकवानी पड़ेंगी।"

"जैसे करम करोगे वैसा ही फल मिलेगा।"

"ओ हो ! तुम्हारी क्या बात है ?" सुन्दरलाल बोला।

किन्तु वेदन मन ही मन मुस्करा रहा था। उस पर कहाँ टेटेनस का प्रकोप हो रहा था, कहाँ सेप्टिक हो रहा था, कहाँ इंजेक्शन लग रहा था—उस अज्ञातावस्था का उसे भान भी न था। व्यक्ति की यही स्थिति न हो तो या तो वह लोगों को फाड़ खावे या स्वयं मर जाय। वस्तुतः यह अज्ञान ही जीवन की गति है। यदि मनुष्य सब कुछ जान जाय तो न कुछ कहे न कुछ होने दे। तब परम सात्विकता जीवन की जड़ता का दूसरा नाम होगा।

सुन्दरलाल इस समय बहुत ही घबड़ा गया था। उसके मन में एक खटका उत्पन्न हो रहा था कि कहीं सचमुच कोई नई बीमारी न खड़ी हो

जावे। सुन्दरलाल यों अपने जीवन से ऊब चुका था। वह महा मूर्ख किस्म का आदमी था। उसके आगे-पीछे कोई नहीं था। एक बूढ़ी माँ जो लगभग दो वर्ष हुए उससे ऊब कर संसार से विदा ले चुकी थी। उसकी पत्नी शादी से आने के दूसरे महीने ही स्वर्गलोक सिधार चुकी थी। वह भी एक महान घटना थी। अपनी युवावस्था में सुन्दरलाल को एक लड़की से मोहब्बत का लगाव हो गया था। जिस दिन सुन्दरलाल अपनी पत्नी को सुसराल से पहली बार विदा करा कर घर पहुँचा उसके दूसरे दिन उसे ज्ञात हुआ कि जिस लड़की से वह इतराया करता था उसकी शादी तय हो गयी है। बस, जैसे छोटे बच्चे झुनझुने के लिये मचलते हैं वैसे ही सुन्दरलाल जी मचल गये। "यह कैसे हो सकता है? मैं प्राण दे दूँगा। मैं प्राण ले लूँगा। उसको कोई हाथ लगा कर तो देखे। देखें! कैसे शादी होती है? खून हो जायगा। मुझे तपेदिक हो जायगा। मैं मर जाऊँगा। मैं भूख हड़ताल कर दूँगा। मैं उसे—मैं, मैं, मैं।"

यह हल्ला-गुल्ला सुन्दरलाल के घर पर तो मचा ही जिसे सुन्दरलाल के घर वालों ने वेदवाक्यों की भाँति सुना। उनकी नव-पत्नी ने भी सुना कि उसके बालम किसी अन्य लड़की से मोहब्बत करते हैं। बस, वह अन्दर ही अन्दर सुलग गयी। उसने मूर्खता में सुन्दरलाल से दो हाथ अधिक दिखाये। मायके से सुसराल आने पर जब वह एक सप्ताह में घर में नई-पुरानी हो गयी। वह गुटरगूँ करके घरवालों से बोलने लगी तभी उसने अपने रूप दिखाने प्रारम्भ कर दिये और—"मैं मर जाऊँगी। मैं प्राण दे दूँगी। फिर शादी क्यों की थी? एक से मोहब्बत हो सकती है। हाय-हाय दो-दो औरतों से दोस्ती। ऐसा अन्याय। मैं बाप के घर चली जाऊँगी। मुझे मेरी माँ के यहाँ भेज दो—तब मौज करो। मैं इस घर—इस कस्बे में एक मिनट भी नहीं रहूँगी।" और सबसे प्रारम्भ तथा सब से अन्त में एक रामनामी—"मैं मर जाऊँगी।" और वह सचमुच मर गयी।

गाँव-कस्बे का मामला था। एक दिन वह लड़की सुन्दरलाल के घर चली आयी। वह आयी भी सुन्दरलाल को मना करने थी कि गाँव में इतना तूफान क्यों मचा रखा है। अब जब सुन्दरलाल की शादी हो गयी है तो वह उसकी शादी होने से उसे रोकने वाला होता कौन है? फिर वैसे भी किसी की शादी रोकने वाला सुन्दरलाल कौन होता है? उसकी इतनी बदनामी कर दी है। अब तो चुप हो जाय······। किन्तु सुन्दरलाल के मस्तिष्क के सब पेंच ढीले थे। वह सबके सामने ही चिल्ला उठा—"तेरी शादी नहीं हो सकती, नहीं हो सकती, नहीं हो सकती।"

उस लड़की ने पूछा—"तब होगा क्या?"

सुन्दरलाल का उत्तर था—"ऐसी की तैसी।"

इस पर वह लड़की कहीं मुस्करा दी। भाई सुन्दरलाल जी भी खिल-खिला दिये और उसी जीत में वे बाहर की बैठक में चले गये। लड़की थोड़ी देर घर में रुकी तब चली गयी।

इसके बाद उसी शाम सुन्दरलाल की ऐसी की तैसी सचमुच हो गयी और समूचे कस्बे में कोहराम मच गया—"सुन्दरलाल की मेहरिया कुईंया में डूब कर मर गयी—सुन्दरलाल केर मेहरारू कुँआ माँ डूब कै मरि गै—सुन्दरलाल की पत्नी ने आत्महत्या कर ली।"

तब सुन्दरलाल—रोते-रोते उस गाँव से दफन हो आये और आगरे में रहने लगे। उस लड़की की भी शादी हो गयी। अब यहाँ म्युनिसिपल बोर्ड की चपरासगीरी से लेकर सुन्दरलाल ने न जाने कितने धन्धे किये और छोड़े। अन्त में किसी ने उन्हें बीमा-कम्पनी में ढकेल दिया। उस कार्य को वे बड़ी सफलता पूर्वक इस क्षण तक सम्पन्न कर रहे थे जिसकी झोंक में अभी-अभी मार खाये चले आ रहे थे।

सुन्दरलाल भी बेचारे इंसान थे। पाव भर अन्न खाते थे। उसकी गरमी उनको भी चढ़ती थी। उनका 'सेक्स' भी जाग्रत होता था। किन्तु हँसने-बोलने के अतिरिक्त सुन्दरलाल परमहंस पद प्राप्त किये हुये थे।

साहस के कच्चे, बातचीत के तेज आधे पागल सुन्दरलाल को चलते-फिरते, खड़े रहते, बैठते, सोते—बक की बीमारी हो गयी। "वह गयी—वह गयी—वह चली गयी—और वह···मर गयी।"—बस इतने से सुन्दरलाल को जीवन के सब आनन्द, सारी विरह-वेदना, सब कष्ट मिलते भी और नष्ट भी हो जाते।

इधर माँ ने भी साथ छोड़ दिया। ऐसा पुत्र पाकर बेचारी कहाँ तक अपना भाग्य सराहती। एक दिन सुन्दरलाल का हृदय किसी बात से इतना प्रसन्न हुआ कि उन्होने सोचा माँ की सेवा करनी चाहिये। बुढ़िया को कुछ खाने-पीने की चीज ले जायी जाय। बड़बड़ाहट में—होता यह था कि सुन्दरलाल जो सोचते थे वह एक बार ओठो की राह बाहर निकाल कर तब उस कार्य को प्रारम्भ करते थे। अस्तु, उस समय सुन्दरलाल का जो सर घूमा तो सामने ही, फुटपाथ पर, एक चाट वाला बैठा दिखाई दे गया। वह—उबले मटर, खट्टे दही के बड़े; बेसन की पकौडियाँ; सड़े अमचूर की चटनी; कीड़े पड़े पालक की पकौड़ियाँ; बैंगनी; बुसी हुयी पिट्ठी के, तेल की खस्ता-कचौड़ी; तथा और भी अगड़म-बगड़म—रक्खे बैठा था। उस पर सब तरफ से दौड़ कर मक्खियों के झुंड के झुंड वहीं एकत्र हो रहे थे। सुन्दरलाल ने तत्काल दूर ही से एक अठन्नी फेंकी जो चाट वाले के दाहिने अँगूठे पर खट्ट का शब्द करती हुयी उसके गल्ले में सीधे जा पहुँची। एक पल को चाट वाले ने अपना अँगूठा सहलाया। किन्तु थोक व्यापारी का ध्यान कर सुन्दरलाल की ओर ललचाई दृष्टि से देखने लगा। न उसको वैसे ग्राहक मिलते थे न ही सुन्दरलाल ने कभी चाट खरीदी थी। हाँ, कभी-कभी खायी अवश्य थी। जब दूसरों को सुन्दरलाल से कोई गम्भीर कार्य लेना होता था तो सुन्दरलाल की प्रिय वस्तु चाट पर दुअन्नी खर्च कर देना पर्याप्त होता था।

तब—"ऐ! आठ आने का सब सामान दे दो।····· देखो मिर्च कम, नमक तेज़ और दही-खटाई खूब डाल देना।"

चाट वाला उधर दोने पर दोने तैयार करने लगा इधर सुन्दरलाल ने खम्भे के सहारे खड़े होकर अपने ओठ फड़फड़ाना शुरू कर दिया—"आज माँ खुश हो जायगी। एँ, है न। हाँ, आज वह खुश हो जायगी।"

तब सुन्दरलाल का विरह जाग्रत हो गया—"वह चली गयी, चली गयी—चली गयी और वह······मर गयी।"

तब सुन्दरलाल को दिन का काम याद आया —"तो रामप्रसाद का कल फार्म भरना है। बद्री से चेक लेनी है······।"

"और—और यह साला चाट वाला······इतनी देर क्यों लगा रहा है?"

चाट वाला चौंका। उसने अपना सर घुमाया तो आवाज़ आयी—"क्यों जी, क्या कर रहे हो? अभी चाट तैयार नहीं हुयी।"

"हो गयी बाबू जी। हो गयी। मैं समझा आप किसी से बातें कर रहे हैं······।"

और सुन्दरलाल दही-चटनी से लबालब चाट के पत्ते लेकर माँ की सेवा के लिये घर चल दिये।

वह बेचारी माँ—

उसने सोचा—आज उसके भाग्य जागे। बड़े स्नेह से हाथ-पैर धोकर भगवान् का स्मरण करके बुढ़िया ने चाट खायी। कुछ पुत्र को बचा कर रख दी। उसको तो—दस मिनट बाद ही बन्दर आया और प्रेम पूर्वक दही-चटनी आँगन में फैलाता हुआ छत की मुँडेर पर ले जाकर बैठ गया। किन्तु वह बेचारी माँ—

आधी रात बीते उसको कालरा की डकारें—उबकाइयाँ आनी प्रारम्भ हुयीं और दूसरे दिन दोपहर होते-होते उसका 'राम-नाम-सत्य' हो गया।

अब जैसा कि सुन्दरलाल कहा करते थे—"दुनिया में अकेले आये थे। अकेले रह गये। अकेले जायेंगे।"

किन्तु इधर सुन्दरलाल में कुछ दुनिया की शैतानियाँ भरनी प्रारम्भ हो गयी थीं। बीमे के सिलसिले में वह भले-बुरे हर आदमी को टटोलता था।

बीमा हो जाय—इसके लिये सुन्दरलाल ने अवैध कार्य प्रारम्भ कर दिये थे। वह लड़कियों और औरतों की ताक में रहने लगा तथा उस कुकर्म की भी एजेन्सी का कार्य वह साथ ही चलाने लगा।

"वह गयी—वह चली गयी—वह मर गयी—" हर समय करते-करते सुन्दरलाल स्वयं तो वास्तव में कीचड़ में कमल बना हुआ था किन्तु उससे जो कलुष प्रोत्साहित हो रहा था उसमें वह हेयतम भूमिका सम्पन्न कर रहा था। उसी का परिणाम उसे प्रथम बार प्राप्त हुआ था।

वेदन ने सहानुभूति के स्थान पर उसकी खिल्ली उड़ाना प्रारम्भ किया। एक स्थान पर कुछ खरोंच तथा माथे पर एक छेद सा उँगली से दिखाते हुये वेदन बोला—"उसमें कोई जूता नालदार भी था। ये नोकें घुस गयी हैं।"

बात कितनी तथ्यपूर्ण व गम्भीर कही गयी थी इस पर सुन्दरलाल का ध्यान नहीं गया और वह किंचित भयभीत होकर बोला—"तो प्रोफेसर साहब! मुझे किसी डाक्टर को दिखा दीजिये।"

"हास्पिटल······हाँ, हास्पिटल? अभी चलता हूँ।"

"ए रिक्शा।" वेदन ने पुकारा और दोनों विभूतियाँ हास्पिटल की ओर चल दीं।

२४

स्नेह के सम्मोहन में प्रेम के अतिरिक्त जब सब कुछ शून्य सा प्रतीत होने लगता है। मालवीय के समक्ष बैठे-बैठे प्रमदा को प्रतीत हो रहा था—उसका संसार इस कमरे में ही केन्द्रित हो गया है। कहीं कुछ और भी है; एक अंकुश, एक बन्धन—प्रमदा को उस सबका कुछ ध्यान न था। वह घंटों उसी प्रकार बैठे हुए मालवीय की पीड़ा भुलाती रही स्वयं अतिरेक प्राप्त करती रही। उसके उस साहचर्य से मालवीय भी अन्तर्मन से अपने को बहुत कुछ स्वस्थ अनुभव कर रहा था। यों चोट लगे अंगों में अत्यधिक पीड़ा होते हुये भी वह उसे दाबे पड़ा था।

तभी राजीव को अनायास ध्यान—"और राकेश तथा रजनी······अरे चाची जी। वो तो घर ही रह गये। बहुत देर हो गयी। चलिये उन्हें देखें।"

इस क्षण प्रमदा को भी ध्यान आया—वेदन।" तभी उसने बहुत धीमे से कहा—"थोड़ी देर को हो आऊँ······।"

"नहीं।" कहते हुये मालवीय ने प्रमदा का दहिना हाथ दाब लिया।

मालवीय के स्पर्श से प्रमदा में मदिर अतिरेक पैंठता जा रहा था। वह बोली—"मैं अभी आ जाऊँगी। देखूँ, उनकी क्या खबरें हैं।"

"उनकी······खबरें।" कहते-कहते मालवीय के मस्तक में दर्द की

एक चसक सी उठी और वह बोलते-बोलते रुक गया।

प्रमदा अनिच्छा से ही घर जाना चाहती थी। पुनः बैठ गयी। अन्ततः मालवीय के थोड़ा आस्वस्त होने पर तत्काल आने को कह कर प्रमदा घर चल दी।

घर पहुँचने पर प्रमदा ने देखा वेदन आ चुका था तथा तखत पर भुन्नाया हुआ पड़ा था। ऐसे में प्रमदा में और भी गुर्राहट उभरती थी। वह उससे नही बोली और साड़ी बदलने छोटे कमरे की ओर चली गयी। राजीव उस तखत पर ही सोती हुयी छोटी बच्ची रजनी को दुलारने लगा जैसे बहुत देर से बिछुड़ा हुआ हो। नौकर राकेश को कहीं बाहर घुमाने ले गया था। इस समय वेदन को मालवीय के वे अबोध बालक भले नहीं लग रहे थे। तभी एक ओर वह ध्यान करने लगा कि प्रमदा तो बोलेगी नहीं उसको ही प्रश्न करना पड़ेगा कि मालवीय का पता लगा या नहीं। किन्तु, मालवीय जावेगा कहाँ ?·········तभी उसके मस्तिष्क में एक झटका सा लगा—ओह ! अभी तो प्रमदा को अपने टूटे ताले देखने होंगे। तभी एक चलचित्र—ग्वालियर से उस कमरे तक का दृश्य लिये हुये सामने तैर गया।

यो मालवीय के नौकर ने वेदन को यह नहीं बताया था कि बहू जी ने छोटे कमरे का ताला देखा था या कमरे में गयी थीं अस्तु, प्रमदा अब सब कुछ देखेगी इसका ध्यान कर वेदन यह भूल गया कि वह प्रमदा से यह पूछे कि वह इतनी देर कहाँ रही और वह साँस खींच कर चुपचाप पड़ा रहा। एक बार उसकी यह इच्छा भी हुयी कि वह राजीव से पूछे कि उसके बाबू जी का कुछ पता लगा अथवा वह तथा उसकी चाची जी कहाँ गये थे किन्तु उसके मन में न जाने कैसी सी ईर्ष्या जाग्रत हो गयी थी कि वह मालवीय के ध्यान मात्र से कुंठित हो रहा था।

प्रमदा तो सब कुछ जान ही गयी थी अतः उसने यह अभिनय भी नहीं किया कि—अरे ! यह क्या हुआ ? उसके ताले कैसे टूट गये ? उसके रुपये कहाँ गये।"

और इस समय वेदन अपने आप ही मन ही मन हँसता रहा। कैसे चीख-चिल्लाहट के बीच भी वह सुन्दरलाल को हास्पिटल के जनरलवार्ड में भरती करा आया। सुन्दरलाल की उस समय की उस दयनीय आकृति का ध्यान कर उसे हँसी आती चली जा रही थी।

थोड़ी देर में ही मालवीय का नौकर राकेश को लेकर बाहर से आ गया। प्रमदा को तत्काल ही पुनः हास्पिटल जाना था किन्तु अब घर के बाहर जाने के अर्थ थे देवासुर-संग्राम। अब उसे अनेक उपक्रम करने पड़ेंगे। तभी उसने उसकी भूमिका बनानी प्रारम्भ की और पहले राजीव को धीरे से बुलाकर उसने कहा—"राजीव! अब तुम बच्चों को लेकर घर जाओ। मैं अभी थोड़ी देर में हास्पिटल जाऊँगी वहाँ से लौट कर तुम्हारे पास होती आऊँगी।......नन्दू! बच्चों की देखभाल रखना।" कहते हुये प्रमदा ने बच्चों को विदा किया।

अब वेदन बड़े कमरे में तख्त पर लेटा था और प्रमदा छोटे कमरे में एक ट्रंक पर बैठी थी। वह निरन्तर मालवीय में ही उलझी हुयी थी। मालवीय के चोट लग जाने से नये कार्य—नयी समस्यायें उत्पन्न हो गयी थीं। अब हास्पिटल में उसके पास कोई न कोई बना रहना चाहिये। राजीव बना रह सकता है किन्तु बच्चा है, उससे क्या होगा? फिर उसे घर पर छोटे भाई-बहन को भी देखना होगा। तब, नौकर रह सकता है किन्तु उसके रहते हुये मालवीय नौकर के सहारे पड़ा रहे। परन्तु वह भी तो चौबीस घंटे वहाँ नहीं रह सकती। वह दूसरे की पत्नी है। समाज की साक्षी में वह किसी के हाथ बिकी है। वह रह भी सकती है किन्तु तब उसे वेदन को बताना पड़ेगा। किन्तु अब वह वेदन को अपना कुछ भी नहीं बताना चाहती। उसका सब कुछ उस तक ही सीमित रहे। अब उसके मालवीय को कोई जाने भी नहीं।......तब यह भी तो सम्भव है कि वेदन उसे मालवीय के पास जाने को ही मना कर देवे।......तब क्या होगा? नहीं-नहीं, वह वेदन को यह कदापि न जानने देगी कि मालवीय हास्पिटल

में है। किन्तु वह छिपेगा कब तक ? और तब जब वेदन को यह ज्ञात होगा कि मालवीय हास्पिटल में है और वह निरन्तर उसके पास जाती रही है— तब। किन्तु इसका प्रबन्ध तो वह कर सकती है कि सब ओर ऐसी रोक-थाम कर देवे कि यह न ज्ञात हो सके कि वह हास्पिटल गयी थी या उसे यह भी पता था कि मालवीय हास्पिटल में है……किन्तु तब उसका आगे जाना-आना। तब जहाँ तक होगा वह यही प्रयत्न करेगी कि किसी को यह ज्ञात न हो सके कि मालवीय हास्पिटल में है किन्तु यह होगा कैसे—इसके नाना उपाय वह सोचती रही। तभी उसे ध्यान आया कालेज का। कालेज सूचना भेजनी होगी। तब सब प्रकट हो जावेगा। किन्तु………उसे भी वह देखेगी।

तब सब कुछ गोपनीय रखने की प्रथम भावना प्रमदा के मन में जाग्रत हुयी और एक के पश्चात् दूसरा—सब कुछ गोप्य रखने का निश्चय प्रमदा नें कर लिया।

वह उठी। उसका हाथ गया तो उसने ब्लाउज़ में नोट दबे पाये। तब वह उन्हें कहाँ रक्खे ? अब वह उन्हें उस कमरे में कहीं रख नहीं सकती है किन्तु ऐसे साथ भी लिये-लिये कहाँ तक घूमेगी। उसके पास सब मिला-कर साढ़े छः सौ रुपये उस समय थे। लगभग डेढ़ सौ रुपये उसने हास्पिटल में जमा कर दिये थे।

यह इच्छा उसकी एक पल को भी न हुयी कि वह वेदन—अपने पति से पूछे कि रुपये उसने इस प्रकार क्यों निकाले और उनका उसने क्या किया ? कम से कम पत्नी का यह अधिकार तो है। किन्तु, न जाने क्यों न वह पत्नी के अधिकारों का ही प्रयोग करना चाहती थी न वह यह चाहती थी कि उस पर किसी प्रकार के अधिकारों का प्रयोग हो। इस प्रकार उस प्रेमानुराग की उद्दीप्ति में पति-पत्नी का धागा हिल-डुल रहा था। उसे दूरी तथा तिरस्कार की श्वास-वायु हिला रही थी।

यों मालवीय के पचासों मित्र होंगे—वे सब भी सूचना प्राप्त करते ही हास्पिटल को घेर लेंगे। तब जैसा होता है डाक्टर के मना करने अथवा रोगी को हानि पहुँचने पर भी वे हटेंगे नहीं।

किन्तु प्रमदा—सोचती जा रही थी कि वह किसी को सूचना न होने देगी। उसका मालवीय पर इतना अधिकार हो गया है। तब क्या वह अधिकार एक दिन—एक पल—एक क्षण के उस स्नेह-व्यवहार से ही उसे प्राप्त हो गया है। नहीं ऐसा नहीं है। वह उसकी न जाने कब-कब से प्रतीक्षा करती रही थी। उसने अपना सर्वस्व मालवीय पर आरोपित कर दिया है। जैसा दुनिया कहा करती है—वह उसका जनम-जनम का साथी है। और जनम-जनम का साथी सोचते-सोचते प्रमदा ने अपनी दोनों बाहुओं से क्रास बनाते हुये दोनों कन्धों को पकड़ लिया। ज्यों वह परोक्ष में मालवीय को बाहुपाश में आबद्ध कर रही हो और उसने अपने पलक मूँद लिये।

इस समय वह छोटे कमरे में सन्दूक से उठ चुकी थी तथा भूमि पर स्थिर होकर खड़ी थी। तत्काल उसे ध्यान आया—उसे हास्पिटल जाना है। वह आँगन में आयी। उसने कनखियों से झाँक कर देखा—कमरे में वेदन तख़त पर सो चुका था। एक उपेक्षा सहित वह नल की ओर बढ़ गयी। नल के नीचे रक्खी बाल्टी में उसने लोटा डोबा और अपनी आँखों पर जल के छींटे मारने लगी। तभी उसने ध्यान किया यह भी कोई सोने का समय है। तभी उसने अपने दिल के उस अनबोले का अनुभव किया—पति-पत्नी के बीच के सम्बन्ध कैसे होते चले जा रहे हैं? पता नहीं वह किस ओर भाग रही है। पता नहीं वेदन किस ओर जा रहा है। अब तक उनके बीच के सम्बन्ध आत्म-समर्पण के नहीं तो कम से कम अच्छे कहे जा सकते थे। तब क्या बाधा उपस्थित हो गयी? क्या बीच में मालवीय आ गया? नहीं मालवीय के आने से कुछ नहीं हुआ। वे मन तो खीजते ही चले जा रहे थे। कुछ अदृश्य था जो स्पष्ट होता जा रहा था। कोई

शक्ति थी जो उन्हें दूर कर रही थी और उसे मालवीय की ओर खींचे लिये जा रही थी। वेदन को कहाँ लिये जा रही थी—कहाँ ले गयी उसके प्रति प्रमदा अभी बेख़बर थी।······किन्तु मालवीय के आने से ही तो ऐसा नहीं हुआ है? नहीं मालवीय तो पहले ही से था। तब प्रमदा के हृदय के अन्तर्भाव कुछ वैसे नहीं थे। तब उसने मन के हारने की बात नहीं सोची थी। तब मन की इस हार-जीत में उसे कहीं सुख-सन्तोष-तृप्ति प्राप्त हो गयी है। यह जीवन में क्या कम है? इसके अतिरिक्त जीवन है किस हेतु? क्या केवल श्रम-संवेदन के लिये?

उस समय प्रमदा के दाहिने हाथ की अंजली में जल के कुछ कण थे और बायें में आधा भरा लोटा। वह विचारों में जैसे खो गयी थी। वह मालवीय में खो गयी थी और उसके नेत्र कहीं शून्य में स्थिर थे। तब उस ने अपनी दृष्टि पलटी। मस्तिष्क संतुलित किया। लोटा रख दिया और उठ खड़ी हुयी।

वह जल्दी-जल्दी छोटे कमरे में आयी। उसने पीले वायल की एक साड़ी पहनी उस पर सफेद साटन का ब्लाउज पहना, बाल सँवारे, बालों में काँटे लगाये, जूड़ा बनाया, माथे पर एक गोल बिन्दी उभारी, ओठों पर एक स्वाभाविक मुस्कान भर कर उसने शीशा कील पर टाँग दिया और कमरे के बाहर चल दी। बाहर आकर उसने अपनी चप्पल पहनी। उसका हाथ पहले कमर पर गया तब नेत्र कमरे की साँकल पर। ताला लगाने की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। न ही गुच्छा उसकी कमर में था। नोटों की गड्डी उसने पहले ही पुनः ब्लाउज की बायीं ओर रख ली थी जिससे उधर का स्थल बायीं ओर की अपेक्षा अधिक उठ गया था। उसका जी चाहा—नोटों की गड्डी वह वहाँ हाथ से दाब दे किन्तु वह उभार दब कहाँ सकता था। अपने आप ही प्रकृति के इस सत्य पर वह मन में मुस्करा दी और द्वार की ओर चल दी। द्वार पर आकर उसके पैर ठिठके। उसने सोचा—वह वेदन से कह दे कि अमुक सहेली के यहाँ जा रही है। किन्तु

वह उससे बोल ही नहीं रही थी। वही क्यों—वेदन ही कब बोला था ? तब वेदन ने उसका अपराध किया है। ताला तोड़ कर उसका धन चुराया है। किन्तु उसने भी वेदन का अपराध किया है। वेदन का भी कुछ चोरी चला गया—उसका तो सब कुछ चला गया—यह ध्यान प्रमदा को न आने को था न आया।

तब वह पुनः लौटी। पुनः छोटे कमरे में गयी। एक आले में रक्खे डब्बे से पेन निकाला। एक स्लिप लिखी और बड़े कमरे की ओर बढ़ गयी। उसने चाहा स्लिप वेदन के सराहने रख दे। उसने देखा वेदन पलक मूँदे सो रहा है। प्रमदा के तकिये के निकट जाते ही वेदन ने उछल कर प्रमदा की कमर में हाथ डाल कर उसे बरबस अपनी ओर खींच लिया। वेदन उस समय दूसरे विचार में आ चुका था किन्तु प्रमदा को वह सब कुछ, एक पल को भी, नहीं भा रहा था। वेदन तो पहले से ही अर्ध- विक्षिप्त नेत्रों में प्रमदा की गति विधि को झाँकता रहा था और सोच रहा था कि किसी क्षण पुकारेगा किन्तु उसका शिकार स्वयं ही शेर की माँद में पहुँच गया।

अनेक बार स्त्री-पुरुष के पारस्परिक विवाद का वह भी एक समझौता है। वेदन ने उठकर देखा—सबसे बाहर का द्वार बन्द था। वह पुनः घूमा तब तक प्रमदा सँभल कर दूसरी ओर आ चुकी थी। किन्तु वेदन के बल-प्रयोग पर वह अवश हो गयी। उसकी समूची सजावट पल भर में कुछ की कुछ हो गयी। प्रमदा अन्तर्मन से मालवीय में डूबी थी और वेदन उस अनबोले के समझौते के अन्तिम बिन्दु तक पहुँच कर बढ़ी-साँसों को कम करने के प्रयत्न में तकिये पर सीधा होकर लेट चुका था। प्रमदा प्रारम्भ से अन्त तक मौन ही बनी रही। आज उस खानापूरी में सब दिवसों से अधिक तिरस्कार भर गया था। तब वह उठी। आँगन में आयी। अपने को स्वच्छ किया। पुनः छोटे कमरे में गयी। अपने सम्पूर्ण वस्त्र बदले। पुनः बालों पर कंघा फेरा और आँगन में आ गयी।

इस समय वक्ष पर रक्खे नोटों की गड्डी को देखकर उसे आश्चर्य हो रहा था कि ये कैसे सुरक्षित बने रहे।

तब तक उस अपराधी कागज़ को वेदन पढ़ चुका था।

महोदय !

मालती के यहाँ जा रही हूँ।

अपने को महोदय सम्बोधन पढ़कर वेदन हँसा और बाहर आँगन में निकल आया।

"कब तक लौटोगी ?" उसका प्रश्न था।

प्रमदा बोलना नहीं चाहती थी। वह नहीं बोली।

तब वेदन ने समझा उस उपचार से भी परिस्थिति बदली नहीं। उस अन्त के आगे तो कोई क्रिया शेष रहती नहीं है तब वह क्या करता। तुरन्त ध्यान कर उसने प्रमदा के मर्म पर एक चुटकी काटी—"मालवीय का कुछ पता चला ?"

"तुम्हें ?" प्रमदा ने प्रश्न पर अपना प्रश्न चपका दिया।

"मैं क्या ढूँढने गया था ?"

"तब क्या मैं ढूँढने गयी थी ?"

"तब दिन भर कहाँ रहीं ?"

"हास्पिटल।"

पहले तो वेदन ने तुरन्त सोचा कि क्या उसके हास्पिटल जाने पर प्रमदा व्यंग्य कर रही है किन्तु अपने को पूर्ण व्यवस्था में स्थिर कर वह बोला—"क्या वेदन हास्पिटल में है ?"

"यह तो उनके दोस्त ही बता सकते हैं।"

"पहेली सी क्या बना रही हो। स्पष्ट बताओ न कि मालवीय कहाँ है ?" रोष के नये झटके में वेदन कह गया। अब तक वह आँगन में आ चुका था। वह प्रमदा का पति था। सर्वाधिकार में वह हर बात की छान-बीन कर सकता था। अचानक ही उसका ध्यान प्रमदा के वक्ष पर गया।

कुछ अनुभव कर वह आगे बढ़ आया और—"यहाँ क्या है।" कहकर उसने अपना हाथ बढ़ा दिया।

प्रमदा कुछ उत्तर दे कि वहाँ क्या है वेदन के हाथों में नोटों की गड्डी आ चुकी थी। प्रमदा तड़प कर, सहम कर रह गयी। वह अनिमेष वेदन को देख रही और वेदन नोट गिनने में लीन हो गया था। साढ़े छः सौ गिनकर वह थमा और सोच गया तो अभी प्रमदा के पास इतने रुपये और रक्खे थे।

प्रमदा को वे रुपये वेदन से किसी भी प्रकार लेने थे। उसने ध्यान किया तेवर से नहीं विनम्र होकर ही रुपये मिल सकते हैं। उसने वार्तालाप में मिठास लाने का हठात् प्रयत्न किया।

"लोगों की चोरी से बचा धन डाकुओं के हाथ लगता है।" प्रमदा कह गयी। उसके हृदय में उस समय तीव्र तिरस्कार भरा हुआ था किन्तु उसे बात बनानी थी।

अब वेदन को भी प्रमदा को तंग करने की सूझ रही थी। वह रुपये लेकर बड़े कमरे के तखत पर जा लेटा। विवश प्रमदा को कमरे में जाना पड़ा। वह ठुनकते हुये बोली—"देखो! मेरे रुपये दे दो।"

प्रमदा ने अब भी वेदन से यह नहीं पूछा कि उसने उस प्रकार उसके वे रुपये क्यों निकाले और उन रुपयों का क्या किया।

तभी वेदन ने कहा—"इतने रुपये लेकर कहाँ जा रही थीं।"

"तब क्या दुबारा चोरी जाने को छोड़ जाती?" कहते हुये प्रमदा सोच रही थी बात बनती जा रही है।

इस चोट पर वेदन मौन हो गया किन्तु तत्काल ध्यान कर गया—सौ रुपये उस गुंडे को देने हैं। तभी उसने अपने को गम्भीर बनाने की चेष्टा करते हुये एक सौ का नोट निकाल लिया और शेष रुपये प्रमदा को लौटाते हुये कहा—"लो, मुझे नहीं चाहियें।"

"ले भी लिये और नहीं भी चाहिये !" कहते हुये प्रमदा ने नोट हाथ में लेकर जैसे चैन की साँस ली। उन सौ रुपयों के लिये झकझक करना उसने उचित नहीं समझा क्योंकि वह सोच रही थी उसी झटके में उसे बाहर चल देना चाहिये—अन्यथा—"कहाँ जा रही हो ?"—"कब आओगी ?"—"इतने बजे आ जाना !"—वह इसी में उलझ जावेगी।

मालवीय का पता चला या नहीं—इसकी विशेष चिन्ता वेदन को नहीं थी।

२५

इधर कल से ही अनेक बार प्रमदा का जी मिचला चुका था। आज जब भी उसका जी खराब हुआ उसने मुँह में सौंफ-इलायची डाल ली जो वह घर से चलते हुये अपने रूमाल में बाँध लायी थी। यों देखने-सुनने में वह पूर्णतः आधुनिक प्रतीत होती थी किन्तु कन्धे पर पर्स लटका कर चलना उसे रुचिकर न था।

हास्पिटल में, कई अंगों में असह्य पीड़ा के अतिरिक्त मालवीय की दशा सन्तोषजनक थी। खतरे से तो प्रमदा ने उसे प्रातःकाल ही निकाल लिया था।

इस समय वह मालवीय के निकट कुर्सी पर बैठी थी और मालवीय अभी-अभी वेदन की ग्वालियर यात्रा का विस्तृत विवरण समाप्त कर अपने सूखे ओठों पर जीभ फेर रहा था। प्रमदा ने उठकर तत्काल काँच का गिलास भरा और पानी मालवीय की ओर बढ़ाया।

"न।" मालवीय ने हाथ का संकेत किया।

प्रमदा ने ध्यान किया मालवीय उठ नहीं सकता। तत्काल ही उसने मालवीय का संकेत समझ लिया और सामने छोटी मेज पर रक्खे 'फीडिंग-कप' को उठा कर उसी में पानी भर कर बड़े स्नेह से उसने मालवीय को लेटे-लेटे ही पानी पिला दिया। तब वह मालवीय के पलंग पर ही बैठी रही। उसने अपना एक हाथ मालवीय के दूसरी ओर की पलंग की लोहे

की छड़ पर रख छोड़ा था और स्वयं दूसरी ओर किनारे बैठी थी। उसका ध्यान मालवीय द्वारा प्रकट उस नारकीय-रहस्योद्‌घाटन में लीन था जिसमें उसका पति नायक था। तभी उसने मालवीय से वह सब कह सुनाया कि किस प्रकार—उसके यहाँ सुबह ही कुछ बदमाश लाठियाँ लिये दिखाई दिये। कैसे उसके सूटकेस का ताला तोड़ कर रुपये निकाले गये—एक आदमी को सड़क से बुला कर दो सौ रुपये दिये गये—सौ रुपये दुबारा देने की बात हुयी और तब से पतिदेव घर से गायब थे।

और वह बोल पड़ी—"वह सब भी उसी कांड से सम्बन्धित है।"

"निश्चित।" मालवीय ने उत्तर दिया।

"मालवीय व प्रमदा जीवन में निकटतम प्राणी थे। वे इतने शीघ्र दो-तीन दिन में ही—अभिन्नतम हो गये थे। एक दूसरे के दुःख-सुख के साथी थे। सहायक थे। परामर्शदाता थे। सब कुछ थे।

प्रमदा की बात सुनकर मालवीय सोच गया कि लड़की के घर वालों ने ही, निश्चित, वेदन के पीछे कुछ बदमाश लगाये होंगे जिन्हें वेदन ने रुपयों के बल पर, युक्ति पूर्वक हटा दिया।

प्रमदा व मालवीय दोनों ही उस क्षण मौन थे और वेदन के सम्बन्ध में सोच रहे थे। वेदन के प्रति दोनों ही के मन में घृणा भर रही थी। उनके अपने दोष भी कहाँ तक कितने थे—उस पर तार्किक दृष्टि डालने का न अवसर था न आवश्यकता। वेदन गिरता जावे—इसमें प्रमदा का अथवा मालवीय का स्वार्थ न भी हो किन्तु अब वेदन दूर हट जाय इस चाह का विचार आना प्रारम्भ हो गया था। प्रकट में नहीं तो अप्रकट रूप से वेदन अब बहुत दूर जा गिरा था। उसमें वस्तुतः दोष भी किसी का नहीं था न ही किसी का कोई प्रयत्न। वह घटनाओं व परिस्थितियों का वात्याचक्र था जिसमें वेदन, मालयीव एवं प्रमदा घर पहुँच चुके थे। अन्तर केवल इतना था कि मालवीय एवं प्रमदा के अन्तर्मन प्रसन्न थे। उनमें दृढ़ता थी। उनमें आत्मोत्सर्ग की भावना दृष्टिगत हो रही थी जब

कि वेदन के दुष्कर्म में आत्मग्लानि प्रमुख रूप से प्रकट हो रही थी। वह एक दम्भ था जिसमें वेदन ऐंठ रहा था। वैसे वह कितना भयभीत था यह उसका हृदय ही जानता था।

भय का अंश प्रमदा अथवा मालवीय में न हो, ऐसी बात नहीं थी। किन्तु वे दृढ़ होकर सामने आने की भावना रखते थे। वह उचित था, अथवा अनुचित, स्वीकार्य था अथवा अस्वीकार्य; प्रश्न इस समय यह नहीं था। वास्तविक स्थिति यह थी कि प्रमदा अपने वातावरण से विद्रोह कर उठी थी जिसमें मालवीय को उसने अपना पात्र तथा सहयोगी बनाया था। वेदन में अपने वातावरण से विद्रोह नहीं अपितु एक मात्र उद्देश्य इन्द्रियासक्ति थी। यों भी वेदन के छिपाव में वासना व प्रमदा में स्नेह था। समाज की मान्यता में दोनों परिस्थितियाँ नहीं आतीं थीं यह सत्य था। प्रकृति रूप में सम्भवतः दोनों परिस्थितियाँ सत्य-स्वाभाविक हों किन्तु प्रमदा व मालवीय की स्थिति सत्य-सात्विक भी थी। उसकी सात्विकता भी केवल मात्र स्नेहानुराग पर अवलम्बित थी जब कि वेदन वासना के नये प्रयोग कर रहा था तथा वह लड़की रीता दुष्कर्मों में ही डूब चुकी थी।

"Thus the primary function of a wife comes to be that of a lucrative domestic animal and her secoud function becomes subordinated."

इस समय प्रमदा के मन में यही भाव भरता जा रहा था। उसने उपरोक्त वाक्यांश अपनी 'सोशियोलाजी' की पुस्तक में अपने विवाह के पूर्व ही पढ़ा था जब कि उसे वैवाहिक जीवन अथवा पति-पत्नी के सम्बन्धों के क्रियात्मक रूप का उस समय कोई अनुभव नहीं था।

प्रमदा को यों विचार मग्न देखकर मालवीय भी कुछ सोच रहा था। तत्काल उसे एक लेख का ध्यान आया जो उसने एक पुस्तक—मैरिज एक सेक्स लाइफ में—दो-तीन दिन पूर्व ही पढ़ा था।

To have intercourse with another man's wife remained, of course, an affence against that man, but to have

any intercourse outside marriage was an affence against God, and this, in the view of the church, was a far grave matter.

यो पहले प्रमदा के अनुरोध पर वह उसे न्यायसंगत नहीं मानता था। वह दूर भागा। वह गिर कर भी प्रमदा से बचने की बात सोच गया था। किन्तु आज उसे एक दार्शनिक का अँग्रेजी का यह कथन सर्वथा युक्ति-संगत प्रतीत हो रहा था। वस्तुतः, आज की उसकी परिस्थिति भी वैसी ही थी। वही सत्य स्थिति थी जिस पर वह वेदन को तिरस्कृत करने को उद्दत था और तभी मालवीय ने उपरोक्त वाक्य को प्रमदा से कह सुनाया।

सुनकर प्रमदा विस्फारित नेत्रों से मालवीय को देखती रही।

× × ×

"सुनो! तुम्हारी चोट का हाल किसी को नहीं पता है। न ही कोई यह जानता है कि तुम हास्पिटल में हो······।" प्रमदा ने कुर्सी पर बैठते-बैठते कहा अभी-अभी एक नर्स आकर टेम्परेचर ले गयी थी तभी प्रमदा पलंग से उठकर कुर्सी की ओर आ गयी।

"ऐसा?"

"और क्या।"

"तब, और नहीं तो कालेज में चिन्ता होगी। वहाँ छुट्टी के लिये तो लिखना ही पड़ेगा।"

"तुम्हारी एप्लीकेशन आगरे के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान से नहीं आ सकती?"

मालवीय ने समझा। प्रमदा की वह युक्ति उसे प्रिय लगी। वह एक पल को सोच गया, प्रमदा की चतुराई की बात। नारी के समर्पण—सम्मोहन की बात। प्रमदा के साहचर्य से अथवा यों भी अब उसकी अन्य अंग-प्रत्यंगो की पीड़ा कम थी। दाहिने पैर में अभी भी पीड़ा अधिक थी किन्तु विमोहन में उसे दाब कर वह बड़े सुख-चैन में प्रमदा से बातें कर रहा था साथ ही सोचता जाता था, प्रमदा ने ठीक सोचा है। वेदन को पता,

लगते ही अब वह प्रमदा पर बिना कुछ प्रतिबन्ध लगाये मानेगा नहीं। तभी उसने प्रमदा की ओर भरमायी दृष्टियों में देखा और बोला, "आ क्यों नहीं सकती! किन्तु······।"

"किन्तु-परन्तु कुछ नहीं। पहले एप्लीकेशन के लिए कहीं बाहर जाओ तब आगे देखा जायेगा।" प्रमदा नेत्रों में मुस्कराहट खींच कर निकट ही दूसरी कुर्सी पर रक्खे समाचारपत्र को पढ़ने लगी। पढ़ते-पढ़ते अनायास ही उसकी दृष्टि एक समाचार पर गयी और पढ़ कर उसने वह पृष्ठ मालवीय की ओर बढ़ा दिया।

आगरा २७ मई। नगर के एक प्रसिद्ध पेठा व्यापारी की नवजवान लड़की कालेज से गायब हो गयी है। संदेह दिया जाता है कि घटना के पीछे कोई प्रेम-कांड छिपा हुआ है। इस प्रकार कालेज से लड़की के गायब हो जाने की इस मास में यह तीसरी घटना है। विशेष विवरण अज्ञात है।

पढ़कर मालवीय बोला—"इसमें प्रोफेसर वेदन का कोई हाथ नहीं है।"

"हाँ इसमें प्रोफेसर मालवीय का हाथ है।" कहते हुये प्रमदा जोर से हँस दी। मालवीय ने भी प्रमदा की हँसी में साथ दिया और चाहा कि प्रमदा का हाथ लेकर दाब ले किन्तु तभी पैर में दर्द की एक टीस उठी और वह विह्वल हो गया।

तत्क्षण ही नर्स ने कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में एक्स-रे था।

"मिस्टर प्रोफेसर! देअर इज ए फ्रैक्चर इन योर लेग।···प्लास्टर टुमारो।"

"सिस्टर! देन इट्स ए मैटर आफ लांग टर्म कानफाइनमेंट आन बैड?"

"यस, फार टू मन्थस, एट लीस्ट····· बट व्हाट्स द हार्म प्रोफेसर!" कहते हुये नर्स ने प्रमदा को देखा, और एक गहरी मुस्कान खींच ली

जैसे कहना चाहती हो सुश्रुषा के लिये सरहाने यदि ऐसा मादक रूप हो तो कोई भी चाहें जब तक बिस्तर पर पड़ा रह सकता है।

"प्रमदा लो। दो महीने की छुट्टी।······ बट नर्स देयर इज मच मेन।" कहते हुये असह्य पीड़ा से मालवीय ने तीन कोने का मुँह बना लिया।

"इट्स सिम्पली लैस देनए कम्पाउन्ड फ्रैक्चर······लेकिन हड्डी के शाथ ईतना ठीक हाई की टेम्परेचर नहीं है।"······कहते हुये नर्स कमरे के बाहर जाने लगी।

उस एंग्लो-इण्डियन नर्स की दूधिया मांसलता एवं ओठों के गुलाबी धनुषों को मालवीय प्रमदा की उपस्थिति में भी हृदयंगम किये बिना नहीं रह सका। तभी नर्स रूप और यौवन की खिलखिलाहट का प्रभाव कमरे में छोड़ कर बाहर चली गयी।

प्रमदा तत्काल उठी और उसने द्वार की चटखनी बन्द कर दी।

"प्रमदा! नहीं हास्पिटल में ऐसा नियम नहीं है। चटखनी खोल दो।"

"उँह······," कहते हुये प्रमदा मालवीय के ओठों पर झुक गयी और वे दो अनुरागी ओठों की राह एक दूसरे के प्राण खींचते रहे—देर तक।

"तुम ऐसे ही लेटे रहो।" हटते-हटते प्रमदा कह गयी।

"पट्टियां बाँधे?"

"हाँ, नहीं तो भाग जाओगे, भगोड़े।"

"नहीं, मेरे प्यार! अब कहीं नहीं जाऊँगा।"

तभी प्रमदा उठी और उसने चटखनी खोल दी।

"अच्छा सुनो अब मैं जाऊँगी। देखूँ तुम्हारे दोस्त का क्या हाल है? कुछ खाने-पीने की भी पूछताछ करूँ। तुम्हारे पास राजीव और नन्दू को भेज देती हूँ। राकेश व रजनी को मैं अपने साथ ले जाऊँगी।" कहते-

कहते प्रमदा कुर्सी पर से उठ खड़ी हुयी। "लेकिन ठहरो", के साथ ही वह फलों की डलिया की ओर बढ़ गयी और चार मौसम्मी निकाल लाई और चाकू को मेज पर टटोलने लगी।

"इस समय रस नहीं पिऊँगा......।"

"वाह! रस तो......" कहते हुये प्रमदा ने अपना ओठ दाँतों में दाब लिया।

"शैतान!......" कहकर मालवीय भी हँस दिया।

इस प्रकार स्नेह की उमंग से प्रमदा उस हास्पिटल के कमरे को संगीतमय बनाये रही। प्रेम जो मृत्यु में भी खिलखिलाता रहता है। और मालवीय को लगा उसके न कहीं चोट है न पीड़ा।

अकेले प्रमदा ने मालवीय का सब भार अपने ऊपर ले लिया। उसे मौसमी का रस पिला कर ओठों को ओठों का रस दे-ले कर वह दूसरे दिन आने को कह गयी। वह किसी की......तब रात में तो मालवीय के पास नहीं रह सकती थी, न।

प्रमदा के जाते-जाते नर्स ने कमरे में प्रवेश किया। और टेम्परेचर के लिये बिना कहे-सुने थर्मामीटर मालवीय के मुँह में खोंस दिया।

× × ×

व्यवस्था तो सब पूर्ण थी। राकेश व रजनी भी घर आ गये। राजीव तथा नौकर हास्पिटल पहुँचा दिये गये किन्तु प्रतिपल प्रमदा का जी चाहता रहा कि वह मालवीय के निकट ही बनी रहे।

जैसे इधर दो-चार दिनों में वेदन ने शक्ति से अधिक परिश्रम किया था। अतः थका हुआ अभी भी तखत पर सो रहा था।

प्रमदा गृहस्थी के खटराग में लग गयी और खाना बनाने की व्यवस्था करती रही।

रात्रि में नौ बजे के लगभग प्रमदा ने वेदन को जगाया। "जाओ नहाओ। खाना तैयार है।"

वेदन उठा और गुसलखाने में घुस गया।

कल से प्रमदा कितनी दोड़ी-भागी थी, उस पर भी उसका तन जैसे लोहे का क्यों—कठोर सोने का कुन्दन क्या बना हुआ था। उसे थकन थी ही नहीं।

छोटे बच्चों—राकेश व रजनी को दूध पिलाना था। दूध घर में था नहीं। वह बाज़ार से दूध ला नहीं सकती थी। साथ ही—अपने मालवीय के नाम पर वह किसी का एहसान भी नहीं लेना चाहती थी। वह वेदन से नहीं कहना चाहती थी कि बाजार से बच्चों को दूध ला दो। मालवीय अब वेदन का मित्र नहीं उसका न जाने कौन था।''''''तभी उसे ध्यान आया—कहीं किसी स्थान पर कभी पहले लाया हुआ हार्लिक्स रक्खा था। उसने सोचा बच्चों को वही पिला देवे और वह उसे खोज भी लायी।

गुसलखाने से बाहर आकर जैसे पहली बार वेदन ने मालवीय के दोनों बच्चों को देखा और साथ ही प्रमदा के हाथ में हार्लिक्स का डब्बा।

"क्यों?" वेदन ने प्रश्न किया।

"इन बच्चों को पिला दूँ। अब दूध कौन लावेगा?" प्रमदा ने दूसरी ओर मुँह किये-किये ही कहा।

अपने अभिन्नतम मित्र मालवीय के नन्हे बच्चों के लिये वह दूध ला सकता था—किन्तु वेदन ने जानबूझ कर मौन साध लिया। तभी वह बोल पड़ा—"लेकिन यह मालवीय मर कहाँ गया?"

शब्दों की चिड़चिड़ाहट ने ज्यों प्रमदा के कान फोड़ दिये और मरने शब्द मात्र को सुनकर जैसे अनायास वह सहम गयी और उसने अपनी आँखों की पलकें भींच ली। इतना मोह था उसे मालबीय के प्रति। इतना हारा हुआ था उसका मन किसी के लिये।

तब हार्लिक्स का डब्बा खोलने के अनन्तर प्रमदा को अनायास कुछ ध्यान आया और वह रसोई से उठकर बड़े कमरे में गयी। वेदन दर्पण व कंघा लेकर सरके बाल सँवार रहा था।

"सुनो! ज्यादा दिन रक्खे रहने पर हार्लिक्स खराब तो नहीं हो जाता है?"

"पुरानी हर चीज़ नष्ट हो जाती है। लेकिन हार्लिक्स क्या ख़राब होगा? और मर जायेंगे साले। ज्यादे से ज्यादा होगा क्या? पिला दो सालों को।" वेदन एक तेजी में कह गया।

"इन मासूम बच्चों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है……।" प्रमदा भी बिगड़ते हुये कह गयी और तत्काल कमरे के बाहर हो गयी। वह चौके में पटरे पर आ बैठी और सोचने लगी क्या करे? वह वेदन के मनोविकार को भी भली प्रकार समझ रही थी। वेदन प्रमदा की दूरी को भी समझ चुका था। वह मालवीय के अस्तित्व मात्र से आन्दोलित हो रहा था। था, सब कुछ अदृश्य-अस्पष्ट किन्तु अन्तर्मन में स्थिर होता चला जा रहा था। यों, प्रत्येक सम्भव आचार-व्यवहार से प्रमदा जितना कुछ गोप्य रख सकती थी—रख रही थी।

वेदन ने बाल काढ़े और उस एकान्त कमरे में, स्वच्छ-धवल चाँदनी बिछे तखत पर शान्त बैठ गया। छत पर तीन बत्तियों का एक छोटा झाड़ जगमगा रहा था। उसे अब भूख लग रही थी। किन्तु वह सोच रहा था स्वयं भोजन कर लेने पर प्रमदा क्या सोचेगी और प्रमदा बिना उन कम्बख्त बच्चों को खिलाये हुये खायेगी नहीं। अतः उसने गले में कमीज डाली और बिना कुछ कहे बाजार चल दिया। न उसने ही कुछ कहा न प्रमदा ने ही पूछा—"कहाँ जा रहे हो।" दोनों बच्चे तब तक नींद भर चुके थे।

इस समय प्रमदा को कम से कम इतना सन्तोष था कि मालवीय का भोजन लेकर अब तक नन्दू व राजीव हास्पिटल पहुँच गये होंगे। वह चाहती तो यह थी कि अपना बनाया भोजन ही मालवीय को भेजे किन्तु वह अपने घर से नहीं भेज सकती थी—वही पति रूपी अधिकारी। वह सुनना तो दूर कल्पना भी नहीं करना चाहता कि उसकी पत्नी का कोई आत्मीय, कोई निकटतम, कोई मित्र, कोई परिचित भी हो सकता है। यदि

वह कोई स्त्री हो सकती है;। तो कोई पुरुष क्यों नहीं हो सकता। पुरुष यदि अनन्य नारियों का साहचर्य चाह सकता है। उनके प्रति अपने मन में गन्दे से गन्दे विचार रख सकता है, बुढ़ियों तथा कच्ची अवस्था की बालिकाओं को छोड़ कर—एकान्त में, समस्त सृष्टि की स्त्रियों को अपनी ताँक-झाँक में नग्न निहार सकता है तो क्या कोई स्त्री प्रेम की एकनिष्ठा के उस सात्विक, उस सत्य उस शिव, उस सुन्दर—स्वरूप को भी आरोपित नहीं कर सकती ? किन्तु क्यों ?

चलो ठीक है—भले ही वह अपनी तरह नारी को वह स्वतन्त्रता न दे कि वह उसकी ही भाँति सृष्टि के सबको समस्त को, दो-चार दस को अपने तन से इठलाने दे। मन-मन को जाने दे—मन यदि सत्य है, यदि उसमें प्रेम—उस ईश्वरीय प्रेम का—आरोपण है तो वह एक—केवल एक पर, बलिहार जायगा—बलिदान जायगा। किन्तु…… ।

प्रमदा ध्यान करती चली जा रही थी—उस एकनिष्ठा अथवा एक पर स्नेहारोपण की बात। तब क्यों—यह विवाह क्यों है ? क्या वहीं एक पर आरोपण करते हुये उस पति नामक वस्तु पर वह आरोपण नहीं कर सकती ?

तब अनायास, प्रमदा अपने मुँह से बुदबुदा गयी—"नहीं कर सकती—नहीं कर सकती—नहीं कर सकती।" विवाह की जो पद्धति प्रचलित है उस पर नहीं कर सकती। नारी को रात्रि का नित्य जागरण—नित्य तन का खेल ही नहीं चाहिये। उस को पति नाम का ही व्यक्ति—अथवा केवल मात्र उसका वैभव ही नहीं चाहिये। उसे—उसे—उसे—वास्तव में उसके मन का हारा पुरुष चाहिये—सदा सर्वदा। इसका अभाव ही पुरुष-नारी की वह सम्मिलित चीत्कार है जिसमें समग्र संसार की पिसन स्पष्ट है।

इस सब में हो यह रहा था कि प्रमदा-वेदन से आकाश-पाताल की दूरी छूती चली जा रही थी।

वेदन लौटा। उसके हाथ में दूध का कुल्हड़ था। रसोई में बैठी प्रमदा के निकट दूध का कुल्हड़ रखते हुये वह बोला—"लो।"

"बच्चे सो गये हैं।" प्रमदा ने अत्यधिक शान्ति पूर्वक उत्तर दिया।

"लाओ मैं जगा कर पिला दूँ। तुम खुश हो लो।"

बात प्रमदा को तीर सी लगी और वह कुल्हड़ हाथ में लेकर उठ खड़ी हुयी। दूध गरम था। उसने उसे ठंडा किया और दो गिलासों में करके बच्चों को पिलाने चल दी।

तब बहुत शान्ति में ही उसने वेदन के साथ भोजन किया। वेदन की आकृति भी इस क्षण रोष-क्लेश से मुक्त थी।

तन का परिहास मध्यान्ह में ही परिपूर्ण हो गया था अतः अब उस की पुनरावृति का तत्काल कोई प्रश्न न था; अस्तु वेदन व प्रमदा पृथक-पृथक खाटों पर लेटे और सो गये।

× × × ×

प्रातःकाल से ही वेदन के कालेज जाने की तैयारी होने लगी। प्रमदा को आज सर्वाधिक सन्तोष यह था कि कालेज के समय पर, कम, से कम, वह स्वच्छन्दतापूर्वक मालवीय का साहचर्य-सुख प्राप्त कर सकेगी।

साढ़े दस बजे वेदन कालेज चला गया और ग्यारह बजे के करीब प्रमदा राकेश व रजनी को लेकर हास्पिटल चल दी।

वेदन ने साइकिल पर जाते-जाते मार्ग में प्रथम बार—ध्यान किया, आखिर यह मालवीय गया कहाँ? पता तो लगाना चाहिये। प्रमदा का हृदय एक नारी-हृदय है। वह इतनी भ्रान्ति में क्यों है? मालवीय की पत्नी मधुर से भी तो प्रमदा की अत्यधिक घनिष्टता थी। देखने वाले देखते थे कि वे दोनों दो तन एक प्राण रहती थीं। तब यदि मधुर के बच्चों पर प्रमदा का इतना स्नेह है तो इसमें उलझन की क्या बात है? फिर मालवीय उसका भी तो मित्र है। उस रूप में ही यदि प्रमदा उसके बच्चों का इतना ध्यान कर रही है तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? वस्तुतः, मालवीय उसके द्वारा ही तो प्रमदा के सामने आया है।...... और प्रमदा सन्तान विहीन है। यदि उसके हृदय में बच्चों के प्रति इतना

वात्सलय है तो कोई पाप तो नहीं है। व्यर्थ ही वह इतनी उलझन मान बठा। किन्तु कुछ भी हो पुरुष नारी की अधिक घनिष्ठता से कुछ भला अपेक्षित नही है अतः उसे सतर्कता व्यवहार में लानी ही चाहिये।

और वेदन के कालेज के गेट में प्रवेश करते ही कालेज के घन्टी लगाने वाले बूढ़े चपरासी की काली बिल्ली ने रास्ता पार किया किन्तु उसका बिना अधिक ध्यान किये वेदन आफिस पहुँच गया।

आफिस की चिक उठाते-उठाते आगे बढ़कर एक चपरासी ने उसे एक स्लिप दी।

मिस्टर वेदन,

सी मी इन माई आफिस, इमीजियेटली।

प्रिंसिपल।

प्रिंसिपल की स्लिप पाकर वेदन का माथा ठनका और तभी गेट की बिल्ली का भी ध्यान आया। वह सीधे प्रिंसिपल के आफिस गया।

प्रिंसिपल के आफिस में उस समय पाँच-छै अन्य लोग थे।

वेदन को देखते ही प्रिंसिपल ने तत्काल कहा—"यस प्रोफेसर वेदन! टेक योर सीट।"

"यस सर।" कहकर वेदन एक कुर्सी पर बैठ गया।

प्रिंसिपल ने, शीघ्रता में अपने समक्ष उपस्थित अन्य लोगों को विदा किया। तब उस एकान्तिक कमरे में प्रिंसिपल ने प्रारम्भ किया—"यस मिस्टर! ऐज आई हैव हर्ड यू आर ए मैरीड बैचलर?"

प्रिंसिपल के प्रथम वाक्य से ही वेदन के समक्ष सब कुछ घूमा और सर चकरा गया। आगे प्रिंसिपल नें कुछ नहीं कहा और एक लिखित आदेश वेदन को पकड़ा कर अन्य कार्य में लग गया।

वहीं बैठे-बैठे, वेदन उस कागज को आद्योपान्त पढ़ गया। उसी ग्वालियर-काँड के आधार पर उससे स्पष्टीकरण माँगा गया था और स्पष्टीकरण देने तक कालेज से अवकाश-निर्देश।

२६

प्रिन्सिपल के आर्डर के चार पर्त बनाता हुआ वेदन अपनी कुर्सी से चुपचाप उठ आया। वह किसी प्रकार सबकी दृष्टियाँ बचाकर कालेज के बाहर निकल जाना चाहता था। तभी वह चुपचाप गया और स्टैन्ड से साइकिल लेकर गेट के बाहर हो गया।

प्रिंसिपल को एक्सप्लेनेशन देने के लिये उसके पास था ही क्या? उसकी रिपोर्ट जिस स्पष्टता से की गयी थी उसके अनुसार उसके पास स्पष्टीकरण के लिये कुछ नहीं था।

वह सीधा घर की ओर लपका।

घर आकर उसने द्वार पर ताला बन्द पाया। इस समय उसके मस्तिष्क की विकृति का कुछ ठिकाना न रहा। वह ध्यान करने लगा— आखिर आज-कल यह प्रमदा जब देखो तब बाहर जाती कहाँ है? तब उसने ध्यान किया सम्भवतः मालवीय के बच्चों को छोड़ने उसके घर गयी हो। किन्तु उस समय वह उसके घर नहीं जाना चाहता था। वह घर के बाहर भी नहीं जाना चाहता था। किसी के पास नहीं बैठना चाहता था। किन्तु घर के अतिरिक्त वह बैठे कहाँ। तभी, यों ही उसने साइकिल उठायी और चल दिया।

मालवीय के घर आने पर उसने वहाँ का भी ताला बन्द पाया। अब वह अधिक सरोष हो रहा था। उसने प्रथम बार ध्यान किया, मालवीय

यहीं कहीं नगर में ही है और प्रमदा उसी के पास गयी है। किन्तु वह प्रमदा को कहाँ ढूँढे! और प्रमदा को ढूँढे या कहीं दीवाल में अपना सर फोड़ ले या कहीं कुएँ खाईं में डूब जावे।

तभी उसे ध्यान आया सुन्दरलाल का और वह हास्पिटल चल दिया।

× × ×

हास्पिटल आकर यों ही, पहले तो प्रमदा बच्चों को कमरे के बाहर जाने से रोकती रही कि कहीं किसी परिचित की दृष्टि न पड़ जावे। तदनन्तर कुर्सी पर बैठे-बैठे न जाने कैसा सा अतिरेक उसमें उभरा कि उसका जी चाहने लगा—तत्काल मालवीय से लिपट कर रो ले। किन्तु नौकर तथा बच्चों के समक्ष उसे अपना हृदय दाबे बैठा रहना पड़ा और वह उससे इधर-उधर की बातें करती रही।

तभी रजनी रो दी। राकेश भी—"भूख लगी है" पुकार उठा तथा राजीव भी बाहर घूमने की छटपटाहट में था।

प्रमदा ने बच्चों की आकुलता देखकर नन्दू से कहा—"थोड़ी देर इन लोगों को बाहर घुमा लाओ। राकेश को बाहर कैन्टीन में कुछ खिला देना।"

"बहू जी! मैं टिफनदान में मिठाई-नमकीन लाया हूँ।" नन्दू ने तत्परतापूर्वक उत्तर दिया।

किन्तु प्रमदा की आकुलता तो अनुभूति की सब आकुलताओं में महान् थी। अतः उसने नौकर से कहा—"वह बच्चों को दे दो और तब उन्हें बाहर टहला लाओ।"

मालवीय की हड्डी प्रातःकाल ही सेट करके प्लास्टर चढ़ा दिया गया था अतः वह इस समय चैन में था और एक अँगरेज़ी की किताब पढ़ रहा था जिसे बहुत अनुनय करके उसने नर्स से मँगाया था।

बच्चों के बाहर जाते ही प्रमदा ने द्वार बन्द करके सटकनी चढ़ा दी।

मालवीय ने उस द्वार बन्द करने के उद्देश्य को दूर से ही परखा और उसने पुस्तक एक ओर रख कर प्रमदा को लपेटने के लिये बाहें फैला दीं।

× × ×

वेदन ने हास्पिटल के फाटक में घुसते ही देखा—मालवीय के बच्चे व उसका नौकर एक ओर को जा रहे हैं। उन्होंने वेदन को नहीं देख पाया। तभी वेदन दूर से ही उनका पीछा करता रहा कि वे कहाँ जाते हैं। उन्हें देखकर उसके मन में नाना प्रकार की शंकायें उत्पन्न हो रही थीं। तभी नन्दू बच्चों को लेकर कैन्टीन में घुस गया। अब वेदन सुन्दरलाल के पास न जाकर दूर खड़ा बच्चों की ही प्रतीक्षा करता रहा।

थोड़ी देर में ही नन्दू बच्चों को लेकर बाहर निकला और हास्पिटल के लॉन में टहलता रहा।

वेदन ऊब रहा था। उसे क्रोध चढ़ रहा था। उसने अनेक बार सोचा—वह आगे बढ़ कर पूछे कि बच्चे यहाँ क्यों आये हैं? वह पूछ भी सकता था किन्तु पूछने के विषय में उसने ध्यान किया—यदि उससे छिपाया ही गया होगा तो कम से कम नन्दू का सा काइयाँ नौकर कुछ भी नहीं बतावेगा और बात बना देगा। मालवीय के बच्चों से बोलना क्या उनको देखने का भी उसका जी नहीं कर रहा था। धीरे-धीरे वेदन की यह निश्चित धारणा बन गयी थी कि मालवीय के समान उसके अभिन्नतम मित्र ने उसके साथ विश्वासघात यदि किया नहीं तो करने की बात सोची अवश्य है।

तभी वेदन ने यही उपयुक्त समझा कि वह दूर से ही उनका पीछा करे। तब उसने ध्यान किया इस समय अनेक परिस्थितियाँ प्रकट हो सकती हैं;—वह उन बच्चों के पीछे-पीछे चुपचाप जाकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ मालवीय हो। किन्तु मालवीय यहाँ होगा क्यों? और यदि हुआ तो कहीं किसी जनरल-वार्ड में तो होगा नहीं। कहीं प्राइवेट वार्ड में होगा क्योंकि

सुन्दरलाल के सिलसिले में वह कल सभी जनरल-वार्ड घूम चुका था। तब प्राइवेट-वार्ड में यदि प्रमदा भी हुयी ? किन्तु प्रमदा क्यों होगी ? प्रमदा और मालवीय की कुछ इतनी घनिष्ठता तो है नहीं कि वह इस प्रकार······ किन्तु स्त्री और पुरुष की घनिष्ठता होने में लगते कितने सैकेंड हैं······ इसी उधेड़-बुन में वेदन हास्पिटल के एक बरामदे में दूर खड़ा रहा और देर तक मालवीय के बच्चो पर दृष्टि गड़ाये रहा। नन्दू भी जानबूझ कर अपने मालिक तथा प्रमदा को अधिक एकान्त देने के हेतु बच्चों को देर तक लॉन में खिलाता रहा। कम से कम इतनी तो नन्दू की साधारण बुद्धि में आने की बात थी ही कि संसार में यदि बाबू की कोई भी चिन्ता किये हुये है तो एक······ये बहू जी। किन्तु क्यों ?

प्रतीक्षा करना भी प्रत्येक के वश का नहीं होता है। बहुतेरे पल भर में ऊब जाते हैं। कुछेक प्रतीक्षा में जीवन व्यतीत कर देते हैं।

अस्तु, वेदन ऊब गया। घंटों नहीं तो एक घंटा अवश्य हो गया और प्रतीक्षा का वह घंटा एक दिन सा लगा। तभी वह बरामदे से चला और लॉन में पहुँच गया।

"नन्दू कैसे आये ?"

"नमस्ते बाबू जी ! गाँव का एक आदमी यहाँ पड़ा था। उसको किसी ने लाठियो से पीट डाला सो सर फूट गया······।" नन्दू ने बे-हिचक कह दिया।

राजीव भी नन्दू के उत्तर से प्रसन्न हुआ। वह नन्दू से वैसे ही उत्तर की आशा कर रहा था क्योंकि चाची जी ने मना कर दिया था कि किसी से कुछ कहना नहीं कि तुम्हारे बाबू जी कहाँ हैं। नन्दू ने इतने से भी बहुत कुछ समझ लिया था।

"वह आदमी कहाँ है?" वेदन ने नन्दू से जिरह करने का प्रयत्न किया।

"क्या बतावें बाबू अभी तीन दिन हुये मिल गया था आज वह अपने

पलंग पर है ही नहीं ······और परसों से हमारे बाबू जी का पता नहीं है। न जाने कहाँ चले गये हैं। बच्चों का भी ध्यान नहीं। अब इन्हें घर पर कहाँ छोड़ता—साथ ही ले आया।······आप कैसे आये बाबू जी ?" कहने को नन्दू सब कुछ कह गया किन्तु सोचता रहा वेदन बाबू को कहीं पता लग गया हो और तभी ये यहाँ आये होंगे तब क्या होगा ? या छिप कर बहू जी का पीछा ही कर रहे होंगे तब ?

तभी वेदन ने आँखें तरेरते हुये कहा—"तुम्हारे बाबू कहाँ गये ?"

"क्या बतावें ! आपकी बहू जी ने भी तो बहुत खोज की।"

"हूँ······।"

किन्तु वेदन को नन्दू पर विश्वास नहीं हुआ। वह करता भी क्या ? विवश वह सुन्दरलाल के पास चला गया।

वेदन के मिल जाने से नन्दू चिन्तित हो रहा था। कहीं वेदन बाबू उसके ही पीछे न लग जायें। परन्तु बाबू जी तथा बहू जी को सूचना भी देनी थी कि वेदन बाबू अस्पताल आये हैं।

तभी राजीव बोला—"ऐ नन्दू ! रजनी को यहीं छोड़ जाओ और कमरे में जाकर चाची जी से कह आओ कि चाचा जी अस्पताल आये हुये हैं।"

नन्दू ने उस बच्चे की अपनी चाची के प्रति उस सहानुभूति को समझा। वह उस बच्चे का प्यार के प्रति आदर-सम्मान था। बच्चों में भी यह भावना कितनी जाग्रत होती है। जैसे राजीव जानता था कि चाची जी उसके बाबू जी का बहुत ख्याल करती हैं। यह ख्याल करना ही तो बच्चों को भी प्यारा होता है। जो बच्चो का जितना ध्यान करता है बच्चा उतना ही उससे अधिक हिलता-मिलता है।

अस्तु, हास्पिटल की उस भव्य इमारत में घूम-फिर कर नन्दू कमरे जा पहुँचा। प्रमदा उस समय वहाँ नहीं थी। तब वह कहे किससे कि···· क्योंकि उसके बाबू जी को क्या पता कि बहूजी ने क्या बात कही थी ! वह

बीच का छिपाव था। नन्दू ने चाहा वह बना रहे। प्रमदा होती तो वह उससे धीरे से कह देता।……किन्तु नन्दू ने कह ही दिया, "बाबू! वेदन बाबू आये थे।"

मालवीय चौंका किन्तु उसने अपना अन्तर्भाव नौकर से व्यक्त नहीं किया और उसने तत्परता पूर्वक प्रश्न किया, "कहाँ हैं?"

"उधर की तरफ कहीं चले गये।"

नन्दू उपर्युक्त सूचना देकर राजीव, राकेश एवं रजनी के पास चला गया। सूचना पाकर मालवीय, देर तक अनेक प्रकार से तर्क-वितर्क करता रहा। बिना किसी निष्कर्ष पर पहुँचे वह पुनः पुस्तक में लीन हो गया।

× × ×

प्रमदा ने आज मालवीय को रुपये वाला प्रसंग भी प्रकट कर दिया था और यह भी बता दिया था कि उसने उसकी आल्मारी के रुपये लिये हैं जिसमें लगभग साढ़े छै सौ रुपये उसी के पास हैं। इस पर मालवीय ने कहा रुपये तो उसके बैंक में भी लगभग चार हजार पड़े हुये हैं। अतएव किसी प्रकार की चिन्ता की कोई बात नहीं है। प्रमदा और मालवीय अभिन्नतम—जीवन-साथी की भाँति अनेक प्रकार से भावी कार्य-क्रम बनाते रहे।

प्रमदा के ही यह कहने पर कि वह कहाँ उस बोझ को लादे घूमे… उसके ही बोझ………क्या कम हैं, मालवीय देर तक हँसता रहा तथा लजाई सी वह भी मौन-मुस्कानें खींचती रही।

तभी मालवीय ने कहा—"कुछ रुपये खर्च भर को निकाल कर शेष घर पर ही रख लो।"

"चोरी जाने को?"

"तब राजीव को दे देना। वह आल्मारी में रख देगा।"

"वह ठीक है किन्तु आप इतना अधिक रुपया उसे कैसे दे देते हैं? अभी बच्चा ही तो है।"

"यों तो वह इससे अधिक रुपया भी सँभाले रहता है किन्तु अच्छा है बैंक चली जाओ।"

"मैं ?"

"क्यों क्या हुआ ?

"मैं आज तक तो कभी गयी नहीं।"

"उस गधे वेदन का एकाउन्ट भी तो बैंक में है।......तब बी० ए० बीबी क्या झख मारने के लिये है ?"

"वह बात छोड़ो। बताओ, मैं बैंक जाती हूँ।"

तब मालवीय ने प्रमदा को बताया कि पंजाब नेशनल बैंक, किनारी बाजार में उसका एकाउन्ट है। और विस्तार में उसे यह भी समझा दिया, कि कैसे वह बैंक में जाकर काउन्टर को देखेगी। तब तीन नम्बर करेन्ट एकाउन्ट की तख्ती लगी देखकर उस क्लर्क के पास जावेगी। उससे रुपया जमा करने की किताब लेगी जिसे पे-इन-स्लिप कहते हैं। तब उसमें अलग-अलग खानों की वह पूर्ति करेगी और रुपया उस किताब में भरेगी। तब कैश-डिपार्टमेन्ट में जाकर वह किताब व रुपया खजान्ची को देगी। खजान्ची रुपया लेकर उस पे-इन-स्लिप पर मोहर लगा कर रसीद सहित वह किताब लौटा देगा।

प्रमदा ने वह सब बड़े ध्यान पूर्वक सुना और बोली, "मैं बैंक जा रही हूँ......रुपया जमा करके घर जाऊँगी। नन्दू व बच्चे हैं ही। तब मैं मध्यान्तर में लौटूँगी।"

प्रमदा सी समझदार महिला से यह कहना कि कहीं रुपया खो-गिरा न देना—उसकी बुद्धि के प्रति सीधा आक्रमण होता। अतः मालवीय ने कुछ नहीं कहा और—"जल्दी आना।" कहकर उसने सामने बाहें फैला दीं।

प्रमदा भी कुर्सी पर से उठते-उठते मालवीय की बाहों में जकड़ गयी। उसने एक साथ दस-बीस-पचास चुम्बन मालवीय पर लपेट दिये और "टाँ-टाँ" कहकर चली गयी।

मालवीय ने जीवन के अमित सुख का अनुभव कर पलक मूँद लिये।

तभी नन्दू को प्रमदा कमरे में नहीं मिल सकी।

बैंक जाकर प्रमदा ने मालवीय के निर्देशानुसार अत्यधिक बुद्धि का व्यय करके ठीक-ठीक कार्य निबटा दिया। उसने अपनी गति-विधि में इस सतर्कता विशेष रूप से ध्यान रक्खा कि कोई उसे देख कर यह न कह सके कि वह बैंक पहली बार आई है।

पाँच सौ रुपये की रसीद को भली प्रकार देख कर, बड़ी मगन, प्रमदा द्वार की ओर चल दी। अब कोई पुरुष होता तो अपनी कोट, कमीज़ कुर्ते की किसी जेब में रुपया जमा करने वाली किताब रख लेता। वह बेचारी कहाँ रखती अतः वह पे-इन-स्लिप हाथ में लिये हुये ही प्रमदा मन्द पग बढ़ाती हुयी आगे बढ़ गयी।

आज नक्षत्र क्रिया-शील था कि कुछ हो कर रहेगा। अस्तु, वेदन सुन्दरलाल के पास से खड़े-खड़े होकर ही लौट आया। मालवीय व वेदन दोनों ही रात-दिन के साथी थे अतः उनके बैंक एकाउन्ट भी एक ही बैंक में थे। मालवीय के एकाउन्ट में रुपया अधिक था जब कि वेदन के खाते में ग्यारह-बारह सौ रुपया ही पड़ा था।

इस समय वेदन के समक्ष परिस्थितियाँ कुछ विशेष थीं अतः वह बैंक से कुछ रुपया निकालने वह बैंक चल दिया। रुपया उसने प्रमदा के पास देख लिया था किन्तु वह उससे लेना उचित नहीं समझ रहा था क्योंकि प्रमदा के मन में वह किसी प्रकार की शंका भी उत्पन्न नहीं करना चाहता था।

दैवात् वेदन के बैंक के फाटक पर घुसते ही उसने प्रमदा को रुपया जमा करने की किताब हाथ में लिये हुये सामने ही देखा। वेदन का चकराना स्वाभाविक ही था। किन्तु उसने सन्तोष किया कि उसने प्रमदा के रुपये निकाल लिये थे अतः सुरक्षा के लिये यदि उसने रुपये बैंक में जमा कर दिये हैं तो उचित ही है····· किन्तु वह सन्तोष वहीं पूर्ण नहीं

हो पाया। तत्काल उसने ध्यान किया—क्या प्रमदा ने उससे छिपाकर बैंक में एकाउन्ट खोल रक्खा है अथवा आज नया एकाउन्ट खोला है। तब नया एकाउन्ट खोलने में बैंक को किसी ऐसे व्यक्ति की सिफारिश की आवश्यकता पड़ती है जो बैंक से परिचित हो। तब प्रमदा ने वह सिफारिश किससे कराई ?

एक क्षण में ही वेदन यह सब सोचते हुये प्रमदा के निकट आ पहुँचा।

"रुपया जमा करके आ रही हो.........देखूँ।" कहते हुये वेदन ने पे-इन-स्लिप प्रमदा के हाथ से ले ली।

बैंक में वेदन को देखकर वैसे ही धरती खसक गयी थी अब इस प्रकार हाथ से पे-इन-स्लिप जाते देखकर उसके देवता कूच कर गये।

तब—जब वेदन ने पे-इन-स्लिप में मालवीय का नाम पढ़ा—क्योंकि रुपया तो मालवीय के ही खाते में जमा किया गया था तो एक पल में प्रमदा के पति के मस्तिष्क की विकृति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी। अपनी पत्नी का दूसरे पुरुष से इस सीमा तक लगाव......पति के लिये असह्य था। वह अक्षम्य अपराध था।

तब चुपचाप स्लिप उसने प्रमदा को दे दी और बिना बोले वह बैंक के अन्दर चला गया।

२७

बैंक से प्रमदा तो तुरन्त चली आई और वेदन थोड़ी देर के बाद रुपये लेकर घर लौटा। अब परिस्थिति बहुत भिन्न तथा स्पष्ट थी। वेदन के माथे पर सैंकड़ों बल पड़े हुये थे। उसकी भौंहें तन गयी थीं। वह क्रोध में काँप रहा था। वह सोच ही न पा रहा था कि शान्त मौन रहे अथवा एक दम उबल पड़े। कुछ देर तो, क्रोध को पिये हुये वह तख़्त पर पड़ा रहा। प्रमदा ने तनिक भी चिन्ता नहीं की और वह छोटे कमरे में जाकर अपने सन्दूकों के कपड़ों को निकालती-लगाती रही ज्यों सब कुछ व्यवस्थित कर रही हो। तभी उसके कानों में स्वर गूँजा—"प्रमदा!......"

आवाज़ जितनी उग्रता से छोटे कमरे में घुसी थी उसके अनुसार प्रमदा में भी रोष भर आया और पहले तो उसने चाहा कुछ भी उत्तर न दे किन्तु पुनः आवाज़ आयी—"इधर आओ।"

विवश प्रमदा बड़े कमरे में जा पहुँची।

"ये रुपये किस के थे?"

"प्रोफेसर मालवीय के।"

"तुम्हारे पास कैसे आये?"

"राजीव ने दिये थे।"

"किस लिये......?"

"तुमने क्या समझा ?"

"मुझ से सवाल करने का साहस मत करो। केवल मेरे प्रश्न का उत्तर दो...... !"

"तुमको भी मुझ से प्रश्न करने का साहस नहीं करना चाहिये।" प्रमदा ने उसी प्रकार तीव्रता भरे शब्दों में उत्तर दिया।

"इतना बढ़ गयी हो ?"

"हाँ, अभी और बढ़ूँगी .....तुमसे भी अधिक।"

"मुझ से ?"

"हाँ तुम से......अभी मैं ग्वालियर कहाँ गयी हूँ। अभी मेरे पीछे गुण्डे कहाँ लगे हैं।" प्रमदा कहते-कहते कमरे के बाहर हो गयी।

वेदन को उलटे रोज़े सर पड़ गये थे। वह झपट कर तख़्त पर से उठा सैंडिल पहनी और चल दिया। आँगन से बाहर पैर रखने के पहले उसने देखा—प्रमदा दूसरी ओर मुँह किये खाट पर बैठी थी। वेदन का जी चाहा कि एकदम आगे बढ़ कर तड़ातड़ दस-बीस-तीस घूँसे थप्पड़ वह प्रमदा के लगा दे किन्तु अनायास वह सोच गया—उसे समाज के शिक्षित वर्ग का व्यक्ति कहा जाता है। वह समाज का निर्माता है। वह जो कुछ सिखाता है उसे विद्यार्थी पढ़कर अपने भविष्य का, अपने चरित्र का और न जाने कहाँ तक निर्माण करने का विचार करते हैं। अपनी ही पत्नी को पीटना—इस पाशविकता के आगे शेष क्या है ? वह उनके बीच विचारों, मान्यताओं, व्यवहारों का मतभेद है। उनमें समानता का अधिकार होना चाहिये—और वेदन तत्काल सीढ़ियों से उतर गया।

वेदन जाता भी कहाँ ? किसी ओर जाने का स्थान नहीं था। ऐसे में कोई मित्र—बान्धव भी भला नहीं लगता है। तभी वह निकटवर्ती एक चाय की छोटी दूकान पर जा खड़ा हुआ।

"प्रोफेसर साहब, इधर अन्दर निकल आइये।" एक स्वर प्रकट हुआ।

वेदन ने देखा—उसके मकान के तीन मकान आगे रहने वाले एक

सज्जन अन्दर बैठे हैं और उसे पुकार रहे हैं। रोष की उस जटिलता में वह उन सज्जन के निकट ही मेज़ पर जा बैठा।

"लाओ भाई चाय लाओ······और कुछ लीजिये प्रोफेसर साहब ?" उन सज्जन ने चाय वाले को आर्डर देते हुये वेदन से प्रश्न किया।

"मैं मँगा रहा हूँ।"

"ऐसी भी क्या बात है ? लाओ— चाय।······आपके यहाँ कोई बीमार है ?"

"नहीं तो।"

"कल आपकी मिसेज़ को हास्पिटल में देखा था।" वे सज्जन कह गये।

वेदन को लगा किसी ने उसे बलपूर्वक पकड़ कर दूकान से बाहर सड़क पर फेंक दिया है।

"मैं कह नहीं सकता। सम्भव है उसकी कोई परिचिता हास्पिटल में हो।" वेदन ने अपनी परिस्थिति सँभाली। किन्तु—प्रमदा, हास्पिटल, नन्दू मालवीय के बच्चे—दूकानदार द्वारा तत्काल मेज़ पर रक्खे चाय के प्याले में तैर गये।

शीघ्रता में उसने चाय जैसे-तैसे गले में चढ़ायी और हास्पिटल चल दिया। हास्पिटल आकर वेदन ने एक-एक जनरल-वार्ड देख डाला। तब प्राइवेट वार्डों को देखने के लिये वह उस ओर बढ़ा। हास्पिटल में प्राइवेट वार्ड एक ओर बने हुये थे किन्तु उसने ध्यान किया वह ऐसे हरेक कमरे में घुस कर तो देख नहीं सकता। तब ?

वह हास्पिटल के आफिस में गया। रुपये प्रमदा ने जमा कराये थे। अतः हास्पिटल के आफिस में मालवीय शब्द न जोड़कर उसने केवल मालवीय का नाम मोहनदास लिखाया था। पहले तो वेदन केवल मोहन दास नाम के आधार पर कमरा नं० ५ में जाने से झिझका किन्तु फिर सोच गया देखने में क्या हानि है।

ज्योंही वेदन प्राइवेट-वार्ड नम्बर ५ के सामने पहुँचा प्रमदा कमरे के अन्दर जा चुकी थी। वेदन चुपचाप वहाँ से हट आया। उसे निश्चय हो गया कमरे में मालवीय पड़ा है—और कोई नहीं हो सकता। उसकी पत्नी का आगरे में ऐसी निकटता किसी से है ही नहीं कि जिसकी जानकारी उसे न हो।

तब कभी उसका अन्तर्द्वन्द्व चीखता—अन्दर कमरे में घुस जाओ। कभी कहता—नहीं शान्ति से—धैर्य से काम लो। यह जीवन क्रम है—यह चक्र है—देखते जाओ क्या होता है ? संसार किस गति पर चलता है। कभी किसी कमरे के सामने उसे—वेदन को—ढूँढने वाला भी कोई—कहीं पहुँचा था।

× × ×

"यह तो ठीक नहीं हुआ। कम्बख्त वेदन को भी उसी समय बैंक पहुँचना था।" मालवीय बोला।

"होगा। चिन्ता कौन करता है ?" अत्यधिक उपेक्षा भरे शब्दों में प्रमदा कह गयी। मालवीय को वे दो शब्द भले लगे।

"फिर भी……।"

"फिर भी क्या ? क्या प्रोफेसर वेदन का यह साहस भी हो सकता है कि वह मुझसे कुछ कहे ?"

"हो सकता है……।" मालवीय कह गया।

"तब उसके उत्तर में मेरा यह थप्पड़ भी……।"

"यह अनुचित है—प्रमदा !"

"धोखेबाज़…… !" कमरे में शब्द गूँजा और वेदन ने कमरे के द्वार को खोल कर अन्दर प्रवेश किया।

उस विषम स्थिति से मालवीय तो तत्काल चिन्तित हो गया किन्तु प्रमदा निर्भय बैठी रही।

वेदन आगे बढ़ा। मालवीय के पलंग के पायताने आ खड़ा हुआ।

एक पल उसने मालवीय की ओर तलवार की धार सी तेज़ दृष्टि से देखा और कह गया—"पैर के बजाय इस काले मुँह पर प्लास्टर नहीं चढ़वाया, बहानेबाज़।" और वेदन तत्काल बिना प्रमदा की ओर देखे कमरे के बाहर हो गया।

"इसे पता कैसे चला?" वेदन के जाते ही मालवीय ने पहला प्रश्न किया।

"चल भी जाने दो......तुम्हारा हाल कैसा है?......आज पैर का दर्द?" जैसे कहीं कुछ हुआ ही नहीं इस प्रकार पूर्ण निश्चिन्तता पूर्वक प्रमदा ने मालवीय से प्रश्न किया।

"मैं तो ठीक हूँ......लेकिन......।"

"डरपोक। इतने डरते क्यों हो?"

"मैं तो निर्भय हूँ। डर मुझे तुम्हारा है। इसका क्लेश तुम्हें भुगतना पड़ेगा।"

"हः!" कहते हुये प्रमदा ने नया आया हुआ 'फिल्म-फेयर'—छोटी मेज़ पर से उठा लिया और तस्वीरें पलटने लगी।

एक क्षण को कमरे में निस्तब्धता फैल गयी जिसमें मालवीय उद्विग्न होता गया—प्रमदा को वह दुष्ट तंग करेगा—प्रमदा पर वह प्रतिबन्ध लगायेगा—प्रमदा—प्रमदा—प्रमदा, और उसका जी चाहा कि वह सामने बैठी प्रमदा को अंक में भर लेवे।

"सुनो!" तभी प्रमदा ने कमरे की नीरवता भंग की—"इधर मेरी तबियत बहुत गिरी-गिरी रहती है। दिन भर जी मिचलाया करता है।"

"नींबू......।"

"खाया।"

"छोटी इलायची।"

"चबायी।"

"योंही कुछ होगा। ठीक हो जावेगा।"

तब फिर प्रमदा मैगज़ीन देखती रही और मालवीय विचारों में उलझ गया। वह सोच रहा था—प्रमदा को इस समय घर जाना चाहिये किन्तु प्रमदा को कोई चिन्ता ही नहीं थी।

"सुनो!" इस बार मालवीय ने प्रारम्भ किया।

"क्यों?"

"कहाँ गया होगा?"

"भाड़ में……।"

मालवीय हँस दिया और तत्काल गम्भीर होकर ध्यान करने लगा—नारी जब विद्रोहिनी हो जाती है। उसका अहं तब जाग उठता है।

"अच्छा, सुनो अब मैं जा रही हूँ। जाना ही पड़ेगा। फिर वहीं—उसी के पास……और हो सकता है—चार-छै-आठ दिन मैं तुम तक भी न आ पाऊँ। अपने दो चार मित्रों को अब तो सूचित कर ही देना। ठीक से रहना। घबड़ाना नहीं। जल्दी सेठीक हो लो……"कहते-कहते प्रमदा कुर्सी पर से उठी और उसने मालवीय के ओठों पर अपना अधर रख दिया।

मालवीय चुसकियाँ भरता रहा।

× × ×

प्रमदा घर आई और फिर कई दिन तक घर से नहीं निकली। मानसिक उद्वेलन में वेदन भी कुछ स्थिर न कर पाया किन्तु उसने प्रमदा से एक शब्द नहीं कहा। उसने कुछ नहीं कहा—इसका प्रमदा पर कोई प्रभाव नहीं था। वह कहता भी तब भी कोई प्रभाव न होता किन्तु उसको यह ज्ञात हो चुका था कि प्रोफेसर साहब को 'ससपेन्शन-आर्डर' मिल चुका है और कालेज जाना बन्द है। वह अब घर के बाहर भी नहीं निकलता था। दिन में एक-दो कालेज के प्रोफेसर आते रहते थे और उसे अनेक प्रकार से समझा कर युक्तियाँ बताते रहते थे।

कोई कहता—"देते क्यों नहीं? एक्स्प्लेनेशन दो। लिखो वह साली

अपनी मर्जी से गयी थी ! राज़ी से जाने पर कोई कानून नहीं चलता है ।"

दूसरा कहता—"वह तो ठीक है किन्तु कानून नहीं तो नैतिकता तो चलती है । एक कालेज के प्रोफेसर से उस सब की आशा तो नहीं की जाती जैसी किसी साधारण व्यक्ति से ।......फिर भी ऐसे न जाने कितने तमाशे रात-दिन होते रहते हैं । बचाव तो करना ही चाहिये ।"

वेदन, चुपचाप, सब सुनता और अपने कालेज में नहीं मालवीय व प्रमदा में डूब जाता ।

साथ ही कालेज में यह बात भी प्रकट हो गयी कि प्रोफेसर मालवीय को चोट लगी है और वह हास्पिटल में पड़ा है । अब तो हास्पिटल में इष्ट-मित्रों का ताँता लग गया ।

सब आते किन्तु थकी आँखें द्वार पर उसको ही निहारती रहतीं—जो न आता ।

तभी मालवीय को वेदन के 'सस्पेन्शन आर्डर' का भी पता लगा । उसने तुरन्त ध्यान दिया—मिस्टर जैन जब आये थे तो वे प्रिंसिपल से मिले थे । प्रिंसिपल से उनकी घनिष्ठता की बात भी उसे स्मरण हो आई और तभी मालवीय ने मिस्टर जैन के पत्र में अपनी चोट तथा वेदन के कालेज से अस्थायी-निष्कासन की बात लिख दी और उन्हें आगरे बुलाया।

मिस्टर जैन भी उस नवीन मैत्री के रक्षार्थ आगरे आये ।

भागदौड़ होती रही ।

× × ×

इधर दो सप्ताह निकलने पर भी प्रमदा घर से बाहर नहीं गयी । किसी न किसी प्रोफेसर के उड़ते शब्द उसके कानों में पड़ जाते थे—"मालवीय ठीक हो रहा है ।" और वह अपने आवेग को रोक कर छोटे कमरे में पड़ी रहती।

वेदन के तार पर वेदन की एक चाची तीसरे दिन ही घर से आ गयी थीं अतः उन्होंने वेदन एवं प्रमदा के मध्य का मतभेद जानकर घर

का भार अपने ऊपर ले लिया था। वे भोजन बनाती थीं जिसे प्रमदा व वेदन खा लेते थे।

मालवीय ने भी अपने श्वसुर को तार देकर बुला लिया था जो बच्चों व उसकी देखभाल कर रहे थे।

इस सब अन्तर्द्वन्द्व, इस सब मतभेद, अनबोले में प्रमदा सोचती चली जा रही थी—अब शेष क्या है? लगभग सब कुछ स्पष्ट सा ही है। वेदन को सब कुछ ज्ञात हो चुका है? तब वह वेदन के पास क्यों है अथवा वेदन उसके पास क्यों है? अब तो उस प्रकार के पति-पत्नी सम्बन्ध में प्रमदा को पति से केवल आर्थिक सहायता—सहयोग ही लेना पड़ रहा है अन्यथा यह पति-पत्नी का कैसा नाम है? तब उस आर्थिक कारण को लेकर वह वहाँ क्यों रुकी हुयी है? वह उस घर में क्यों है? वह क्यों उस बन्धन को मान रही है जिस आधार पर वह अपनी आत्मा की पुकार को दाब कर मालवीय के पास हास्पिटल नहीं जा पा रही है। यों, वेदन ने कुछ कहा नहीं। रोका नहीं किन्तु वह बन्धन है तो। तभी धीरे-धीरे प्रमदा के मन में यह बात स्थान बना रही थी कि उसे वेदन को निर्बन्ध कर देना चाहिये अथवा उसे वेदन से स्वच्छन्द हो जाना चाहिये। वह अपने भरण-पोषण के लिये कुछ, व्यवस्था कर लेगी। वह बी० ए० है। इतना पर्याप्त है।

× × ×

"प्रोफेसर मालवीय क्या बात है? प्रोफेसर वेदन व उनकी पत्नी को मैंने आपके निकट एक बार भी नहीं देखा कहाँ वे आपके इतने निकटतम मित्र थे और आपने ही उनके लिये मुझे पत्र लिखा था। मैंने उनसे तो पूछना उचित न समझा क्योंकि मैंने ध्यान किया—कोई कारण तो है ही? इधर मैंने देखा मिसेज़ वेदन बड़ी क्षीण हो गयी हैं। वे पीली पड़ी हुयी हैं। वे बहुत उदास भी रहती हैं।" मिस्टर जैन ने हास्पिटल में मालवीय से कहा।

प्रमदा क्षीण-उदास-पीली पड़ी हुयी है—सुनकर मालवीय का अन्तर्मन कराह उठा तभी उसने उत्तर दिया—"योंही, कोई खास बात नहीं है !"

"मैं सोचता हूँ—यों ही कोई खास बात ही है।" मिस्टर जैन ने कहा।

"नहीं। मिस्टर जैन कुछ नहीं।"

"है। और क्या है ? क्या हो सकती है ? यह मैं भली प्रकार समझ सकता हूँ किन्तु······।" मिस्टर जैन ने मालवीय को वार्तालाप में तोलते हुये व्यक्त किया।

"तब फिर प्रश्न का प्रश्न नहीं उठता है, मिस्टर जैन।"

"यह मैं मानता हूँ।······यह प्रोफेसर वेदन का मामला है तो सत्य ही ?"

"हाँ।"

"तब ऐसे में भी मुझसे उन की सहायता करा कर समाज के ऐसे दूषण को आप प्रोत्साहित कराना चाहते हैं, प्रोफेसर मालवीय ?"

"हाँ पाप और पेट का कोई सम्बन्ध नहीं है मिस्टर जैन।"

"तब पेट के लिये प्रोफेसर वेदन ऐसे व्यक्ति को ठेला चलाना चाहिये न कि किसी शिक्षा-संस्था का प्रोफेसर होना चाहिये।"

"किन्तु आप क्या सोचते हैं कि अब प्रोफेसर ठेला चला सकता है।"

"जब वह ग्वालियर जा सकता है तो ठेला भी चला सकता है। नहीं चलावेगा तो विवशता में चलाना पड़ेगा।"

"वह अलग बात है। हमें मित्रता के नाते भले-बुरे में उसका साथ देना है। वह हमें देना चाहिये। भले ही हमारा उन भलाइयों-बुराइयों से सम्बन्ध न भी हो। न होता ही है।"

"लेकिन मुझे तो आशा कम है। अकेले प्रिंसिपल की बात नहीं है। वह मामला कमेटी के समक्ष है।"

"प्रिंसिपल का कमेटी पर अधिक प्रभाव है। और आप प्रिंसिपल को सँभाल दीजिये।"

"वह बेहद नाराज़ है।"

"फिर भी आपका दोस्त है।"

"देखिये प्रयत्न तो कर रहा हूँ।"

× × ×

वेदन की भागदौड़ में दो महीने लग गये। इधर मालवीय भी ठीक होकर हास्पिटल से चला आया। प्रमदा उस दिन के बाद हास्पिटल नहीं गयी, न ही मालवीय के स्वास्थ्य-लाभ की प्रसन्नता में उसके घर। रह-रह कर उसका मन मसोसे ले रहा था किन्तु वह गयी ही नहीं। वह चाहती तो जा भी सकती थी। फिर भी नहीं गयी। उधर उसका स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। उसके अंग-प्रत्यंग शिथिल-पीले हो गये थे।

उस की मनःस्थिति में भी परिवर्तन आ गया था। उसे कुछ रुचिकर नहीं लग रहा था। समग्र-भूमण्डल सब लोग। मालवीय भी नहीं।

तभी एक दिन सुसम्वाद मिला—वेदन के कालेज का मामला ठीक हो गया है।

प्रसन्नता में वेदन घर आया। किन्तु कालेज का मामला कैसा था जिससे उसको छुटकारा मिल गया। यह ध्यान कर जैसे तत्काल उसे मौत की सजा बोल दी गयी और वह शान्त होकर बड़े कमरे के तख़्त पर जा लेटा।

संध्या समय कालेज के कुछ मित्र आये जो उसे उस प्रसन्नता में 'पिक्चर' ले गये।

× × ×

प्रमदा आँगन में लेटी थी वह उठी और बोली—"चाची जी, मैं ज़रा जा रही हूँ।"

"कहाँ ?"

"अभी आती हूँ।" कह कर वह सड़क पर आई। प्रमदा के हाथ

में कागज का एक बंडल था जिसमें चार साड़ियाँ, चार ब्लाउज़, टूथ-बुरुश पेस्ट, साबुन, कंघा, एक छोटा नेपकीन तौलिया लिपटा हुआ था जिससे वेदन की चाची को संदेह भी नहीं हुआ कि प्रमदा क्या लिये जा रही है। शेष के लिये उसने सोचा—बाज़ार पड़ा हुआ है। उसने एक रिक्शा लिया और सीधे मालवीय के घर गयी। दुर्भाग्य से मालवीय कहीं गया हुआ था।

प्रमदा एक क्षण कमरे में बैठी उसने राजीव, राकेश व रजनी को पास बुला कर पुचकारा उन्हें चूमा और नन्दू से एक कागज-पेंसिल माँगा। तभी प्रमदा ने एक स्लिप लिखी और नन्दू को दी—"बाबू के आने पर दे देना।"

"बहू जी इतने दिन बाद आई हैं। थोड़ा बैठिये।"

"नहीं नन्दू। मुझे जाना है।"

× × ×

देव।

मुझे माफ कर देना। मैं जा रही हूँ—मरने नहीं। दुनियां से दूर बहुत दूर। तुमसे दूर नहीं तुम्हारे पास बहुत पास।

यदि जी करेगा तो आऊँगी। तुमसे मिलूँगी या तुम्हें बुलाऊँगी—तब तुम आओगे, न। आना।

और—मैं तुम्हारे बच्चे की माँ होने वाली हूँ। उसी सहारे को साथ लिये जा रही हूँ।

अभिन्न
प्रमदा

मालवीय ने स्लिप जल्दी-जल्दी पढ़ा और स्टेशन लपका। उसके घर आने और प्रमदा के जाने में दो मिनट का अन्तर ही पड़ा होगा अतः एक महान आशा लिये मालवीय स्टेशन की ओर लपका।

उसका सौभाग्य जिस रिक्शे में प्रमदा थी उसकी चेन उतरी नहीं; टूट गयी थी अतः रिक्शे वाला सड़क के किनारे एक विचित्र सी उलझन

में खड़ा था तभी निकट से मालवीय का रिक्शा पहुँचा और उसने प्रमदा को देखते हुये अपना रिक्शा रोका।

स्लिप इसके हाथ में थी।

"तो तुम आ गये?"

"हाँ, प्रमदा। आओ इस रिक्शे में आजाओ।"

प्रमदा ने अपने रिक्शे वाले को पैसे दिये और उस दूसरे रिक्शे में जा बैठी।

"कहाँ चलोगे?"

"जहाँ चाहो।"

"घर चलो।"

"न।"

"तब।"

"चलो 'ताज' चलें।"

"चलो।"

"किन्तु......," मालवीय ने कुछ कहना चाहा।

"बोलो मत। ऐसे ही चुप बैठे रहो। शान्त मुझे ऐसे बहुत अच्छा लग रहा है।" प्रमदा ने कहा और अपनी ऊँगली मालवीय के ओठों पर टिका दी।

राधा-कृष्ण के प्रेम-विरह की प्रतीक यमुना किनारे बह रही थी। प्रमदा व मालवीय का रिक्शा यमुना के किनारे की पक्की सड़क पर हरियाली और वृक्षों के बीच भागा चला जा रहा था। प्रमदा मालवीय के कन्धे पर सर टेके बैठी थी। मालवीय ने प्रमदा के कक्ष में हाथ डाल कर उसे अपने में सटा रक्खा था। वे दोनों मौन थे।

तभी ताजगंज आया वह लाल पत्थर की चौहद्दी दिखाई दी और बाहर इक्के, ताँगे, रिक्शे और कारों की भीड़।

रिक्शा छोड़कर---न जाने कैसे से अतिरक में प्रमदा मालवीय को

साथ लिये चलने लगी। धीरे-धीरे ताज के अन्दर पहुँच कर प्रमदा ने सामने उस अमर-स्मृति को निहारा। वह यों ही चुप ताज के समक्ष फैले हुए लानों में से बायीं ओर के एक लान पर बढ़ते हुये एकान्त में जाकर बैठ गयी। मालवीय उसका अनुगमन कर रहा था। उसकी अपनी दशा भी बहुत विचित्र हो रही थी।

हरियाली पर बैठ कर प्रमदा ने आरम्भ किया—"मेरे देवता! रोकने आये हो। रोकना मत।······वह देखो वह ताज—वह मिलन की नहीं विदा की स्मृति है। इसलिये तुम्हें यहाँ लायी हूँ यहाँ लाने के लिये ही तुम्हारे पास गयी थी किन्तु तुम मिले नहीं······तब, तुम मिल ही गये। तुम मुझे मिल ही गये।······"

"किन्तु······।"

"पूछना चाहते हो कहाँ जा रही हैं?

"हाँ।"

"मुझे स्वयं पता नहीं है किन्तु जाने पर भी तुम मेरे साथ रहोगे इस-लिये हर जगह प्रसन्न रहूँगी······।"

"कभी नहीं मैं तुम्हें ऐसे कदापि न जाने दूँगा।"

"एक बड़ा विश्वास लेकर तुम्हारे सामने आई थी कि तुम रोकोगे नहीं······मेरे विश्वास को ठेस मत पहुँचाना। मुझे रोकना मत। तुम्हारा अंश तो मेरे साथ है।"

"और मैं?"

"तुम राजीव, राकेश और रजनी को सँभालना। मैं जाकर सूचना दूँगी। अपनी सूचना निरंतर देती रहूँगी।"

"किन्तु तुम जानती हो इस कालिमामय संसार की गति? कहाँ भटकोगी?"

"कहीं नहीं। जाना कहाँ है? कहीं अपनी करुणा करूँगी। मुझे केवल इस पति नाम के बन्धन को तोड़ना है। बस उसे नष्ट-भ्रष्ट करके जा रही हूँ। उस पति की नौकरी पुनः व्यवस्थित होगयी है—अब वह सुख

से रहे और उसका संसार।……किन्तु अब मैं उसे पति क्यों कह रही हूँ—छिः……।"

"हाँ तो मद्रास में मेरी एक स्कूल की साथिन है। वह एक कानवेन्ट में शिक्षिका है। मैं उसी के पास जा रही हूँ। मैंने उसे पत्र लिख कर पहले ही व्यवस्था कर ली है। उसे मैंने तार भी दे दिया है। वह मुझे स्टेशन पर मिलेगी।……मैं तुम्हें पत्र दूँगी। तुम आना।"

"किन्तु तुम्हारे पास खर्च……।"

"हाँ, यह नहीं है। इस पैसे के बिना भी संसार का कोई काम नहीं चलता है।……देखो तुम इतने दिन हास्पिटल में रहे तब मैं नहीं आई और अब रुपये लेने ही तुम्हारे पास गयी थी……।"

मालवीय कुछ बोला नहीं। उसने ध्यान किया दो सौ रुपये उसने आज ही बैंक से निकाले थे। अच्छा हुआ। वह प्रमदा के हेतु ही जैसे आये थे।

प्रमदा ने घूम कर देखा—मालवीय के नेत्रों से आंसुओं का सागर उमड़ रहा था।

"पगले! रोते हो। मैं तुम से दूर कहाँ हूँ किन्तु जब तक समाज की इस व्यवस्थ का ढोंग चल रहा है तब तक मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकती और……और तुम्हारे मन के निकट ही रहने की मेरी इच्छा है। तन की तृप्ति…वह पूर्ण हो गयी है मेरे देवता—सर्वथा पूर्ण। तुम्हीं ने तो उसे पूर्ण कर दिया।……अब कभी जीवन पर्यन्त चेष्टा भी मत करना" कहते हुये प्रमदा ने मालवीय के वक्ष पर अपना सर रख दिया और अपने आँचल से मालवीय के नेत्र सुखाती रही।

"तो तुम्हें जाना है प्रमदा?"

"हाँ, मेरे प्राण। खुश होकर मुझे विदा करो।"

"तब ट्रेन।"

"रात्रि में दस बजे।"

"जितने पास में हों, दे दो।"

"एक दिन रुक कर जाना।"

"नहीं अब जाने दो।"

तब प्रमदा व मालवीय, देर तक ताज के समक्ष शान्त—सुस्थिर बैठे रहे। चारों ओर रात का अँधेरा घिरा था।

उस विदा बेला में—दुःखी-मन मालवीय प्रमदा को समेटता चला जा रहा था। वह बोला—"यहाँ से चलो।"

"इससे अच्छा स्थान और कहाँ मिलेगा? यहीं बैठो यहीं से मैं स्टेशन चली जाऊँगी······।" प्रमदा ने अपने सर को मालवीय के वक्ष पर और दाबते हुये कहा।

"किसी निर्जन—एकान्त स्थान में।"

"नहीं मेरे प्राण!"

तब मालवीय ने प्रमदा से कुछ कहा जिसके उत्तर में प्रमदा केवल इतना कह कर सीधी बैठ गयी—"मुझे निर्बल मत बनाओ।······अब कभी नहीं। अब कभी मत कहना। वह, उस दिन तो हमारे मिलन की सर्वज्ञता थी; अब क्या?"

मालवीय ने तब दूसरे अस्त्र का प्रयोग किया।

"तुम घर पर क्या कह कर आई हो?"

"वे मिस्टर चेदन सिनेमा गये हुये हैं।"

"तब लौट कर आने पर तुम्हें न पाकर वह सीधा मेरे घर लपकेगा तब मुझे भी वहाँ न पाकर पता नहीं वह क्या करे? अतः मुझे घर पर उपस्थित रहना चाहिये।"

प्रमदा को बात समझ में आई और वह बोली—"तब!"

"घर चलो। वहाँ से स्टेशन चली जाना। मेरा वहाँ रहना ही उपयुक्त है।" मालवीय बोला।

प्रमदा उठी। मालवीय खड़ा हुआ। दोनों ने ताज को नमस्कार किया और चल दिये।

घर आकर मालवीय ने अनेक प्रयत्न किये किन्तु वह विफल रहा।

प्रमदा दृढ़ थी। उसने प्रत्येक बार एक ही उत्तर दिया :

तन का शृंगार तो हजार बार होता है
किन्तु प्यार जीवन में एक बार होता है।

किसी कवि की इन अमर पंक्तियों ने प्रमदा को बल दिया। मालवीय को संतोष दिया।

और तब उस रात—प्रमदा चली गयी।

× × ×

मालवीय के पास प्रमदा के पत्र निरन्तर आते रहे। मालवीय भी प्रमदा के निकटतम बैठा रहा।

तभी मालवीय को एक तार मिला।

पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। बधाई।

प्रमदा।

मालवीय ने पुलक में पलक मूँद लिये।

× × ×

तब जीवन में तन से दूर किन्तु मन के निकटतम प्रमदा व मालवीय सुख-सन्तोष किये रहे।

प्रमदा—कान्वेन्ट में अध्यापन कार्य करती रही और उसका नन्हा मुन्ना उस दिन की प्रतीक्षा करता रहा जब उसे अपने बहन-भाइयों के निकट जाना था। प्रमदा ने उसे आशान्वित कर रक्खा था।